ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

वर्ष : 5, अंक : 17
अप्रैल-जून 2020
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

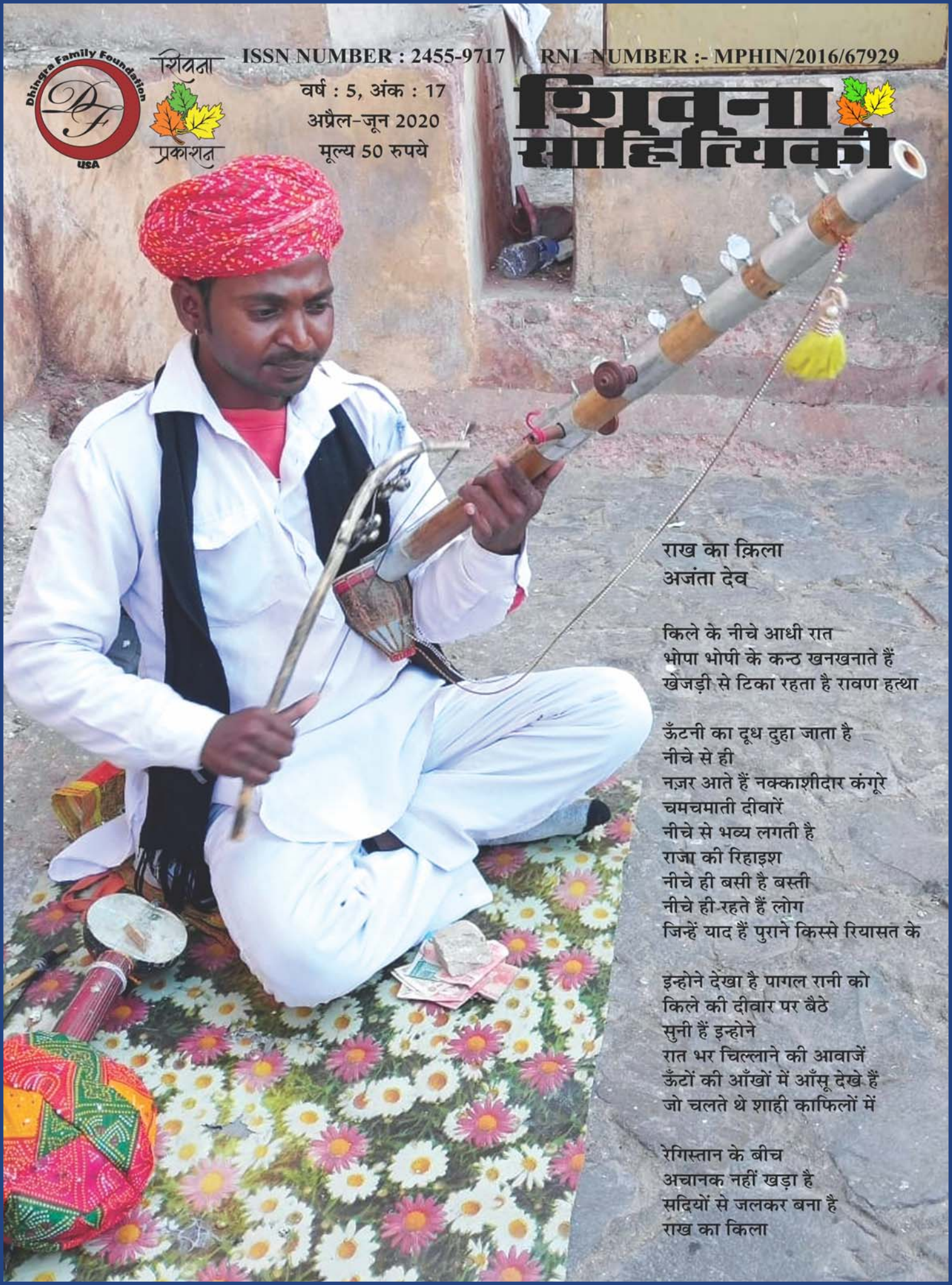

राख का क़िला
अजंता देव

किले के नीचे आधी रात
भोपा भोपी के कन्ठ खनखनाते हैं
खेजड़ी से टिका रहता है रावण हत्था

ऊँटनी का दूध दुहा जाता है
नीचे से ही
नज़र आते हैं नक्काशीदार कंगूरे
चमचमाती दीवारें
नीचे से भव्य लगती है
राजा की रिहाइश
नीचे ही बसी है बस्ती
नीचे ही रहते हैं लोग
जिन्हें याद हैं पुराने किस्से रियासत के

इन्होने देखा है पागल रानी को
किले की दीवार पर बैठे
सुनी हैं इन्होने
रात भर चिल्लाने की आवाजें
ऊँटों की आँखों में आँसू देखे हैं
जो चलते थे शाही काफिलों में

रेगिस्तान के बीच
अचानक नहीं खड़ा है
सदियों से जलकर बना है
राख का किला

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

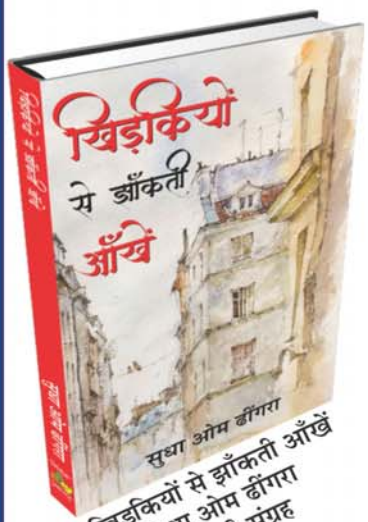

खिड़कियों से झाँकती आँखें
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संग्रह

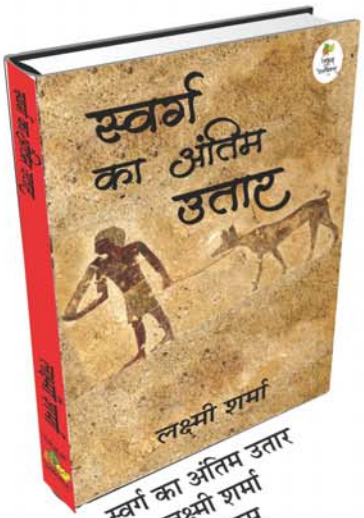

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

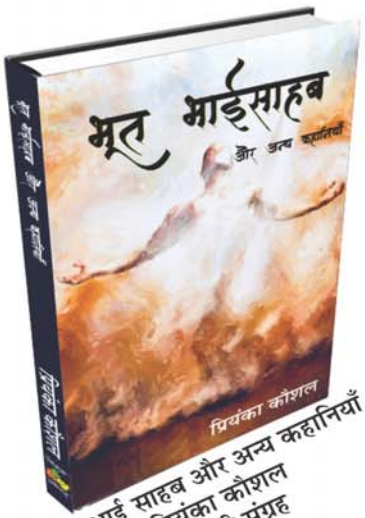

भूत भाई साहब और अन्य कहानियाँ
प्रियंका कौशल
कहानी संग्रह

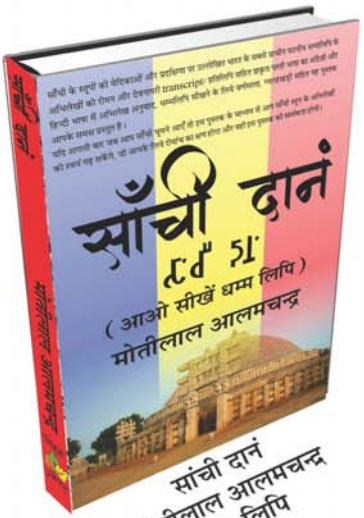

सांची दानं
मोतीलाल आलमचन्द्र
धम्म लिपि

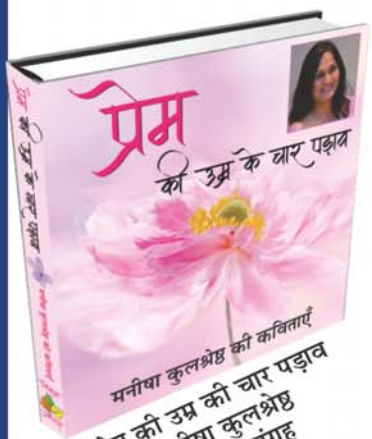

प्रेम की उम्र की चार पड़ाव
मनीषा कुलश्रेष्ठ
कविता संग्रह

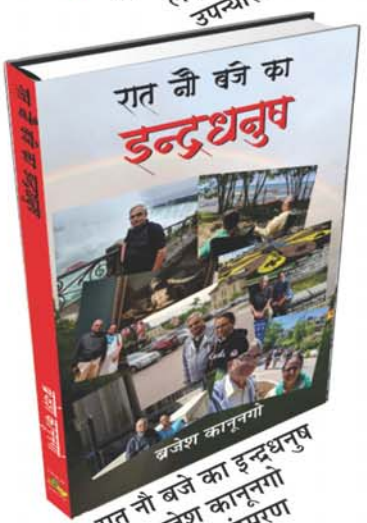

रात नौ बजे का इन्द्रधनुष
ब्रजेश कानूनगो
यात्रा संस्मरण

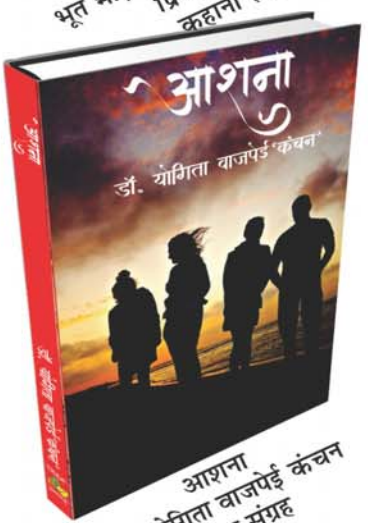

आशना
डॉ. योगिता वाजपेई कंचन
ग़ज़ल संग्रह

प्रवास में आसपास
डॉ. हंसा दीप
कहानी संग्रह

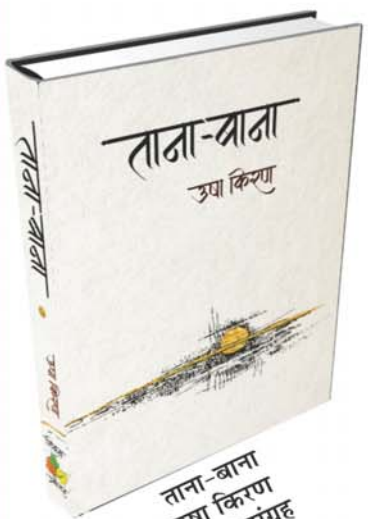

ताना-बाना
उषा किरण
कविता संग्रह

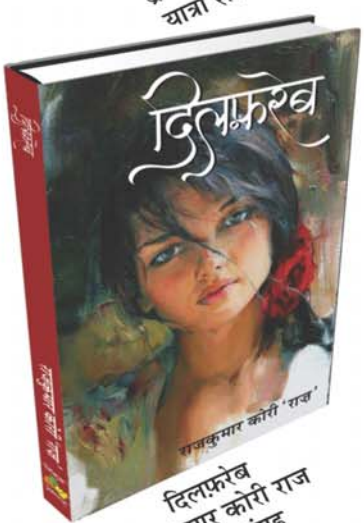

दिलफ़रेब
राजकुमार कोरी राज
ग़ज़ल संग्रह

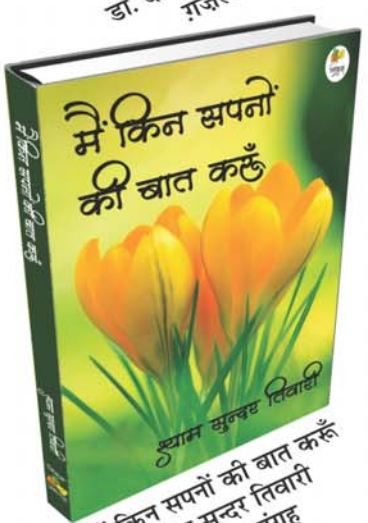

मैं किन सपनों की बात करूँ
श्याम सुन्दर तिवारी
नवगीत संग्रह

मैं नास्तिक हूँ
राजेश सोनवार
उपन्यास

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in

flipkart
http://www.flipkart.com

Paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी

●

संपादक
पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक
शहरयार

●

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह

●

छायाकार
राजेन्द्र शर्मा

●

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण : Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda, Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 5, अंक : 17
त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2020
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
नीरज गोस्वामी

आवरण कविता
अजंता देव

वर्ष : 5, अंक : 17
त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2020

इस अंक में

आवरण चित्र / **नीरज गोस्वामी**
आवरण कविता / **अजंता देव**
संपादकीय / **शहरयार / 5**
व्यंग्य चित्र / **काजल कुमार / 6**

पिछले दिनों पढ़ी गई किताबें

निष्प्राण गवाह
क़तार से कटा घर
बंद मुट्ठी
प्रवास में आसपास
वारिसों की जुबानी
सुधा ओम ढींगरा / 7

शोध-आलेख

सुबह अब होती है... तथा अन्य नाटक / **जुगेश कुमार गुप्ता / 11**
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था / **दिनेश कुमार पाल / 13**
खिड़कियों से झाँकती आँखें / **अफ़रोज़ ताज / 17**
बंद मुट्ठी / **डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह / 20**

पुस्तक समीक्षा

ताना-बाना
डॉ. सीमा शर्मा / डॉ. उषा किरण / 24
कुबेर
दीपक गिरकर / डॉ. हंसा दीप / 26
धर्मपुर लॉज
राजीव कार्तिकेय / प्रज्ञा / 29
सच कुछ और था
रेखा भाटिया / सुधा ओम ढींगरा / 32
भूत भाई साहब और अन्य कहानियाँ
डॉ. सीमा शर्मा / प्रियंका कौशल / 36
ख़ुद से गुज़रते हुए
पंकज मित्र / संगीता कुजारा टाक / 38
निन्यानवे का फेर
पंकज सुबीर / ज्योति जैन / 39
सुबह अब होती है तथा अन्य नाटक
पंकज सोनी / नीरज गोस्वामी / 40
दसवीं के भोंगा बाबा
डॉ. हंसा दीप / गोविंद सेन / 43
बारह चर्चित कहानियाँ
प्रो. अवध किशोर प्रसाद / सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर / 45
कुछ दुख, कुछ चुप्पियाँ
शहंशाह आलम / अभिज्ञात / 47
परछाइयों का समयसार
कादम्बरी मेहरा / कुसुम अंसल / 48
राम की शक्ति पूजा और कामायनी का नाट्य रूपांतरण
अशोक प्रियदर्शी / कुमार संजय / 49
हरी चिरैया
मनीष वैद्य / संजय कुमार शर्मा / 50
होली
प्रो. अवध किशोर प्रसाद / पंकज सुबीर / 51
विचार और समय
पंकज सुबीर / सुधा ओम ढींगरा / 67

पुस्तक चर्चा

मेरी दस रचनाएँ / **डॉ. प्रेम जनमेजय / 25**
आशना / **डॉ. योगिता बाजपेई 'कंचन' / 30**
मेरी दस रचनाएँ / **लालित्य ललित / 42**
ग़ज़ल जब बात करती है / **डॉ. वर्षा सिंह / 44**
दिलफ़रेब / **राजकुमार कोरी 'राज़' / 61**
साँची दानं / **मोतीलाल आलमचन्द्र / 71**
मैं किन सपनों की बात करूँ / **श्याम सुन्दर तिवारी / 76**

केन्द्र में पुस्तक

पुस्तक : प्रेम की उम्र के चार पड़ाव
समीक्षक : शैलेन्द्र शरण, नीलिमा शर्मा
लेखक : मनीषा कुलश्रेष्ठ / 53
पुस्तक : प्रवास में आसपास
समीक्षक : नीलोत्पल रमेश, दीपक गिरकर
लेखक : डॉ. हंसा दीप / 57
पुस्तक : खिड़कियों से झाँकती आँखें
समीक्षक : दीपक गिरकर, रेनू यादव
लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 62
पुस्तक : निष्प्राण गवाह
समीक्षक : शन्नो अग्रवाल, डॉ. मधु संधु
लेखक : कादम्बरी मेहरा / 68
पुस्तक : रात नौ बजे का इन्द्र धनुष
समीक्षक : धर्मपाल महेन्द्र जैन, दीपक गिरकर
लेखक : ब्रजेश कानूनगो / 72
पुस्तक : यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं
समीक्षक : अशोक प्रियदर्शी, धर्मपाल महेन्द्र जैन
लेखक : पंकज सुबीर / 74
पुस्तक : जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
समीक्षक : डॉ. प्रज्ञा रोहिणी, डॉ. सीमा शर्मा, कैलाश मण्डलेकर
लेखक : पंकज सुबीर / 77

संपादकीय

इस समय में सक्रिय रहना ही सबसे ज़रूरी है

शहरयार

यह पूरी मानवता के लिए एक बहुत कठिन समय है। सारी दुनिया ठहर कर अपने-अपने घरों में सिमट गई है। घर के दरवाज़े के बाहर निकलने में ख़तरा है कि कौन जाने कहाँ महामारी खड़ी प्रतीक्षा कर रही हो। यह वो समय है जिसकी कल्पना तक किसी ने नहीं की थी। किसी ने नहीं सोचा था कि इतनी रफ़्तार से दौड़ती हुई ज़िंदगी, जिसमें एक-एक सेकेंड की भी क़ीमत होती है, वह इस प्रकार रुक जाएगी। यह जो रुकना है, यह शांत भी नहीं है, यह अशांत है। एक दहशत से भरी हुई अशांति सबके मन में है। यह सन्नाटा, यह ख़ामोशी, कम से कम वह तो नहीं है, जिसकी प्रतीक्षा रचनाकार करते हैं। घरों के बाहर जो सन्नाटा पसरा हुआ है, वह डरा रहा है। और डर यह भी है कि इस थमने की मियाद जाने कितनी लम्बी होने वाली है। लेकिन मानवता पर इस प्रकार के संकट पहले भी आए हैं और आगे भी आते रहेंगे। उसके बाद मानवता उबर का सामने आती रही है और आती रहेगी। यह जो समय है, यह नफ़रत, घृणा, हिंसा का नहीं है, यह प्रेम का है, इंसानियत का है और भाईचारे का है। यह वही समय है, जिसमें इंसानियत की परीक्षा होती है। यह वही समय है जिसमें हमारे सब्र की परीक्षा होती है। दुनिया भर के सारे देशों की सरकारें और वहाँ की जनता एकजुट होकर इस महामारी से संघर्ष कर रहे हैं। हमारे देश में भी सरकार और जनता दोनों ही एकजुट दिखाई दे रहे हैं। भारत की जनता ने बहुत अद्भुत संयम का परिचय दिया है। कुछ लोगों ने ग़लतियाँ भी की हैं और अपनी तथा अपने परिवार, मोहल्ले और शहर के लोगों की जान को ख़तरे में डाला है। ऐसे लोगों के लिए माफ़ी की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। नई सदी में हमारा सामना इस प्रकार की महामारी से होगा किसने सोचा था। इस सन्नाटे में एक बात जो सुखद है वो यह है कि रचनाकार, कलाकार इस सन्नाटे को तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। भले ही बार-बार यह कहा जा रहा हो कि यह रचनात्मक सन्नाटा नहीं है मगर उसके बाद भी सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्मों पर हमारे रचनाकार साथी लगातार सक्रिय हैं। इस समय में सक्रिय रहना ही सबसे ज़रूरी है, क्योंकि यदि सक्रिय नहीं रहे तो यह सन्नाटा आपको अवसाद की तरफ़ धकेलना प्रारंभ कर देगा। वह और भी ज़्यादा ख़तरनाक बात होगी। सक्रियता ही उस अवसाद से बचने का एकमात्र तरीक़ा है।

पत्रिका का यह अंक बहुत परेशानियों से जूझते हुए तैयार किया गया है। बहुत सी सामग्री को छोड़ना पड़ा है। इस बार शिवना प्रकाशन की पुस्तकों पर ही अधिक समीक्षाएँ शामिल की गई हैं। इसके दो कारण हैं, एक तो अभी-अभी नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की बहुत किताबें प्रकाशित होकर आई हैं। दूसरा कारण यह कि सामग्री को तैयार करना तथा उसे आवश्यक फॉण्ट में परिवर्तित करने जैसी सुविधाएँ फिलहाल उपलब्ध नहीं होने के कारण जो सामग्री तैयार थी उसका ही उपयोग किया गया है। हमने बार-बार अनुरोध किया है कि हमें सामग्री केवल यूनिकोड या चाणक्य फॉण्ट में ही भेजें, कृति देव या अन्य किसी फॉण्ट में भेजी गई सामग्री का उपयोग करने में हमें बहुत समस्या आती है। इस प्रकार की सामग्र अधिकांशत: बिना उपयोग के ही रह जाती है। एक बार फिर अनुरोध है कि सामग्री को यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में ही भेजें। इस बार समीक्षकों के चित्र भी नहीं लगाए गए हैं। उसका कारण यह है कि अधिकांश समीक्षाओं के साथ समीक्षकों के चित्र नहीं भेजे जाते हैं, हमें ही इंटरनेट से चित्र तलाशने पड़ते हैं। तो इस बार यह तय किया गया है अब आगे से समीक्षकों के चित्र नहीं लगाए जाएँगे, केवल किताब का कवर ही लगाया जाएगा। संपादक मंडल ने बहुत अनिच्छापूर्वक यह निर्णय लिया है। जो समीक्षक इतनी मेहनत से हमारे लिए समीक्षाएँ लिख कर भेजते हैं, उनके चित्र लगने ही चाहिए, लेकिन समस्या वही है कि चित्र आएँगे तब ही तो लगाए जाएँगे। ख़ैर यह अंक आपके हाथों में है। हमेशा की तुलना में यह लगभग दुगने पृष्ठों का अंक है। पढ़िए और अपनी प्रतिक्रिया दीजिए। अपने और अपने परिवार का ध्यान रखिए, उन सारे नियमों का पालन कीजिए, जो इस समय बेहद ज़रूरी हैं। आप सपरिवार स्वस्थ रहें। **आपका ही**

शहरयार

शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001, मोबाइल : 9806162184
ईमेल : shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार
ईमेल :
kajalkumar@comic.com

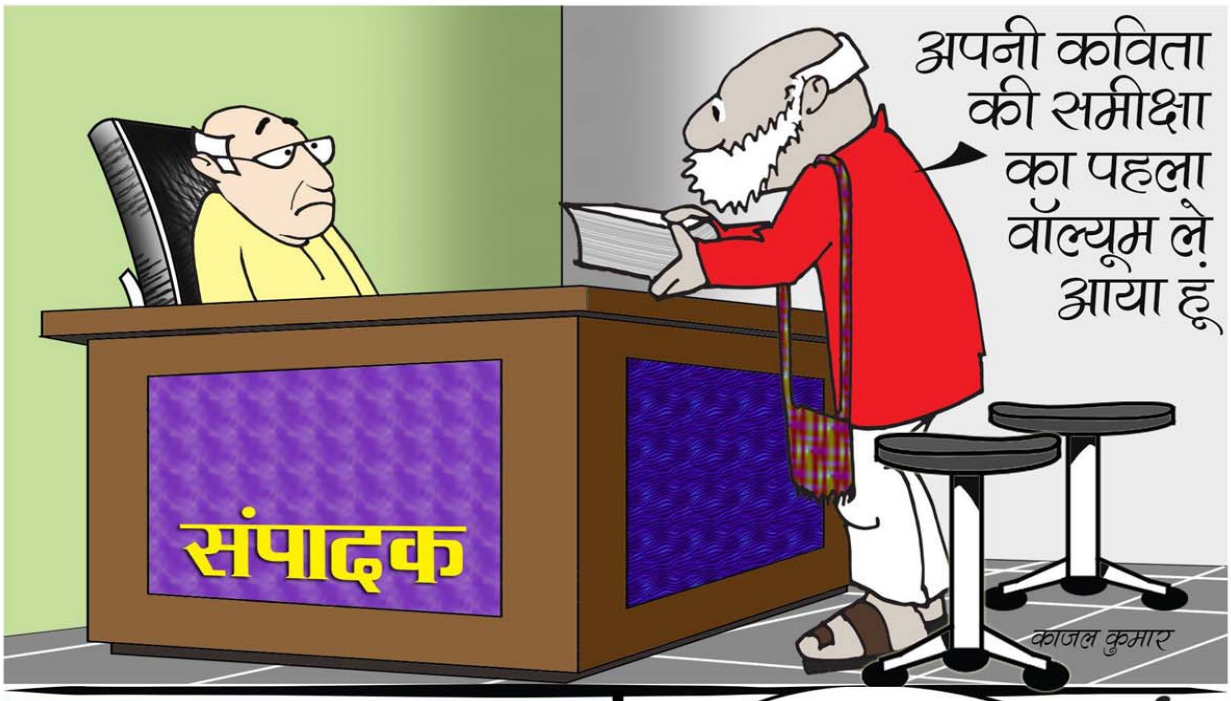

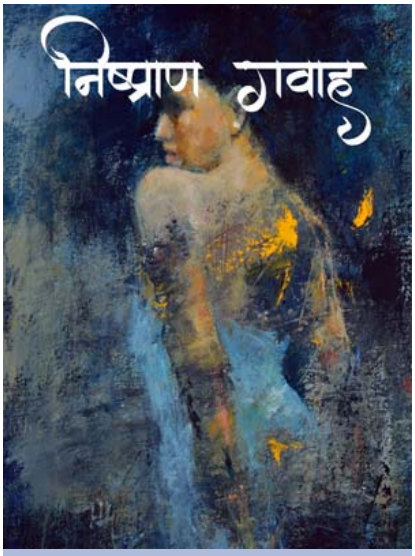

पिछले दिनों पढ़ी गई किताबें

सुधा ओम ढींगरा

निष्प्राण गवाह
क़तार से कटा घर
बंद मुट्ठी
प्रवास में आसपास
वारिसों की ज़ुबानी

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल : sudhadrishti@gmail.com

जनवरी के दिल्ली बुक फेयर के बाद मुझे अमेरिका में एक बड़ा सा बण्डल पुस्तकों का प्राप्त हुआ; जिसमें पंकज सुबीर की पसंद की, मेरी पसंद की और ढेर सारी मित्रों की पुस्तकें प्राप्त हुईं। पुस्तकें मिलते ही एक पाठक ने पढ़ना शुरू कर दिया। मुझे पुस्तक का नाम पहले आकर्षित करता है। लेखक का नाम मैं बाद में देखती हूँ, अगर कभी लेखक के नाम पर नज़र पड़ जाए तो पता नहीं मस्तिष्क ख़ारिज सा कर देता है, पुस्तक पढ़ते समय ध्यान ही नहीं रहता। वैसे आदत हो चुकी है शीर्षक देख कर पुस्तक पढ़ने की। यह आदत अच्छी या बुरी, ऐसा हो ही जाता है। हालाँकि किताबें सब पढ़ती हूँ, पहले शीर्षक पसंद आने वालीं बाद में दूसरी। कई बार शीर्षक बहुत पसंद आता है पर किताब अपनी जगह नहीं बना पाती। और कई बार शीर्षक जगह नहीं बनाता और किताब दिल तक पहुँचकर भीतर कहीं घर कर लेती है।

'निष्प्राण गवाह' शीर्षक ने पुस्तक पढ़ने की लालसा जगाई और मैं उपन्यास पढ़ने बैठ गई। पढ़ना शुरू किया तो उठ नहीं पाई, पूरा समाप्त करके ही उठी। पढ़ते समय ऐसा लगा कि सिर्फ भाषा का अंतर है, जैसे मैं कोई विदेशी थ्रिलर, रहस्य रोमांच का नॉवेल पढ़ रही हूँ। विषय पर गज़ब की पकड़। Victor Methos का A Gambler's Jury, Danielle Girarad का Dead Center, A.J.River का The Girl in the Manor जैसे अनगिनत क्राइम नॉवेल पढ़ने और रहस्य, रोमांच तथा क्राइम की लेखिका, अनुभवहीन जासूस Jessica Fletcher के टीवी सीरियल Morder, She Wrote वर्षों देखने के बाद हिन्दी में लिखी मर्डर मिस्ट्री मुझे बाँध ले गई। हैरान रह गई। झटपट नाम देखा। कादम्बरी मेहरा। ब्रिटेन की वरिष्ठ कहानीकार, जिनका यह पहला उपन्यास है। ताज्जुब की बात है, पहला उपन्यास ही मर्डर मिस्ट्री, जो विषय हिन्दी साहित्य में वर्जित है। एक भारतेत्तर लेखिका ने उसी विषय को उठाने का साहस किया है।

लेखिका ने विषय पर गहन पड़ताल की है, शायद इसलिए ही उन्होंने यह उपन्यास लिखने का जोखिम उठाया। कथ्य को बखूबी बुना है। कादम्बरी जी की कहानियों की तरह उपन्यास की भाषा पर भी गहरी पकड़ है। रहस्य-रोमांच, मर्डर मिस्ट्री, क्राइम और जासूसी उपन्यासों में भाषा का प्रवाह और कहन की शैली पाठक को बाँधती है, 'निष्प्राण गवाह' की क़िस्सागोई ही पाठक पर अंत तक मर्डर का राज़ नहीं खुलने देती।

लन्दन के दक्षिणी तट पर बोर्नमथ नामक शहर से पाँच-सात मील के फ़ासले पर एकदम एकान्त स्थान के समुद्र तट से कहानी शुरू होती है यानी मर्डर, क़त्ल। क़त्ल किसका हुआ? कैसे हुआ ? ज्यों ही यह जिज्ञासा पैदा होती है, बस पाठक कहानी के साथ चल पड़ता है, पुलिस की जासूसी और क़ातिलों के हथकण्डों तथा उनके दाँव-पेंचों से निकलती कहानी कई मोड़ और कई घुमाव लेती उपन्यास के अंत में जाकर मर्डर का राज़ खोलती है और समाधान होता है। पात्रों की चर्चा यहाँ नहीं करुँगी, कहानी भी उजागर नहीं कर रही। बस इतना कहूँगी ब्रिटेन की धरती पर स्थानीय पुलिस और स्थानीय मर्डर और उसके रहस्य की गोपनीयता को रोचक तरीके से बुना और उधेड़ा गया है। विदेशी मर्डर मिस्ट्री उपन्यासों की तरह कथानक बेहद कसा हुआ है, जिससे उपन्यास अपनी रहस्यात्मकता कायम रख पाता है। चरित्रों की रचना में लेखिका की कुशलता और उनके विकास में शैली का कौशल नज़र आता है। कथानक ने जिज्ञासा बरकरार रखी है। अपने पहले रुचिकर उपन्यास के लिए लेखिका को बधाई! यह उपन्यास शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 95 पृष्ठों के इस पेपरबैक उपन्यास का मूल्य:125 रुपये है।

000

क़तार से कटा घर

अमेरिका की वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित कहानीकार, कवयित्री अनिलप्रभा कुमार की पुस्तक 'क़तार से कटा घर' पढ़ी। अनिल जी की बहुत सी कहानियाँ मैंने पहले कई पत्रिकाओं में पढ़ी हैं और कुछेक 'हिन्दी चेतना' और 'विभोम-स्वर' में मैंने प्रकाशित भी की हैं। फिर भी संग्रह की कहानियाँ पढ़ीं और बेहद संतुष्ट हुई। इस पुस्तक के फ़्लैप पर राजी सेठ, सुधा

अरोड़ा, डॉ.कमल किशोर गोयनका और किरण सिंह जैसे वरिष्ठ और प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने अनिलप्रभा कुमार की कहानियों पर लिखा है। यह बड़े गर्व की बात है। विशेषकर तब जब भारतेत्तर साहित्य को ख़ारिज करने और हाशिये पर डालने का प्रचलन है।

'क़तार से कटा घर' में दस कहानियाँ हैं। लेखिका धीमी गति से लिखती हैं, पर जब लिखती हैं तो ग़ज़ब का लिखती हैं। अनिल जी की कहानियाँ बहुत अंतराल के बाद आती हैं। इसके बारे में उन्हीं के शब्दों में-'मेरे दोनों कहानी संग्रह में सात साल का लंबा अंतराल है। शायद यह आवश्यक भी था। मुझे अपने से ही जूझने के लिए, अपने परिवेश को यथास्थिति स्वीकार करने के लिए, अपने लिए खुद छेनी-हथौड़ी लेकर नया रास्ता तलाशने के लिए इस समय की आवश्यकता थी। मैं लिखती रही पर धीरे-धीरे।'

यहाँ के परिवेश को स्वीकारने के बाद लेखिका ने सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं पर बेहद कुशलता से लिखा है। इन दस कहानियों में विषयों की भिन्नता है। इनमें समलैंगिकता जैसे बोल्ड विषय भी हैं, जिन पर लिखना बड़ी चुनौती है। कई लेखकों ने लिखा है पर उनकी कहानियों में विषय पर चित्रण हावी हो गया है। ऐसे में विषय छूट जाता है। समलैंगिकता पर लिखी पंकज सुबीर की कहानी 'अँधेरे का गणित' ही एक ऐसी कहानी है, जो अद्भुत शिल्प से बुनी गई है, जिसमें कहीं कोई अतिरिक्त चित्रण नहीं बस बिंबों के माध्यम से लेखक ने बात कह दी है। बेहतरीन शिल्प से प्रयोग किया है।

अनिलप्रभा कुमार की कहानियों का शिल्प भी बहुत सुदृढ़ होता है। सुधा अरोड़ा कहती हैं-'अनिलप्रभा कुमार की कहानियों के विषय ध्यान खींचते हैं और उनका शिल्प चौंकाता है।' भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर सींची गई समलैंगिकता पर लिखी गईं 'क़तार से कटा घर' और 'दीवार के पार' कहानियों को परिपक्वता से रचा गया है। 'क़तार से कटा घर' में एक बच्चे के माध्यम से समलैंगिकता के भावनात्मक पक्ष की पड़ताल की गई है और 'दीवार के पार' इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष खँगाला गया है।

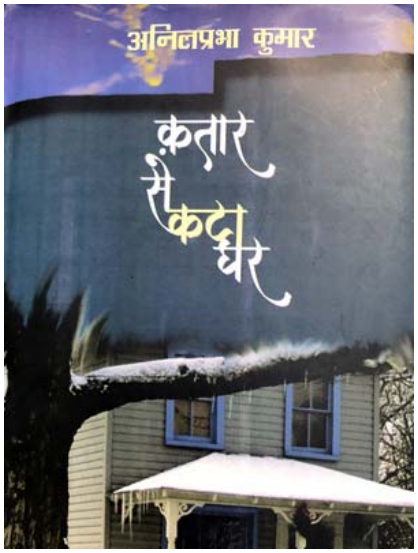

लेखिका का कौशल है कि पात्रों के प्रति करुणा भी उभरती है और संवेदना भी।

जासूसी करते हुए दुश्मन देश में गुम हो गए व्यक्ति के परिवार की दर्दनाक दशा और पत्नी की पीड़ा को लेखिका ने बहुत खूबसूरती से अभिव्यक्त किया है, 'वायवी' कहानी में। पति की विरह में एक नारी की वेदना ने मुझे रुला दिया। अनिलप्रभा कुमार की कहानियाँ बहुत संवेदात्मक होती हैं, वे कोई भी विषय उठाएँ, उसका भावनात्मक पक्ष उनके लेखन के कौशल से पाठकों के दिल तक पहुँच जाता है। 'महाननगर में ही कहीं' कहानी के बारे में डॉ. कमल किशोर गोयनका कहते हैं-यह कहानी लेखिका की सृजनात्मकता की उपलब्धि है और महानगर के जीवन का दस्तावेज़ है।

'उसका मरना', 'बस पाँच मिनट', 'मौन राग', 'ऐसे तो नहीं', 'बेमौसम की बर्फ़' भी बेहतरीन कहानियाँ हैं। अनिलप्रभा कुमार की कहानियों में समकालिक यथार्थ से संवाद है और उसकी परछाइयों को बहुत सशक्त शिल्प से सँवारा है। अधिकतर भारतेत्तर लेखकों की कहानियाँ देश और विदेश दोनों की होती हैं। 'क़तार से कटा घर' कहानी संग्रह भावना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है और 128 पृष्ठों का मूल्य 350 रुपये है।

000

बंद मुट्ठी

कैनेडा में कथाकार बहुत कम हैं, जो हैं उनके कहानी संग्रह छपे हुए नहीं हैं। इसलिए दो वर्ष पहले तक हिन्दी कथा साहित्य में कैनेडा का कोई योगदान नहीं था। हिन्दी कथा जगत् में पिछले दो सालों से एक नाम बहुत तेज़ी से उभर कर सामने आया है, नाम है हंसा दीप। दो वर्षों में दो उपन्यास 'बंद मुट्ठी' और 'कुबेर' तथा कहानी संग्रह 'चश्मे अपने-अपने' और 'प्रवास में आस-पास'। बड़ी उपलब्धि। उपन्यास 'बंद मुट्ठी' ने मुझे आकर्षित किया। कवर पर दो मज़बूत हाथों में एक नन्हा हाथ। ममत्व की कशिश ने गुदगुदाया। उपन्यास पठनीय है। कथानक अतीत और वर्तमान में रिश्तों की नाज़ुक डोरी पकड़े घूमता है, एक रिश्ता जो जोड़ा गया, उसके टूटने, बिखरने और जुड़ने के मध्य डोलती कहानी है..... एक संजीदा विषय को भावनात्मक भावभूमि पर रचा गया है, संवेगों से भीगकर लेखिका की कलम ने पात्रों को रचा है।

देश की मिट्टी को सँजोए, कैनेडा और सिंगापुर की धरती पर घटित घटनाक्रमों को लेखिका ने जिस हल से सींचा है, वह बहुत मज़बूत है। यानी भाषा सुदृढ़, और शब्दों के चयन में सतर्कता बरती गई है; ताकि भाषा की साहित्यिक छवि पाठक को मिले। सकारात्मक अंत है, पर मेरी आँखें नम कर गया। एक भावनात्मक कथ्य को 208 पृष्ठ के उपन्यास का रूप देकर, उसे अंत तक संवेगों से भरपूर रखना लेखिका का कौशल है। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास का मूल्य-275 रुपये है।

000

प्रवास में आसपास

'प्रवास में आसपास' कहानी संग्रह पढ़ा जो हंसा दीप का ही है। संग्रह की सभी कहानियाँ आसपास के परिवेश से रोज़मर्रा के जीवन से उठाई गई हैं। बहुत छोटे-छोटे कैनवस पर लिखी गई कहानियाँ हैं। चरित्र-चित्रण से कहानियों को निरूपित किया गया है। देसी और विदेशी ख़ुशबू से महकती कहानियों में जीवन का हर रंग बिखरा हुआ है।

जहाँ कहानियाँ 'हरा पत्ता पीला पत्ता', 'वो सुबह कुछ और थी', 'उसकी औक़ात', 'रुतबा', 'बड़ों की दुनिया मे', 'मुझसे कह कर तो जाते', 'अंततोगत्वा', 'भिड़ंत', 'एक खेल अटकलों का', 'मधुमक्खी', व 'रोपित होता पल' अपनी ख़ालिस विदेशी झलक से सराबोर हैं तो वहीं 'एक मर्द एक

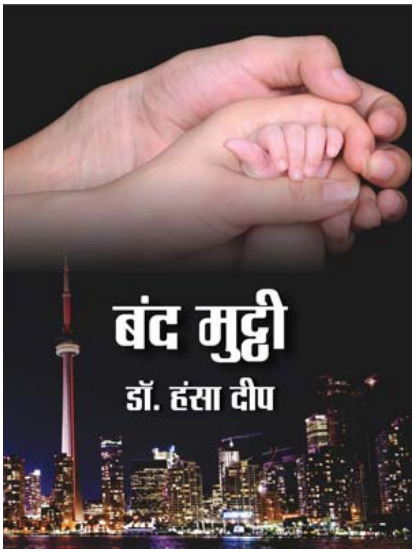

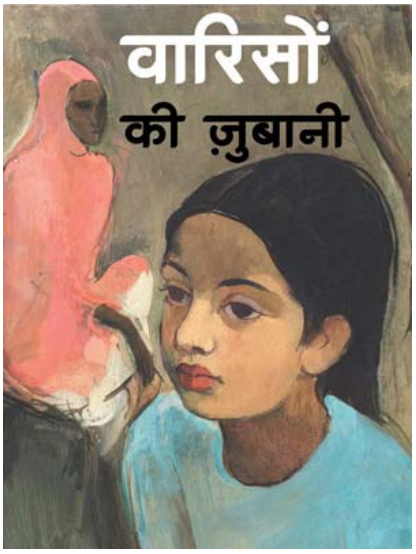

औरत', 'अपने मोर्चे पर', 'ऊँचाइयाँ', 'फ़ालतू कोना' आदि कहानियों में बसे चरित्र मानवीय संवेदनाओं को प्रमुखता देने की कोशिश करते हैं जो नि:संदेह देशों की, संस्कृतियों की सीमाओं से परे हैं।

कहानियाँ स्वयं को पढ़वा ले जाती है। लेखिका पात्रों का चित्रण अधिक कर देती हैं, पात्रों के स्वयं विकसित होने की गुंजाइश बहुत कम रह जाती है; क्योंकि कथ्य छोटे होने से घटनाक्रम कम रहते हैं। चाहे लेखिका ने पात्रों के मनोभावों और अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्ति देने के लिए ऐसा किया है। हंसा जी के महिला पात्र अपने निर्णय लेने के लिए सक्षम हैं।

हंसा जी की कहानियों और उपन्यास की भाषा बहुत सशक्त है और शैली चित्रात्मक। आसपास के परिवेश से लिए गए पात्र हैं, इसलिए बेहद सहज रहते हैं। अधिकतर भारतेत्तर साहित्य यथार्थ की भावभूमि पर रचा जाता संवेदनात्मक साहित्य है, जो अपनी नवीनता लिए हुए है। विदेशों के सामाजिक सरोकार उद्वेलित करते हैं, तो कलम अपने-आप चल पड़ती है। हंसा जी ने एक ताज़े हवा के झोंके सामान भारतेत्तर साहित्य में प्रवेश किया हैं और लम्बी पारी खेलने की संभावनाएँ जगाई हैं। 'प्रवास में आसपास' कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन से छपा है और 128 पृष्ठों का मूल्य-250 रुपये हैं।

000

वारिसों की ज़ुबानी

अब किताब जो पढ़ने को मन किया, 'वारिसों की ज़ुबानी'... नाम और कवर दोनों में ऐसी कशिश है जो अपनी तरफ़ खींचते हैं और दादी, नानी के समय में ले जाते हैं। रेखाचित्र, संस्मरण और आत्मकथा पढ़ने का शौक तो पता नहीं कब से है। अभी भी जब कहीं कुछ मिलता है पढ़ लेती हूँ। संस्मरण और रेखाचित्र एक तरह से लुप्त हो रही विधा थी; जिसे लोकप्रिय और प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कवयित्री, कहानीकार और पत्रकार गीताश्री ने हिन्दी साहित्य संसार में धड़ल्ले से उदीयमान किया, अपने तीन रेखाचित्र संग्रहों से। इनका संपादन गीताश्री ने किया है। 'रेखाएँ बोलती हैं' के पहले भाग में मेरा भी एक संस्मरणात्मक रेखाचित्र था।

बचपन की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में बनारसीदास चतुर्वेदी और रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र हिन्दी की स्वतंत्र विधा के रूप में पढ़ने का मौक़ा मिला। बनारसीदास चतुर्वेदी की रेखाचित्रों की शैली सरस और व्यंग्यपूर्ण है। रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी के श्रेष्ठ रेखा चित्रकार माने जाते हैं; इनके रेखाचित्रों में हम सरल भाषा शैली में सिद्धहस्त कलाकारी को देख सकते हैं। पर युवा होने पर मैंने महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों को भी पढ़ा जो संस्मरण और रेखाचित्रों का सम्मिश्रण लगे; क्योंकि मुझे संस्मरण और जीवनी पढ़ने का भी बहुत शौक़ था। तभी तो जान पाई कि उनके लेखन को संस्मरणात्मक रेखाचित्र कहा सकता है; रेखाचित्र की सीमा पार करके संस्मरण की सरहद में चले जाते हैं।

'वारिसों की ज़ुबानी' के रेखचित्र पढ़ने शुरू किए तो बैठी ही रह गई; बस एक बार टिशु पेपर का बॉक्स उठाने ज़रूर उठी। किसी को पढ़ते हुए आँखें नम हुईं, किसी पर छलकीं और किसी पर टप-टप आँखों से कुछ बहता रहा। माँ, दादी और नानी के संस्मरणात्मक रेखाचित्र पढ़कर ऐसा लगा कि नारी जाग्रति और नारी विमर्श की नींव दादी, नानी और माँ के समय में बहुत सी महिलाएँ बहुत पहले ही डाल चुकी थीं, जिसका विकास धीरे-धीरे हुआ जो अब नज़र आ रहा है।

'वारिसों की ज़ुबानी' संग्रह में सूर्यबाला, सुषमा मुनींद्र, क्षमा शर्मा, नीलम कुलश्रेष्ठ, संतोष श्रीवास्तव, वंदना राग, प्रत्यक्षा, उर्मिला शुक्ल, निर्देश निधि, रश्मि रवीजा, तनूजा शंकर, आकांक्षा पारे, सुलोचना, कौशल पंवार, ममता सिंह, दिव्य विजय, विजयश्री तनवीर और पारुल सिंह जैसी नामी लेखिकाओं के रेखाचित्र हैं। ये रेखाचित्र अपने आप में कहानियाँ हैं और कहानी सा रस देते हैं। अपने समय की प्रगतिशील महिलाओं की कहानियाँ जो आज की पीढ़ी की प्रेरणा हैं।

शैली हर लेखिका की अपनी। उनके चरित्रों के अस्तित्व को विकास देती प्रवाहमयी भाषा। पुस्तक के आरम्भ से ही गीताश्री की अबूझ माई के साथ पाठक बँध जाता है और अंतिम पृष्ठ तक छूटता ही नहीं। ऐसी किताबें आती रहनी चाहिए जो अपने-अपने वारिसों की ज़ुबानी अपनी धरोहर को कायम रखें। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित, 160 पृष्ठों के संग्रह 'वारिसों की ज़ुबानी' का मूल्य 200 रुपये है।

000

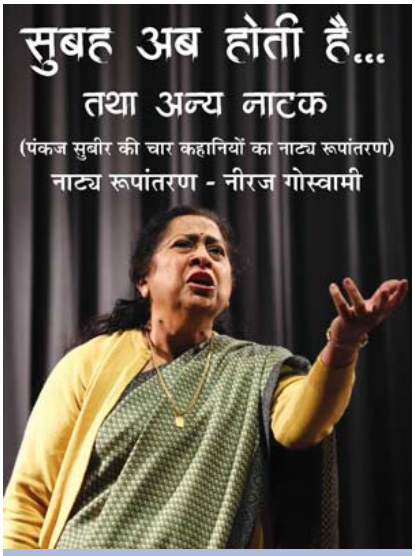

शोध-आलेख

रंगमंचीय आईने में सुबह अब होती है... तथा अन्य नाटक

जुगेश कुमार गुप्ता
(शोध छात्र)
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

रंगमंच सभी विधाओं में अभिव्यक्ति के लिए सबसे प्रभावशाली माना जाता है। दर्शकों पर इसका प्रभाव संवाद के ज़रिए सीधे जुड़ता है और सार्थक असर छोड़ता है लेकिन जब निर्देशक को अच्छा नाटक नहीं मिलता या वह कुछ अलग और प्रयोगधर्मी नाटक करना चाहता है तब वह अपनी तलाश नाटकों से इतर विषय की ओर करता है। आधुनिक रंगमंच की सबसे बड़ी समस्या यह है कि नाटक बिल्कुल न के बराबर लिखे जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में बार-बार दर्शकों के सामने वही नाटक दिखाए जाते हैं। लेकिन जब तक नाटक की विषय-वस्तु में नयापन नहीं होगा, उसमें आधुनिक समस्याओं का समावेश नहीं किया गया तो कब तक उसे रंगीन छायाचित्रों और ध्वनियों के सहारे दर्शकों को रिझाने का काम किया जाएगा। हम देखते हैं कि नाटकों की इस कमी की पूर्ति के लिए नाटक से इतर उपन्यास, कहानी, कविता अथवा व्यंग्य को नाट्य रूपांतरित करके उसे मंचित करने का प्रयास किया जाता रहा है, और यह परंपरा बहुत पहले से ही चली आ रही है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का इस दिशा में बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की लाइब्रेरी में ऐसी ढेर सारी किताबें पड़ी हैं जिसमें नाटकों के अनुवाद और इतर विधाओं का नाट्य रूपांतरण देखने को मिल जाएगा। इस दिशा में जगदीश चन्द्र माथुर का 'कभी न छोड़े खेत' एक ऐसा ही उपन्यास है जिसका नाट्य मंचन एम. के. रैना ने 1984 में किया, रॉबिन दास ने हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' का 2001 में मंचन किया, विनोद शुक्ल की रचना 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' का मंचन मोहन महारिषी ने किया, इसी तरह मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास महाभोज का नाट्य रूपांतरण किया और भारत के विभिन्न भागों में उसके मंचन हुए। बैक स्टेज की ओर से इलाहाबाद के रंग निर्देशक प्रवीण शेखर भुवनेश्वर की कहानी 'भेड़िये' का मंचन 'खारू का खारा क़िस्सा' नाम से लगातार कई वर्षों से करते आ रहे हैं।

प्रेमचंद की भी रचनाएँ इस दिशा में काफी अग्रणी रही हैं। ऐसे बहुत से निर्देशक हुए हैं

जुगेश कुमार गुप्ता
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश 211002
मोबाइल : 9369242041
ईमेल : jugeshgupta141@gmail.com

जिन्होंने प्रेमचंद की कई कहनियों और उपन्यासों का मंचन किया है और आज भी कर रहे हैं। ऐसे में हम विजयदान देथा और फणीश्वर नाथ रेणु को बिल्कुल भी पीछे नहीं छोड़ सकते। नाट्य मंचन की दृष्टि से इनकी कहानियाँ बहुत ही सुविधाजनक हैं। ऐसा अक्सर निर्देशक अपनी सोच को स्वतंत्रता पूर्वक प्रदर्शित करने अथवा समसामयिक घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए भी करते हैं। रंगमंच बहुत ही सहज विधा है, और इन रचनाओं को सहज बनाते हुए इसका मंचन सफल भी होता है जिनको किताबों से निकाल कर मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। इन चर्चित साहित्यकारों के अलावा कई अन्य लेखकों की कृतियों का नाट्य रूपांतरण और मंचन निरंतर किया जा रहा है।

इन दिनों हिन्दी के चर्चित कथाकार पंकज सुबीर की कहानियों का भी मंचन किया गया। राजस्थान के 'राजरंगम थियेटर फेस्टिवल' के अन्तर्गत 'लहरें' संस्था ने पंकज सुबीर की कहानी 'सुबह अब होती है...' का मंचन किया जिसका निर्देशन तपन भट्ट ने किया। पंकज सुबीर की चार कहानियों का नाट्य रूपांतरण नीरज गोस्वामी ने किया जिसे 'सुबह अब होती है.. तथा अन्य नाटक' नाम से प्रकाशित किया गया। इस संग्रह में 'सुबह अब होती है...', 'औरतों की दुनिया', 'कसाब.गांधी @यरवदा.in', 'चौथमल मास्साब और पूस की रात' शामिल हैं। नाटकीय दृष्टिकोण से कहानियों का रूपांतरण एक अच्छी पहल के रूप में देखा जा सकता है, जब रंगमच की समृद्धि के लिए इस दिशा में कदम बढ़ाए जा रहे हैं।

नाटक का इतिहास काफी समृद्ध है और यहाँ तक आते-आते लेखन और मंचन के क्षेत्र में काफ़ी विकास हुआ है, जिन्हें आधुनिक रचना शिल्प और मंचन की दृष्टि से विकसित माना जा सकता है। आधुनिक नाटककार नाटक से संबंधित कई सारी गतिविधियाँ नाटक लिखते समय इंगित कर देते हैं जिन्हें प्रदर्शित करने के लिए निर्देशकों को ज़हमत नहीं उठानी पड़ती। अगर हम कहें कि नाटक का ज़्यादातर भाग पेपर वर्क के रूप में पहले ही तैयार कर दिया जाता है तो यह ग़लत नहीं माना जाना चाहिए। इसमें दो बातें हो सकती हैं जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पहलुओं पर देखी जा सकती है। जब नाटककार ज़्यादातर काम नाट्य लेखन के दौरान कर देता है तब नाट्य निर्देशक के शिलपगत प्रयोग के लिए असुविधा होने लगती है और उसे लेखन से बाहर निकल कर प्रयोग करने पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में नाटक की मूल भावना बाधित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब नाटक अपनी पुरातन परम्परा के आधार पर लिखा जाता है, तब मंचन में आधुनिक तकनीक और दृश्य विधान के प्रयोग की संभावना बढ़ जाती है। इन दोनों स्थितियों में निर्देशक को सजग रहना पड़ता है; क्योंकि नाटक की मूल भावना निर्देशक के नज़रिए से दर्शकों तक पहुँचती है।

'सुबह अब होती है...' और 'औरतों की दुनिया' नाटक, आधुनिक लेखन पद्धति से थोड़ी पीछे लगती है क्योंकि नाट्य लेखन का जो विस्तार वातावरण तैयार करने और मंचन के अनुसार डिज़ाइन करने में सुविधा देता है वह लेखन में बहुत कम दिखाई पड़ता है। मंच संयोजन और प्रकाश व्यवस्था का बहुत ही कम ज़िक्र किया गया है। ऐसा लगता है कि नाटककार नाटक में निर्देशक को अपने हिसाब से परिकल्पना और प्रयोग में खुली छूट देने के लिए छोड़ रखा है। वहीं कुछ आधुनिक मूल नाटक देखने पर यह अंतर स्पष्ट हो पाता है। जब हम इन दोनों नाटकों से आगे बढ़ते हैं तब यह कमी आगे के नाटकों में कुछ हद तक दूर होती दिखाई पड़ती है जिसमें 'कसाब.गांधी @यरवदा.in' और 'चौथमल मास्साब और पूस की रात' नाटक शामिल हैं। इन नाटकों में मंच सज्जा और प्रकाश व्यवस्था के निर्देश पहले दो नाटकों की अपेक्षा ठीक स्थिति में शामिल हैं। इन नाटकों में कहानियों का असर दिखाई पड़ता है साथ ही इनमें नाट्य निर्देशक के प्रयोग के लिए काफी संभावनाएँ हैं- 'रौशनी का एक गोल घेरा उभरता है जिसमें विंग्स से चल कर सूत्रधार आ कर खड़ा हो जाता है'।

कहानियों का चयन आज के समय की बहुत ही ज़रूरी समस्याओं को ध्यान में रखकर किया गया है। विमर्शों को नज़र करें तो स्त्री अभिव्यक्ति और उसकी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर समाज में अवहेलना की शिकार स्त्रियों की समस्याओं को बारीकी से स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। धार्मिक पाबंदियों के आधार पर मूलभूत आवश्यकताओं से दूर किए जाने के छल को समाज के मध्यम एवं निम्न वर्ग की स्त्रियों पर आरोपित किया जा रहा है। प्रशासन का ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार समाज में असुरक्षा के माहौल को बढ़ावा दे रहा है, अगर कोई ईमानदारी से काम भी करना चाहता है तब उसे तमाम उलझनों और अनुभावों के आधार पर बिना कार्य किए हीनता बोध का जामा पहनाते भी दिखाया गया है। ये कहनियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों पर बात करती हैं, पात्र जिसमें हावी होती पुरुषवादी मानसिकता को दर्शाता है। वर्ग विभेद और धर्म के नाम पर जिहाद की मानसिकता 'कसाब.गांधी @यरवदा.in' नाटक में देखने को मिलती है। आज के दौर में यह विषय बहुत ही प्रासंगिक है जिस तरह से धार्मिक उन्माद की भीड़ बिना किसी डर के हाथ में पिस्टल लेकर सड़क पर गोली चलाते नज़र आ रही है। यह ऐसी स्थिति है जहाँ भारत के अंदर अतंकवादी गतिविधियों का बोलबाला बढ़ रहा है। जहाँ न्यायपालिका पर विश्वास ख़त्म होता जा रहा है। धर्मनिरपेक्ष संविधान को नज़रअंदाज़ करने की यह प्रवृति मानवता और लोकतंत्र के लिए बहुत ही ख़तरनाक हो सकती है। ऐसी स्थिति में यह नाटक बहुत ही प्रासंगिक है। ''हिंसा के रास्ते पर चलने वाले जब शहीद कहलाने लगते हैं तो पूरा समाज हिंसा से भर जाता है।'' ज़रूरतमंद लोगों की मजबूरी का फ़ायदा अक्सर ऐसे ही लोग उठाते हैं जिन्हें प्रलोभन के तहत धर्म की आग में झोंक कर राष्ट्रवाद की परत में मढ़ने का कार्य करते हैं। उत्तर आधुनिकता की बात ऐसे समय में अक्सर देखने को मिल जाती है जहाँ हर कोई अपने हक़ के लिए खड़ा होना चाहता है। 'सुबह अब होती है...' स्त्री स्वतंत्रता और अस्तित्व को कायम करने का प्रयास करती है। स्त्री, घर की चारदीवारी में क़ैद एक नौकर की ज़िंदगी से आज़ादी की माँग करती है, ऐसी स्थिति जहाँ घर में अपनी सभी इच्छाओं की तिलांजलि देने के बाद भी उसे एक ग़ुलाम स्त्री होने का आभास कराया जाता है। स्त्री का जीवन दूसरों के लिए ही होता है जो अपने पति

और परिवार तक सिमट कर पूरा जीवन बिता दे, ऐसी मानसिकता पर प्रहार करता यह नाटक आज के समय का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। इसी तरह 'औरतों की दुनिया' नाटक भी आधुनिक स्वार्थपरता का प्रबल रूप उभारने का प्रयास करता है जहाँ भौतिकतावादी संस्कृति के चलते स्वार्थी प्रवृतियों से रिश्तों में आ रही शिथिलता और दूरी को व्यक्त करती है। विकास की गति में स्वार्थपरक हीन भावना देश की अवनति में भागीदार बन रही है।

कहानियों के नाट्य रूपांतरण में कई विषयों को ध्यान से आगे बढ़ाया गया है। इसमें नाटक की भाषा ध्यान देने वाली बात है। गांधी जी गुजरात से संबंधित थे इसलिए उनकी आवाज़ को गुजराती लहज़े में रूपांतरित करने का प्रयास किया गया है ताकि पात्र को हम गांधी के चरित्र के नज़दीक देख सके। लेकिन यह इतना आसान नहीं है इस प्रक्रिया में अभिनेता का ग़ैरभाषी होने पर काफी प्रयास करना पड़ सकता है। इसमें गांधी जी की विशेष शब्दावलियों को देखा जा सकता है जिनमें – कैशे, टभी तो मैं इढर से उढर आटा-जाटा रहता हूँ।

'चौथमल मास्साब और पूस की रात' नाटक में हरियाणा और राजस्थान के आस-पास के इलाक़े की बोलियों का प्रयोग किया गया है जो नाटक में वास्तविकता के लिए बहुत ही ज़रूरी है और नाटक में यह सिर्फ वहाँ के ग्रामीण लोगों के द्वारा बोली गई है। नाटक में अभिनय की सहजता और देश-काल की पहचान के लिए यह बहुत ही आवश्यक होगा।

स्त्री जीवन में धर्म का डर हमेशा से बना रहा है और इसी के ज़रिए उन्हें घर में बन्द कर के रखने का प्रयास किया गया। तरह-तरह के धार्मिक लोकाचार के तहत उन्हें ग़ुलाम बनाने के चोचलों पर नज़र किया गया है। ''दुनिया की हर औरत को भगवानों से दूर रहना चाहिए.. क्योंकि दुनिया भर में औरतों का जो शोषण हुआ है वह इसी भगवान् के नाम पर और इसी भगवान् का डर दिखाकर हुआ है।'' वर्ग विभेद और शोषण के दौर में ग़रीबी का बहुत बड़ा कारण अंधविश्वास है, शिक्षा के विकास के बाद भी लोगों में वैज्ञानिक चिंतन की कमी पर्याप्त दिखाई पड़ती है- ''ग़रीबों का पेट होता ही है लात मारने के लिए।'' लेकिन जब व्यक्ति समाज के नियमों से थक जाता है और भूख के आगे उसे कोई रास्ता नहीं सूझता ऐसी स्थिति में ये बातें स्वाभाविक हो जाती हैं- ''पता नहीं उसे इतनी ऊपर से कुछ दिखाई भी देता है कि नहीं।'' संवेदनशीलता, प्रेम, सद्भावना और सौहार्द आज ये शब्द अपने अर्थ खोते जा रहे हैं। समाज में हिंसक कृत्यों का बोलबाला बढ़ रहा है। नाटक में बार-बार गांधी के अहिंसक विचार मन पर प्रभाव डाले बिना रह ही नहीं पाते। कसाब से संवाद के दौरान उन्होंने बहुत ही शालीनता और संयम का परिचय दिया और आख़िरी में अपने व्यक्तित्व के बल पर उसे पश्चाताप करने पर मजबूर कर दिया। समाजवाद की अवधारणा जहाँ हर कोई बराबर होगा, किसी के द्वारा किसी का शोषण नहीं किया जाएगा। ऐसे विचार जो गांधी जी को आज भी ज़िंदा रखे हुए है। आज़ादी के बाद भी गांधी को लोग आज भी उतने ही शिद्दत से याद कर रहे हैं। ऐसा लगता है उनकी प्रासंगिकता कभी ख़त्म ही नहीं होगी- ''मुझे विश्वास है कि ये भूख-ग़रीबी सदा नहीं रहने वाली। एक दिन आएगा जब लोग फिर से उठ खड़े होंगे और तोड़ डालेंगे उस पाँच हज़ार करोड़ जैसी सारी इमारतों को जो ग़रीबों के ख़ून-पसीने से बनी हैं। जिस दिन ये इमारतें टूट जाएँगी उस दिन सब ठीक हो जाएगा।'' संवैधानिक मूल्यों की दिन पर दिन हत्या होती जा रही है, आज अपने अलावा किसी और की बातों को महत्त्व न देने की परंपरा विकसित होती जा रही है। ऐसी स्थिति में जब अभिव्यक्ति पर ख़तरे उभरने लगते हैं तब हम गांधी जी को अनायास ही याद करने के लिए मजबूर हो जाते हैं- ''असहमत की अभिव्यक्ति को रोकना भी एक प्रकार की हिंसा है।'' नाटक लोगों पर सहज और प्रत्यक्ष प्रभाव छोड़ता है जो समाज की विसंगतियों को दूर करने और एक सही दिशा देने में सहयोगी है। इन कहानियों के नाट्य रूपांतरण का प्रभाव दूरगामी हो सकता है। क्योंकि विषय की अभिव्यक्ति को सहज रूप में मंचन के ज़रिए पहुँचाया जा सकता है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

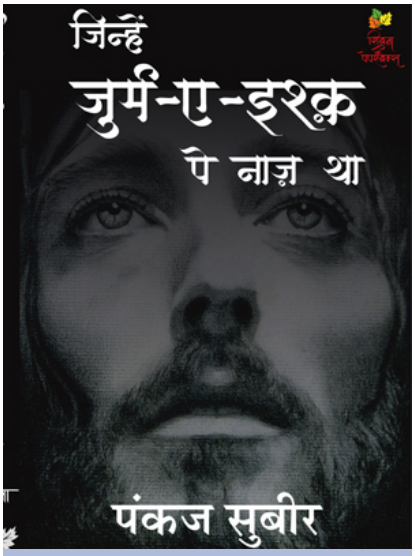

शोध-आलेख

धर्म और सांप्रदायिकता के चलते बदलते इतिहास के मायने

दिनेश कुमार पाल
(शोध छात्र)
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

दिनेश कुमार पाल
बैरमपुर
बैरमपुर कौशाम्बी
उत्तर प्रदेश 212214
मोबाइल:9559547136
ईमेल: dineshkumarpal6126@gmail.com

वर्तमान समय में किसी भी पुस्तक की मुक़म्मल समीक्षा नहीं लिखी जा सकती। किसी एक विषय को लेकर पुस्तक की समीक्षा करना अपने सर पर आफ़त मोल लेने के समान है। क्योंकि एक विषय के पीछे बहुत से विषय छूट जाते हैं। 'पंकज सुबीर' का यह उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' इसी कड़ी का विषय है। पंकज सुबीर ने इस उपन्यास में एक साथ बहुत से विषयों को लेकर उपन्यास की सर्जना की है। इस में भारतीय सभ्यता से लेकर पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, राजनीतिक, धार्मिक, रूढ़िवादी सभ्यता, दर्शन, सत्ता की लालच में मानवीयता को ख़त्म करना, धर्म के नाम पर दहशत फैलाना, आदि विषयों को लेकर उपन्यास में एक ही साथ पिरोने का काम किया है। डॉ. 'रेनू यादव' ने 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' की समीक्षा करते हुए 'साहित्य नंदिनी' पत्रिका में लिखा है कि यह उपन्यास युग से संवाद कर रहा है। मेरा तो मानना है कि यह उपन्यास युग से संवाद के साथ-साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों से संवाद कर रहा है या इस प्रकार कहा जा सकता है, त्रिकाल से संवाद।

इस उपन्यास में पंकज सुबीर सुबीर इतिहास के आईने से संवाद करते नज़र आ रहे हैं। भारत में समय-समय पर अनेक विदेशी शक्तियों का हमला हुआ है, जिससे इतिहास का नक़्शा भी प्रभावित हुआ है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक डॉ. भूरेलाल का मानना है, कि भारत में आर्यों के बाद विदेशी जातियों को हम चार चौकड़ी के रूप में देख सकते हैं- पहला- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; दूसरा- यवन, शक, कुषाण, हूण; तीसरा- अरब, तुर्क, मुगल, पठान और चौथा- पुर्तगाली, डच, अंग्रेज़, फ्रांसीसी। इन्हीं जातियों को विभाजित करते हुए रामधारी सिंह दिनकर 'संस्कृति के चार अध्याय' की

परिकल्पना करते हैं। आज 21वीं सदी में पंकज सुबीर अपनी नज़र इन विभिन्न जातियों का संस्कृति और सभ्यता के मुहाने से इतिहास से संवाद कर रहे हैं।

कथाकार पंकज सुबीर मानव सभ्यता के निर्माण में बहुत गंभीर दृष्टिपात करते हैं। कथाकार पंकज सुबीर 'जिन्हें जुर्म-ए- इश्क़ पे नाज़ था' में भक्ति काल के विद्रोही कवि कबीर की तरह ज्ञान और अनुभव पर बल देते नज़र आ रहे हैं। यहाँ रामेश्वर आधुनिक कबीर के रूप में सामने आता है...

तू कहता कागद की लेखि।
मैं कहता आँखों की देखी॥

कबीर की तरह रामेश्वर भी बौद्धिकता, अनुभव और अहिंसा की बात कर रहे हैं। धर्म ने आज तक इंसान को कुछ भी नहीं दिया सिर्फ विनाश के, धर्म ने मानव जाति की पूरी शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावित करने के साथ-साथ इतिहास को भी प्रभावित किया है। धर्म के आधार पर ही देश का विभाजन होकर बांग्लादेश और पाकिस्तान का विभाजन हुआ है। जिसने आज पूरी की पूरी मानव संस्कृति एवं सभ्यता के साथ-साथ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी बदल कर रख दिया है। धार्मिक कट्टरता ने व्यक्ति को अंधा बनाने के साथ-साथ बौद्धिक विकलांग भी बना दिया है, जिससे मानव जाति की सोचने, विचारने और समझने की शक्ति क्षीण हो गई है।

पंकज सुबीर का यह उपन्यास इस बात को भी स्पष्ट करता है कि आज इंसान ही इंसान के ख़ून का प्यासा हो गया है। इस उपन्यास में रामेश्वर के अहिंसावादी दृष्टिकोण को कबीर के अहिंसावादी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है....

बकरी पाती खात है ताकी खाढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात है ता को कौन हवाल ?

कबीर की अहिंसा और दर्शन को रामेश्वर की सोच और समझ के रूप में देखा जा सकता है।

त्यौहारों का जुलूस निकालकर घर में शांतिपूर्वक ना मनाना बाज़ारीकरण का प्रतीक बन गया है। धर्म के नाम पर आज व्याभिचार भी हो रहा है। भारत में अनेकों जातियों के आगमन से मूर्ति पूजा और आडंबर को बढ़ावा मिला है।भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व मूर्ति पूजा नहीं थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने निबंध,'वैष्णवता और भारतवर्ष' में लिखा है, कि- ''यूरोप के पूर्वी विद्या जानने वाले विद्वानों का मत है कि रूद्र आदि आर्यों के देवता नहीं है। वह अनार्यों के देवता हैं। इनके वे आठ कारण बताते हैं, जिनमें सातवें कारण में यह कहा गया है कि, अनार्य लोग प्राचीन काल में भारत वर्ष में रहते थे और जिनको आर्य लोगों ने जीता था। वह सिर्फ शिल्प विद्या नहीं जानते थे और इसी हेतु लिंग, ढोका, सिद्ध पीठ इत्यादि की पूजा इन्हीं लोगों की है जो अनार्य हैं।'' (भारतेंदु हरिश्चंद्र के श्रेष्ठ निबंध, संपादक-सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती, इलाहाबाद, संस्करण- 2002, पृष्ठ संख्या- 91 /92)। इसी प्रकार 'प्रताप नारायण मिश्र' ने अपने निबंध 'ईश्वर की मूर्ति' में भी माता-पिता की सेवा और प्राकृत पूजा की बात कही। भारत में यह विडंबना है कि जिस व्यक्ति ने अपने संपूर्ण जीवन काल में जितना भी जिसका विरोध किया उसी को पूजने लगते हैं। रामेश्वर भी शाहनवाज़ को इसी बात की ओर संकेत करता है कि, ''मूर्ति पूजा और आडम्बरों को दूर करने के लिए डॉ. भीमराव अंबेडकर आए, उन्होंने जीवन का स्तर ऊपर उठाने की बात कही। मगर आज हो यह गया है कि उन्ही भीमराव अंबेडकर की मूर्ति की पूजा होने लगी है। कबीर मूर्ति पूजा का विरोध करते थे,मगर आज बहुत जगहों पर उनकी ही मूर्ति पूजा हो रही है।'' (पृष्ठ संख्या- 14)

आज हमारा धार्मिक समाज जय राम, जय श्री राम, हे राम, आदि में फ़र्क़ लगाने लगा है। और कोई व्यक्ति जय राम का अभिवादन करता है तो उसे मूर्ख और शूद्र कहा जाता है, और जय श्रीराम कहता है तो उसे ब्राह्मण या हिंदू और पंडित कहा जाता है। यह है हमारे समाज की विडंबना। जब हमारा समाज अभिवादन 'शब्द' में फ़र्क़ कर रहा है तो नस्ल, जाति, देश, संस्कृति, सभ्यता के आधार पर करना तो ग़लत बात नहीं है।

वर्तमान समय में बहुत से वाद प्रचलित हैं। जैसे- छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि। हम इन्हीं वादों के बंधन में बँधकर साहित्य की समीक्षा करते हैं, लेकिन व्यक्ति अपने स्वतंत्र बौद्धिक विचार व दिमाग़ से नहीं सोचता। अगर सोचता भी हैं तो उसे प्रकट करने से डरता है, कि कहीं कोई ग़लती ना हो जाए। पंकज सुबीर यह भी बताते हैं कि इंसान अपनी ग़लतियों से ही सीखता है और महान बनता है। रामेश्वर कहते हैं कि- ''विचारधाराओं ने मानव की सारी स्वतंत्रता छीन ली है।'' (पृष्ठ संख्या -39)

कथाकार पंकज सुबीर ने इतिहास के गर्त में गोते लगाकर मोतियों को चुनने का काम इस उपन्यास में किया है। 'पंकज सुबीर' ने हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहूदी, जैन, बौद्ध आदि धार्मिक संप्रदायों के माध्यम से इतिहास के पन्नों को खोलने का काम किया और यह भी करते नज़र आ रहे हैं कि धर्म ने आज तक समाज को बिगाड़ने के अलावा दिया कुछ भी नहीं है। ''धर्म जब तक सामाजिक स्तर पर कार्य कर रहा है तब तक वह उतना नुकसान नहीं पहुँचाता है, लेकिन जब धर्म राजनीति स्तर पर आ जाता है तो वह एक। नृशंस हत्यारे के रूप में बदल जाता है।'' (पृष्ठ संख्या-10)

यह उपन्यास इतिहास और धार्मिक कट्टरवाद की नग्न सच्चाइयों को अंकित करने में सफल रहा है। समकालीन सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज सुबीर इस विषय में बख़ूबी सफल हुए हैं।

पंकज सुबीर ने यह दिखाने की कोशिश कि आज के माता-पिता और परिवार अपने बच्चों को अच्छी तालीम नहीं दे पा रहे हैं। जिसमें मानवता हो, विश्व बंधुत्व हो, इसके बजाय धर्म की विद्रोही नीति की शिक्षा दी जाती है। लोग धार्मिक एवं संम्प्रादायिक पुस्तकों को आधार बनाकर हिंसा करते हैं। एक- दूसरे को समाप्त करने की कोशिश करते हैं। धर्म के नाम पर सबसे ज्यादा हिंसा होती रही है। यहाँ तक लिपि का भी धार्मिक करण कर दिया गया है। उर्दू लिपि- मुस्लिम, देवनागरी- हिंदू, रोमन- ईसाई। इंसान ने संस्कृति और सभ्यता के साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ किया है उसका नतीजा भी इंसान को ही भुगतना पड़ेगा। आज़ादी के आंदोलन कर्ता भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, महात्मा गांधी, डॉक्टर अंबेडकर, चंद्रशेखर आज़ाद, आदि सब के सब देश के आज़ादी के लिए मर मिटे लेकिन उसका फ़ायदा बाद के राजनेताओं ने

उठाया और देश की आज़ादी के सही मायने को बदलकर रख दिया। धर्म के नाम पर राजनैतिक सत्ताधारी लोग अपनी रोटी सेंक रहे हैं। रामेश्वर इस बात को स्पष्ट करते हुए शाहनवाज़ से कहते हैं कि ''जब उस देश के इतिहास में हुए महापुरुषों में से चुन-चुन कर उन लोगों को महिमामंडित किया जाने लगे जो हिंसा के समर्थक रहे हैं, तब समझना चाहिए कि उस देश में अब धार्मिक सत्ता आने वाली है।''(पृष्ठ संख्या-18)

इस्लाम, हिंदू, यहूदी, जर्मनी आदि धर्मों ने एक-दूसरे को समाप्त कर अपने आप को स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। धर्म के नाम पर भ्रम फैलाया जा रहा है। बीते हुए समय को वापस लौटा लाने की हिम्मत किसी में भी नहीं है। इतिहास ऐसी वस्तु है जो अपने समय की सारी प्रक्रिया को सँजोए रखती है। प्रत्येक समय का अपना इतिहास होता है। मनुष्य अपने अधकचरे ज्ञान के बदौलत धार्मिक उन्माद में आकर संप्रदायिक और हिंसक कार्य करते हैं। समय के हिसाब से मनुष्य महा समुद्र की छोटी सी बूँद की बराबरी नहीं कर सकता कि इंसानियत सिखाए। धार्मिक एवं सांप्रदायिक कट्टरता की वजह से परिणाम हमारे समय और समाज को भुगतना पड़ रहा है।

हमारे सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन और सोच के दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाली हर घटना, व्यवहार, कृत्य पर विचार करना हमारे लिए बेहद ज़रूरी हो गया है। ऐतिहासिक और सकारात्मक दृष्टिकोण का चिंतन होना चाहिए। सांप्रदायिक उपद्रव एवं दंगों में पर्दे के पीछे की कहानी कुछ और ही होती है जो दंगे और झगड़े के चलते संस्कृति और इतिहास दोनों को प्रभावित करने के साथ-साथ भौगोलिक बनावट को भी प्रभावित करती है। लेखक भविष्य दृष्टा होता है। पंकज सुबीर को क्या पता था कि मध्यप्रदेश के छोटे से क़स्बे ख़ैरपुर की घटना दिल्ली के साहिनबाद में हो जाएगी। राजनीति के लोलुप लोग सत्ता की आड़ में हिंदू और मुस्लिम के नाम पर अपनी अवसरवादीता के चलते मलाई उड़ा रहे हैं। कथाकार पंकज सुबीर के उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' की घटना ख़ैरपुर की घटना के रूप में ही नहीं अपितु ध्रुवीकरण के दौर में दिल्ली, लखनऊ, मेरठ से लेकर पूरे विश्व की समस्या के रूप में देखी जा सकती है। टकराव की यह राजनीति सिर्फ़ दिल्ली तक महदूद नहीं है। जब सरकार संवाद से इंकार कर देती है तो नतीजे में हिंसा चुपके से दूर दोनों क़तारों में अपनी पैठ बना लेते हैं। इस मामले में भारतीय राज्य पहले से ही अत्यंत अत्याचारी रहा है।

धर्म ने संपूर्ण महिला मानव जाति का विनाश कर दिया है। समकालीन सुप्रसिद्ध आंचलिक एवं स्त्रीवादी कथाकार 'शिवमूर्ति' अपने कहानी 'कुच्ची का कानून' में कहते हैं कि, ''ब्रह्मा ने स्त्रियों को गोद देकर फँसा लिया है, अगर सारी महिलाएँ ब्रह्मा को उसकी गोद वापस कर दें तो, ब्रह्मा अपना सृष्टि नहीं चला सकते।'' इसी बात को स्पष्ट करते हुए पंकज सुबीर कहते हैं कि, ''असल में तो धर्म नाम की इस बला ने अब तक जो भी परेशानियाँ दी है वह महिलाओं को ही दी है। पुरुषों ने तो धर्म नाम की इस व्यवस्था की आड़ में बस लाभ उठाया है।'' (पृष्ठ संख्या 36)

आज वर्तमान समय में ब्राह्मणवाद सीमित शब्दावली हो गया है जिसका एक नया शब्द कोष गढ़ लिया गया है 'हिंदू', लेकिन हिंदू के अंतर्गत ब्राम्हण तंत्र ही आता है, बाक़ी कौमें 'आजीवन धर्म' में आती हैं। जो हिंदू हैं ही नहीं। 'हिन्दू' ब्राह्मण धर्म का प्रक्षिप्त नाम है। ब्राह्मणवाद का दूसरा नाम हिंदूवाद है। जिसमें भारत के दलित, आदिवासी और पिछड़े अजीवक हैं। सत्ता के लालची लोगों ने सिर्फ राजनीति की रोटी सेंकने के लिए 'हिंदू' शब्द को गढ़ा है, और कुछ नहीं। इनसे कुछ पाने की अपेक्षा की ही नहीं जा सकती है। किसी भी दंगे में निचले तबके के लोग ही ज़्यादा बलि का बकरा बनते हैं। पंकज सुबीर ने धर्म के आंतरिक एवं बाहरी प्रखंडों का पर्दाफाश किया है और ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित बौद्धिकता पर बल दिया है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' में कथाकार पंकज सुबीर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की कथा को लेकर धार्मिक एवं संप्रदायिक दहशत को फैलाने वालों की तह तक जाने की कोशिश की है। जातिवादी और सांप्रदायिक लोग हिंसा, मार-काट, जार, व्यभिचार, बलात्कार, लूटपाट, चोरी-डकैती, धमकी, दहशत, अंधविश्वास, झूठ, भ्रम आदि सभी गुणों में पारंगत पाए जाते हैं।

आज के समय में यह विषय बहुत व्यपक हो गया है। अंग्रेज़ों ने 1857 के विद्रोह में ही हिंदू-मुस्लिम के गठजोड़ को देखा और इस गठजोड़ को तोड़ने के लिए आगे कई काम किए। मसलन 1905 में बंग विभाजन। भारत विभाजन तो संप्रदायिक दंगों का जखीरा ही था। इसमें स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस की राजनीति ने इसको राजनीतिक औज़ार और रणनीति के बतौर ख़ूब इस्तेमाल किया। हिंसा, दंगा, राजनीति, कमज़ोर सत्ता पक्ष का औज़ार है। भारत विभाजन धर्म के आधार पर भारत राष्ट्र को संगठित करने वाले हिंदू और इस्लाम की दो शक्तियों के बीच आपसी प्रतिद्वंद्विता का प्रतिफल था। जिसको यू पी, दिल्ली के 2019-20 के चुनाव में देखा जा सकता है।

यह उपन्यास हमारे देश में वर्तमान अराजकता और पतन के कारणों को भी स्पष्ट करता है और यह भी हमें संकेत देता है कि वर्तमान पीढ़ी को अनुसंधान और विचार करने से रोका जाता है। धर्म के नाम पर गुमराह करके तर्क प्रयोग करने पर हमारा दमन किया जाता है। ''धर्म का पूरा कारोबार ही हिंसा पर टिका हुआ है।'' (पृष्ठ संख्या- 233) क़ुरआन, बाईबिल, महाभारत, रामायण आदि पौराणिक आख्यान धर्म के नाम पर हिंसा का प्रचार-प्रसार करते हैं। महाभारत और रामायण में ही धर्म के नाम पर हिंसा करने के लिए कहा गया है। एक सच को किसी ने नहीं जाना और उधर मुसलमान कुर्बानी के नाम पर और इधर हिंदू बलि के नाम पर पशुओं की बलि देने लगे। ताड़का, एकलव्य और शंबूक जो निर्दोष थे उनको धर्म के ठेकेदारों ने मार दिया। और असल में धर्म ने अपने पक्ष में प्रस्तुत करने के लिए इस प्रकार की कहानियाँ गढ़ ली हैं। बौद्धिकता मानवीय मूल्यों को विकसित करती है और धार्मिक अंधता पतन को। धार्मिक अंधता के लोगों ने अपने ही महापुरुषों की हत्या की। कबीर ने अपने समय में भी हिंदू- मुस्लिम एकता पर बल देने की बात कही और आपसी मतवाद को दूर करने की कोशिश भी की, लेकिन उस समय के समाज को कबीर की विचारशीलता रास नहीं आई। कबीर कहते

थे कि अगर किसी को सत्य का भय ना हो तो वह मेरे साथ सर पे कफ़न बाँधकर चले वरना वे अपने घरों में घुसे रहें। आज के समय में रामेश्वर के माध्यम से पंकज सुबीर भी वही बात कह रहे हैं। ''सत्य जानने की चीज़ है बोलने की नहीं। क्योंकि इस दुनिया में सत्य की आवश्यकता ही नहीं है। अगर आप सत्य कहने की कोशिश करोगे तो एक दिन मारे जाओगे।'' (पृष्ठ-संख्या-111) आज की भौतिकतावादी संकुचित मानसिकता के लोगों के द्वारा एक दारा शिकोह जो मुसलमान था और जिसने दोनों धर्मों को पास लाने की कोशिश की तो उसकी हत्या मुस्लिम कट्टरवादी ताक़तों ने ही कर दी। दूसरे गांधी जो हिंदू थे और जिन्होंने एक बार फिर दोनों धर्मों को पास लाने की कोशिश की उनकी हत्या फिर हिंदू कट्टरवादी ताक़तों ने कर दी। मतलब यह कि हत्या दूसरे पक्ष ने नहीं की अपने ही पक्ष ने की। मुस्लिमों के नेता मोहम्मद अली जिन्ना को भी उनके लोगों के अभाव ने मार डाला। हत्या हमेशा अपने ही पक्ष के लोग करते हैं।

इस पूरे उपन्यास की रचना शैली अहिंसा और दर्शन पर आधारित है। ''नफ़रत करने के लिए इंसान कोई न कोई कारण तलाश ही लेता है। बस प्रेम करने की ही उसे वजह नहीं मिल पाती है।'' (पृष्ठ संख्या- 46) अहिंसा जो प्रेम करना सिखाती है नफरत नहीं, धार्मिक कट्टरता किसी भी मानवीय सभ्यता के लिए सार्थक नहीं है। ''असल में धर्म शब्द ही कट्टरता पैदा करता है। यदि आप धार्मिक हैं तो यह भी तय है कि आप कट्टर भी होंगे ही। धर्म आपके जीवन की स्वतंत्रता को छीन कर आपको केवल एक ही दिशा में दौड़ने को बाध्य करता है। यह जो एक ही दिशा में दौड़ने की बाध्यता है यही तो कट्टरता है।'' (पृष्ठ संख्या-19)

इतिहास के पात्रों से संवाद स्थापित करके कथाकार पंकज सुबीर अपनी कल्पना शीलता का भी परिचय देते हैं और कल्पनाशीलता के माध्यम से सांप्रदायिक घटना को सामने लाने का कार्य करते हैं। सच्चाई का सामना करना और ऐतिहासिक मुद्दों को फलीभूत करना ही इतिहास का विषय है। हमारे सामने ऐतिहासिक सामग्री ही सबसे बड़ी प्रमाणित सामग्री मानी जाती है। इंसान ने अपने फ़ायदे के लिए प्रकृति का ही विनाश नहीं किया बल्कि अपने वर्चस्व के लिए कमज़ोर सभ्यताओं और संस्कृतियों का भी विनाश किया है।

कथाकार पंकज सुबीर 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसान जीवन की त्रासदी को व्यक्त करते हैं। 'अकाल में उत्सव' को स्वतंत्र भारत का किसान जीवन की त्रासदी का 'महाकाव्य' कहा जाना चाहिए। पंकज सुबीर का यह उपन्यास (2016) में प्रकाशित होता है लेकिन 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' (2019) में, लेकिन इस उपन्यास में भी कथाकार पंकज सुबीर अपना मोहभंग किसान से नहीं कर पाते। उसका भी कुछ एक जगह पर वर्णन करते नज़र आ रहे हैं। जो गाँव से शहर में पलायन तो कर रहे हैं लेकिन गाँव से अपना रिश्ता बनाए हुए हैं। अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई या अच्छी शिक्षा के लिए गाँव से पलायन होकर शहर में बसना पड़ रहा है। क़स्बे और गाँव के संबंध को जोड़ना इस उपन्यास की अपनी एक अलग विशेषता है। ''यहाँ कॉलोनी में कोई कहीं से आया है। ज़्यादातर आस-पास के गाँव से शहर शिफ़्ट हुए उन परिवारों के हैं जो अब अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए गाँव छोड़कर क़स्बे में आ गए हैं। इन परिवार की स्थिति यह है कि इनका एक पैर यहाँ रहता है तो दूसरा गाँव में रहता है।''(पृष्ठ संख्या-189)

रामेश्वर और शमीम के ससुर के बीच वार्तालाप में धार्मिक प्रखंडों की तस्वीर में मुझे कबीर याद आते हैं। रामेश्वर एवं शाहनवाज़ दोनों पात्र प्रतीकात्मक हैं जो हर समय समाज पैदा होते रहेगें। इस उपन्यास में पंकज सुबीर सीधे नहीं टकराते अपितु उपन्यास के पात्र रामेश्वर के माध्यम से सामने आते हैं।

'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' की कथावस्तु को किसी गाँव या स्थान विशेष के रूप में नहीं देखा जा सकता। अगर ऐसा है तो उपन्यास के साथ न्याय नहीं हो पाएगा। मौजूदा हालत को देखते हुए आज ध्रुवीकरण के दौर में हर तरफ दंगे दफात हो रहे हैं या फिर यह कह दिया जाए कि करवाए जा रहे हैं तो ग़लत नहीं होगा। पंकज सुबीर का यह उपन्यास बड़ी ख़ूबी से धर्म की आड़ में संप्रदायिक दंगों का पर्दाफाश करता है। आज पूरा विश्व इस बीमारी से ग्रस्त है। धर्म की आड़ में संप्रदायिक दंगे करवाने में राजनीति सत्ताधीश अपनी रोटी सेंक रहे हैं और इन सबके चलते आम आदमी को झेलना पड़ रहा है।

रामेश्वर अपने कोचिंग सेंटर के माध्यम से शिक्षण कार्य को बढ़ावा दे रहे हैं। जो एक सामाजिक प्रक्रिया का अंग है। और मानवीय मूल्यों को विकसित करने में बल देती है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' उपन्यास की पूरी रचना प्रक्रिया एवं भाषा शैली इतिहास से संवाद करने के साथ-साथ समय से भी संवाद करता है। पंकज सुबीर का कथा शिल्प उनकी विशिष्ट तर्क पद्धति, तेवर और अभिव्यक्ति का है, जिसे इस उपन्यास में देखा जा सकता है। धर्म के आधार पर होने वाले मानवीय एवं राजनीति शोषण की कड़ी आलोचना करता है। इस उपन्यास की कथावस्तु की दृष्टि निरंतर भविष्य पर बनी रहती है। इस उपन्यास की भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य है। कहीं-कहीं कथाकार के द्वारा मुहावरे एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। यह उपन्यास इस ओर भी संकेत करता है की तर्क वाद से पैदा हुआ ज्ञान ही असली ज्ञान होता है। इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया समाज, धार्मिक, संप्रदाय, संप्रदायिक, इतिहास आदि से एक साथ संवाद कर रही है। पंकज सुबीर इस उपन्यास में एक नए तेवर के साथ क़िस्सागोई शैली को चुना और पठनीयता के नए मानदंड स्थापित करते हैं। पंकज सुबीर एक ऐसे कथाकार हैं जो अपनी लेखनी से एक नए पाठक वर्ग को तैयार कर रहे हैं और एक व्यापक बहस के लिए युवा पीढ़ी को आमंत्रित करते हैं। यह उपन्यास अंत में इस बात को स्पष्ट करता है कि ''जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था, उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई है, बहुत सारे लोगों के रूप में अभी वे लोग बाक़ी हैं और आने वाले समय में भी बाक़ी रहेंगे। भारत यादव, विकास परमार, वरुण कुमार, शाहनवाज़, विनोद सिंह के रूप में इश्क़ का जुर्म करने वाले और उस जुर्म पर नाज़ करने वाले अभी बहुत से गुनाहगार बाकी हैं.......।''

000

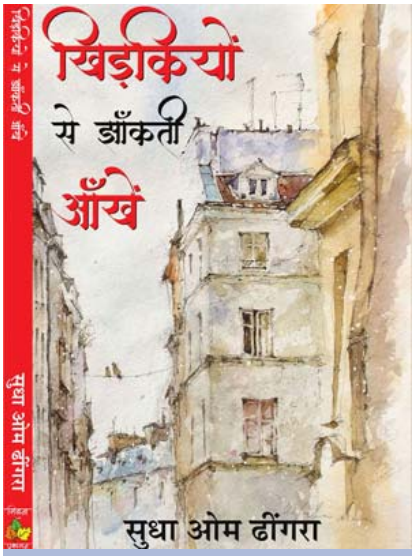

शोध-आलेख

खिड़कियों से झाँकती आँखों की एक झाँकी

डॉ. अफ़रोज़ ताज
एसोसिएट प्रोफ़ेसर
यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाइना, चैपल हिल
अमेरिका

Afaroz Taj
Associate Professor of South Asian Languages, Litterateurs, and Cultures, Department of Asian Studies
Campus Box 3261 201
New West, University of North Carolina, Chapel Hill 2759, USA
Mobile : 919-999-8192
Email : taj@email.unc.edu

सोलहवीं शताब्दी में एक क़िस्सा बहुत मशहूर हुआ। जैसे ही मैं इस क़िस्से का नाम लूँगा आप फ़ौरन कह उठेंगे ''हाँ हमने इसका नाम सुना है।''

''क़िस्सा तोता मैना''

पहले तो यह मौखिक परम्परा के रूप में एक से दूसरे तक पहुँचता रहा, फिर वह किताबों में आ गया। कहानी कुछ इस तरह है कि तोता मैना डाल पर बैठे एक दूसरे को कहानियाँ सुना रहे हैं, मैना मर्दों की बेवफ़ाई के क़िस्से सुनाती है; तोता औरतों की बेवफ़ाई के क़िस्से सुनाता है, और पूरी रात गुज़र जाती है।

क़िस्से अलग-अलग हैं पर विषय एक।

''तोता मैना की कहानी तो पुरानी हो गई'' कौन कहता है।

जब मैंने सुधा ओम ढींगरा की पुस्तक ''खिड़कियों से झाँकती आँखों'' में आँखें डालीं तो कुछ-कुछ मुझे ''क़िस्सा तोता-मैना'' की विधि का शक होने लगा, और फिर यह शंका यक़ीन में बदल गई जब मैंने सुधा जी की इस किताब के मुखपृष्ठ पर बने चित्र पर ग़ौर किया। बहुत से मकानों की खिड़कियाँ और उनको जोड़ता हुआ एक तार जिस पर बैठे दो पंछी मानों खिड़कियों से झाँकती कहानियाँ एक दूसरे को सुना रहे हैं। ये तोता-मैना अपनी अपनी कहानियों द्वारा एक-दूसरे को क़ायल करने के प्रयत्न में लगे हैं। एक ही लेखिका के हृदय में दोनों ही पाखियों का बसेरा है, एक सवाल तो दूसरा जवाब। सुधा जी सवाल उठाती हैं और उसका जवाब भी स्वयं देकर जवाब से सवाल उठवाती हैं। यह क़िस्सागोई का बड़ा अनूठा ढंग है, जिसपर सुधा जी को बड़ी दस्तरस हासिल है। और इसके साथ-साथ अमरीका में देसियों के द्वारा बन रहे नए समाज में पैदा हो रहे अनन्त प्रश्नों को उठाया गया है तथा देस में रह रहे उनके संबंधियों को इस एक तार से ला जोड़ा गया है, जिस पर बैठे तोता-मैना एक दूसरे से बहस में लगे हैं।

सबसे पहले मैं इस कहानी संग्रह के मुखपृष्ठ कलाकार की कलाकारी को दाद देता चलूँ, कहानियों के ऐतबार से इससे अच्छा मुखपृष्ठ कोई हो ही नहीं सकता था। फिर शिवना प्रकाशन का आभारी हूँ, जिन्होंने इतना महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह हम तक पहुँचाया। महत्त्वपूर्ण इसलिए कि अमरीका वासी लेखिका ने अमरीका में रहने वालों के समाज पर जो एक बड़ा प्रश्न उठाया है, उसका उत्तर किस के पास है? मैं भी लेखिका की तरह एक ज़माने से अमरीका वासी हूँ और उनके सवाल को भली भाँति समझता हूँ, कि थोड़ा पाने के लिए हमने कितना ज़्यादा खोया? उनकी कहानियों में बसी देस की ख़ुशबू ने मुझे बेचैन कर दिया और इस तूफ़ान पर क़ाबू पाने को क़लम उठा ली।

जानता हूँ दिल की गलियों में यह जो कोहराम है
खिड़कियों से झाँकती आँखों का ही यह काम है

कभी-कभी इंसान एक ऐसी ग़लती कर बैठता है जिससे नुक़सान की जगह फ़ायदा हो जाता है। मैंने कितनी बड़ी ग़लती कर दी कि सुधा ओम ढींगरा की पुस्तक ''खिड़कियों से झाँकती आँखें'' में झाँका और मेरी आँखें भर आईं।

मेरे मन में एक कौतुहल, एक कोलाहल, एक कोहराम बपा हो गया और मैं मजबूर हो गया इस किताब पर कुछ लिखने के लिए। एक के बाद एक मैंने आठों कहानियाँ आठ मिनट में पढ़ डालीं और फिर समझ-समझ कर एक-एक कहानी को आठ-आठ घंटे में पढ़ा, या यूँ कह लीजिए हर कहानी को आठ-आठ बार पढ़ा, हर बार नई बात नज़र आई और मैं इस निष्कर्ष पर आया कि उनका अंदाज़ निराला है। सुधा जी लेखन के उस फ़ैशन में नहीं है, जहाँ कोई सी भी सादी बात को कहने के लिए पाठक को इधर-उधर भटकाया जाता हैं और अपना सिक्का जमाने के लिए बात को वाक्यों में उलझाते रहते हैं। सुधा जी का रंग फ़र्क़ है। उनके द्वारा बड़ी-बड़ी बातें सादे-सादे अंदाज़ में कही गई हैं। इस प्रकार की शैली पाठक को

जोड़ लेती है, उसे कहानी अपनी-सी लगने लगती है। उदाहरण के तौर पर मुंशी प्रेमचंद को ले लीजिए। विषय अछूते, पर वातावरण जाना पहचाना, हमारे, आपके इर्द- गिर्द का माहौल, हमारे आपके जीवन से जुड़ा हुआ। इसी प्रकार सुधा जी के यहाँ अधिकतर कहानियों के कुछ पात्र अमरीका के हैं तो कुछ भारत के। प्रवासियों के लिए यह वातावरण जाना-पहचाना है। इस कहानी संग्रह में इन दोनों को पारस्परिक संबंध के कारण एक दूसरे से उम्मीदें बाँधे दिखाया गया है जिनसे हम जैसे प्रवासी बार-बार गुज़र रहे हैं। ये आठों कहानियाँ खिड़कियों से झाँकती आँखें ही तो हैं, जो हमारे देसी-अमरीकन समाज को पहचानने में मदद करती हैं। ये आठों कहानियाँ प्रवासी समाज के लिए एक से एक बढ़कर क़ीमती तोहफ़ा हैं तथा यह पुस्तक आने वाले समय में विश्विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल होने के लिए बड़ी नायाब रहेगी।

कहानियाँ सभी लिखते हैं पर प्रवासी विषय पर बहुत कम काम हुआ है ख़ासकर जो भारतीय अमरीकन अपने भारतीय सगे संबंधियों के साथ पूर्व धारणाएँ बनाए बैठे हैं तथा भारतीय जो गोरे-अमरीकनों के प्रति अपने मन में स्टीरियोटाइप सँजोए बैठे हैं, जिन पर इस तरह कभी नहीं लिखा गया है। यह एक नया विषय है। इस विषय पर न के बराबर काम हुआ है पर सुधा जी ने इस पर जम के लिखा है। उन्होंने इस संग्रह में आठों कहानियाँ जो चुनी हैं एक-दूसरे से मैच करती हैं, एक ही सिलसिले की कड़ी हों जैसे।

पहली कहानी ''खिड़कियों से झाँकती आँखें'' और दूसरी कहानी ''वसूली'' एक दूसरे से जुड़ी लगती हैं बल्कि यह कहूँ तो ग़लत न होगा कि पहली कहानी की आँखों का अतीत ही दूसरी कहानी का मुख्य पात्र है। या कभी ऐसा लगता है कि इस संग्रह की पहली कहानी के 95 साल के बुज़ुर्ग पात्र डॉ. और मिसेज़ रैड्डी दूसरी कहानी ''वसूली'' के बहाने अपने अतीत की रूदाद सुना रहे हैं। और कभी लगता है पहली कहानी के मुख्य पात्र के सामने डॉ. मीना और डॉ. शंकर रैड्डी मुख्य पात्र का भविष्य बने बैठे हैं। तभी तो वे कहते हैं,

''मैं तुम्हारी तरह का ही था, जब यहाँ इसी हस्पताल में आया था। मीना भी इसी हस्पताल में डॉक्टर थीं।''

यह तो केवल एक छोटी सी मिसाल है पर यदि और ग़ौर से देखा जाए तो दूसरी भिन्न कहानियों के पात्र का रिश्ता आपस में मिलता दिखता है।

अमरीका का यह चलन लगभग हर परिवार में लागू हैं कि परिवार के बुज़ुर्ग जहाँ 80 साल से ऊपर हुए वे वृद्ध आश्रम या असिस्टिड लिविंग में जाना पसंद करते हैं। जिस का कारण सबको मालूम ही है कि अमरीकन जीवन में बहुत कम ही पत्नियाँ या बहुएँ या पति तथा संतान घर पर बैठते हैं। सभी को बाहर कुछ न कुछ करना होता है। बुज़ुर्गों की इस नाज़ुक आयु में उनकी देखरेख करनेवाला कौन घर पर रुक सकता है? लेखिका ने कहीं-कहीं कहानियों में अमरीका में रहने वाले भारतीयों के प्रति असिस्टिड लिविंग में रहने को थोड़ा अच्छा नहीं माना है; जबकि भारतीय जो अमरीका में रहते हैं उनकी दिनचर्या भी उतनी ही व्यस्त है तथा अब तो भारतीय शहरों का भी यही हाल है। हाँ इतना तो मानना होगा कि भारतीय परम्परा को देखते हुए बुज़ुर्ग माँ-बाप का नर्सों द्वारा उठाना-बिठाना संतान के लिए शर्म की बात मानी जाती है। और प्रवासी समाज पर भी इसका असर ज़रूर पड़ा है जबकि वे भी आम अमरीकन की भाँति दिन-रात मेहनत में लगे रहते हैं।

अमरीका में पैसा तो बहुत बनता है परन्तु बहुत मेहनत और दिन रात के श्रम के बाद। लेकिन रिश्तेदार जो भारत में रहते हैं वे समझते हैं पैसा कमाना अमरीका में आसान है। इसी के जवाब में सुधा जी ने अपनी कहानी में एक पात्र से कहलवाया है,

''यहाँ डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, बड़ी मेहनत से।''

इस कहानी ''ऐसा भी होता है'' में भारतीय रिश्तेदारों का हक़ अपने अमरीकन संबंधियों से केवल लेने का ही है, देने का नहीं। सुधा ओम ढींगरा यहाँ एक पात्र से लिखवाती हैं,-

''जब इच्छाओं का विषधर अपने फन फैलाने शुरू कर देता है, तो उसकी पूर्ति होती रहे तो ठीक, नहीं तो वह ज़हर उगलने लगता है, मेरे साथ भी यही हुआ।''

इसी कहानी में आगे चलकर सास अपनी भारत से आई बहू से कहती है,-

''मैं जब इस देश में आई थी, मैं भी तुम्हारी तरह अपने परिवार को लेकर भावुक थी। ख़ूब पैसा भेजा उन्हें। जब अपनी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ीं और मायके की डिमांड्स को पूरा नहीं कर पाई, बस रिश्ते टूट गए। बेटी, जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है, उनके लिए रिश्तों की कोई क़ीमत नहीं होती।''

एक जगह इसी चौथी कहानी ''ऐसा भी होता है'' में दलजीत कौर अपने पत्र में लिखती है, -

''आपके साथ पिंड (गाँव) में रहते हुए अक्सर महसूस करती थी, हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस एवईं पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यार, दुलार और सारी सुख-सुविधाएँ तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं।''

सुधा जी ने लिंग भेदभाव पर बहुत कुछ लिखा है। स्त्री की आवाज़ किसी न किसी बहाने सुधा जी की दूसरी कहानियों में भी साफ़ और बुलंद है। अधिकतर उनकी कहानियों के मुख्य पात्र स्त्री ही रही हैं। नारीवाद एक प्रकार का फ़ैड बन गया है, लोग उसे फ़ैशन के तौर पर प्रयोग करते हैं। मानते कितना हैं, इसका पता तब लगता है जब समाज में यह लागू होता दीखे। जो कहते हैं कि नारीवाद समाज में लागू होना चाहिए वे स्वयं अपने परिवार पर लागू करते नहीं दिखते हैं। नारीवाद का कहना आसान, करना मुश्किल। कुछ एक तो कहने और लिखने से भी कतराते हैं। परन्तु सुधा जी के यहाँ ऐसा नहीं है। सुधा जी इस विषय पर न लिखने कतराती हैं न ही अपनाने से। इन्होंने नारीवाद को अपने जीवन में भी अपनाया, तथा इस पर सलाह देने में भी पीछे नहीं हटीं। स्त्री की पीड़ा को इन्होंने बहुत क़रीब से महसूस किया है। सुखद जीवन होते हुए भी दूसरों के दुखों को अपने क़लम से काग़ज़ पर उतारा है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी ''ऐसा भी होता है'' की दलजीत कौर जिन मानसिक यातनाओं से गुज़रती है, उसको इन्होंने अपने अंदर महसूस किया है। इस बात पर दलजीत के पत्र का यह भाग भी सुनाता चलूँ,-

''बीजी, जैसे आप वीरों को सीने से

लगाती हैं, कभी आपने अपनी धीयों (बेटियों) को भी सीने से लगाया। क्यों नहीं लगाया? हम तो आपकी ही हैं, आपकी ज़ात की। बाऊजी और चाचा जी ऐसा करें तो मैं मान सकती हूँ, वे पुरुष हैं, वीर उनकी जात के हैं, पुरुष प्रवृत्ति ऐसी ही होती है। अफ़सोस तो उसी बात का है, स्त्री ही अपनी ज़ात के साथ गद्दारी करती है। मैं जानती हूँ यह पढ़ कर आप सब अब मुझे बुरा-भला कहेंगे।''

आगे चलकर वे दलजीत कौर से इसी ख़त में लिखवाती हैं,-

''आप सब से एक सवाल पूछना चाह रही हूँ, बेटों के होते अगर बेटियाँ इतना करती हैं, तो उन्हें कमतर क्यों समझा जाता है?''

नारी के साथ भेदभाव, जो हज़ारों साल से चला आ रहा है, एक प्रकार का प्रतिमान बन चुका है। इस नॉर्म को खंडित करने के लिए बहुत काम हो रहा है, और इस मुहिम में सुधा जी भी पीछे नहीं। इसी तरह हज़ारों साल से जाति प्रथा के चलन का कलंक तथा छूतछात की लानत पर भी सुधा की क़लम लानत भेजती है। इस विषय पर सातवीं कहानी ''अँधेरा-उजाला'' में सुधा ने जी भरके बात की है। यहाँ एक जगह तो उन्होंने कह ही दिया है कि जाति तथा नारी भेदभाव भारत में लगभग एक ही हैं।

ज़रा पढ़ें ''अँधेरा-उजाला'' का यह हिस्सा,-

''इला जो एक शिष्टाचारी, मर्यादित, मीठा बोलने वाली लड़की थी...उसे याद आ रहा है, वह भड़क गई थी और उसने पलट वार किया- ''हाँ नहीं आई थी बदबू ... मुझे सिर्फ़ इत्र की ख़ुशबू आई थी, जो उसने लगाया हुआ था... वह जागरण करता है, देवी माँ के चरण-स्पर्श करता है, उसे छूता है, जब देवी माँ को उससे बदबू नहीं आती तो मुझे कैसे आती...? आप भी तो सब उसके साथ चिपट-चिपट कर तस्वीरें खिंचवा रहे थे, आई आपको बदबू!''

''पापा ने कड़क कर कहा, ''इला, बस चुप।''

इसी कहानी का एक संवाद न भूलने वाला है,-

''एक छोटी ज़ात का लड़का उनसे आगे कैसे बढ़ सकता है? आंटी आप तो वहीं से आई हैं, सब समझती हैं, वह समय कैसा था!''

परन्तु मैं कहूँगा वह समय बदला नहीं, अभी भी ऐसा ही है। या यह हो सकता है कि मीना ऐसा समझती है, यहाँ अतीत का सहारा लेकर वर्तमान अच्छा महसूस करने का प्रयत्न किया जा रहा है क्योंकि सुधा जी ही ने तो किसी कहानी में कहा है कि ''मानव-प्रकृति मूलत: अतीत जीवी है।''

यह किताब क्या है, हज़ारों खिड़कियाँ हैं जिनसे हज़ारों आँखें झाँक रही हैं। जब लेखक अपनी किताब का नाम चुनता है, तो यूँ ही नहीं चुनता। पहली कहानी का निष्कर्ष है कि आँखें चाहे खिड़कियों में ही हों, मगर वहाँ से किसी निशाने पर यदि लगातार पढ़ती रहें तो उन्हें खिड़कियों की हदें नहीं रोक पाएँगी। वे अपना काम कर दिखाती हैं। एक युवा पीढ़ी का व्यक्ति जो बूढ़ों के माहौल में बोझल है, उसको भी हलकापन महसूस हो जाता है क्योंकि उसको भी अपना भविष्य नज़र आता है। मैं इसके आगे पाठकों को कुछ न बताने पर मजबूर हूँ, उनको कहानी पढ़कर ही मालूम करना होगा।

लगता है, इस कहानी संग्रह के एक-एक पन्ने की खिड़कियों की एक-एक आँख से आँख मिलाना मेरा ''फ़र्ज़ बन गया है, कर्ज़ नहीं।''

ख़ुद सुधा जी ने इस संग्रह की एक कहानी में कहा है कि ''संवाद की कमी ने दोनों तरफ़ ग़लत फ़हमियों का भण्डार भर दिया है।'' इसी कारण मैं संवाद जारी रखता हूँ।

अपनी भाषा शैली पर सुधा ओम ढींगरा की इतनी गहरी छाप है कि लेखक का नाम छुपाकर भी लेखक का अनुमान लगाया जा सकता है, मानों वे स्वयं पाठक के सामने बैठी हों। कहानियों में पंजाबी भाषा का चटख़ारा सुधा जी की याद दिलाता रहता है। शैली पर उनका अपना ही अछूता अंदाज़ है।

मैं सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ युगों से पढ़ रहा हूँ और उन पर लिख रहा हूँ, इस उम्मीद पर नहीं कि कभी उनकी कोई किताब मेरे नाम मनसूब होगी बल्कि इसलिए कि उनकी किताब मेरे शुरू करते ही मुझे पकड़ लेती है और मैं मजबूरन अपनी लेखनी तलाश करता नज़र आता हूँ।

है इरादा-ए क़लम परवाज़ का
यही जादू है तेरे अंदाज़ का

लेखक कहानियाँ अपने आस-पास के बिखरे माहौल से बटोरता है और कभी अपने स्वयं पर हो रहे अनुभवों से लेता है, पर ''कहीं ऐसा हो न जाए'' की आशंका से कहानी बटोरना बड़ा मुश्किल और अनोखा है। प्राक्कल्पनात्मक विचार को हक़ीक़त जैसा रूप देकर पेश करना एक कठिन काम है। यह काम सुधा जी ने कर दिखाया है। जैसे मैं पहले कह चुका हूँ कि मैंने सोचा था कि सुधा ओम ढींगरा की इस पुस्तक के बारे में जो कुछ भी लिखूँगा, मुश्किल न होगा, परन्तु जब आठों कहानियाँ पढ़ीं तो पढ़ता ही रह गया। एक-एक कहानी में आठ-आठ कहानियों का तत्व था, और आठों कहानियाँ एक कहानी की आत्मा। इतनी आसान कहाँ थी यह समीक्षा। बल्कि एक भारी बीड़ा था जो मैंने उठा लिया। और हाँ, चलते चलते मैं आठों कहानियों के शीर्षक भी तो बताता चलूँ।

1. खिड़कियों से झाँकती आँखें, 2. वसूली, 3. एक ग़लत क़दम, 4. ऐसा भी होता है, 5. कॉस्मिक की कस्टडी, 6. यह पत्र उस तक पहुँचा देना, 7. अँधेरा-उजाला, 8. एक नई दिशा।

ये सारी कहानियाँ मेरे सामने थीं। मैंने इस संग्रह की हर कहानी दूसरी कहानी से मज़बूत और कोमल पाई। हर कहानी शूल सी घातक और फूल सी नाज़ुक थी। बात कहाँ से शुरू करता, यह मेरे लिए चुनौती बन गई।

ऐसा भी होता है, अभी क़लम उठाया ही था कि विश्व-समाज की हज़ारों प्यासी खिड़कियों से झाँकती आँखें मेरे आँसू भरे काग़ज़ पर तैर गईं। मुझे यह काग़ज़ अपने पाठक के लिए लिखना था, यह पत्र उस तक पहुँचा देना था, चाहे कुछ भी हो। एक ग़लत क़दम उठा, जो सही साबित हुआ और मेरे विचार-पथ का अँधेरा उजाला बन गया, एक नई दिशा की कॉस्मिक की कस्टडी हाथ आ गई। इस से बड़ी वसूली और क्या हो सकती है?

इन खिड़कियों से झाँकती आँखों ने मेरी आँखें खोल दीं, और मुझे आठ-आठ आँसू रुला दिया।

000

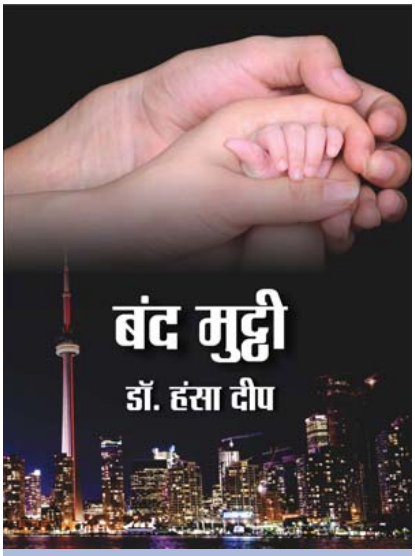

शोध-आलेख

'बंद मुट्ठी' भावनाओं का जीवंत दस्तावेज़

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
सहायक आचार्य (हिंदी)
राजकीय मॉडल डिग्री कॉलेज
अरनियाँ

हंसा दीप का प्रथम उपन्यास 'बंद मुट्ठी' सिंगापुर एवं कनाडा के घटनाक्रमों पर आधारित डायरी एवं संस्मरण दोनों विधाओं का सम्मिश्रण कहा जा सकता है। अधिकांश उपन्यास अतीत की स्मृतियों में ही चलता रहता है और धीरे-धीरे जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करता चलता है। मेरे विचार से इस उपन्यास का प्रमुख आधार है जीवन की छोटी-छोटी खुशियाँ और मानव जीवन से जुड़ी व्यक्ति विशेष की परंपराएँ। आज मानव बहुत ही अनिश्चितता का जीवन जीता है प्रत्येक क्षण आने वाले पल के प्रति शंकालू रहना प्रवृति सा बन गया है। इसका प्रमुख कारण है हमारा हम से ही जुदा हो जाना। हम होते तो हैं परंतु हमारा सारा अस्तित्व दूसरों पर आधारित रहता है। हम अपनी सोच के प्रति स्वतंत्र नहीं रह गये हैं। बचपन से माता-पिता के सोचे अनुसार चलना, फिर नाते-रिश्तेदार, मित्रों, मुहल्लेवाले, समाज आदि का ख़्याल रखते-रखते व्यक्ति खो सा जाता है। उसे क्या चाहिए, वो किसमें खुशी का अहसास कर सकता है अधिकांश दबा दिया जाता है। इसी प्रकार के छोटे-छोटे परंतु जीवनोपयोगी महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस सम्पूर्ण उपन्यास में शिद्दत से अनुगुंजित होते रहते हैं।

किसी भी रचना की पठनीयता ही उसकी लोकप्रियता का आधार होती है। 'बंद मुट्ठी' पठनीयता की दृष्टि से एक उत्तम कृति है क्योंकि भावात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण जब पाठक एक बार पात्रों के साथ जुड़ जाता है, तो वह पात्रों का होकर रह जाता है और पात्र उसके हो जाते हैं। पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ये हमारे किसी अपने की जीवनी है या इसमें हम भी कहीं न कहीं हैं। आज विभिन्न व्यस्तताओं के कारण हम स्वयं से ही खो गए हैं। उपन्यास के पात्र जगह-जगह पर झाँक कर हमसे हमको ही मिलाते हुए से प्रतीत होते हैं। तान्या और सैम तथा रिया में हम कहीं न कहीं स्वयं को या अपने परिवार के किसी न किसी सदस्य को पाते हैं।

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय मॉडलडिग्री कॉलेज, अरनियां, खुर्जा, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
मोबाइल : 8218405797
ईमेल : vickysingh4675@gmail.com

उपन्यास का प्रारंभ द्वंद्वात्मक परिवेश में होता है। माता-पिता का सामान्य परिवेश में भी आज संतान के समक्ष सत्य प्रकट करना मुश्किल सा हो गया है, ऐसे में जब संतान को बचपन में गोद लिया गया हो और उसे एक पौधे की भाँति सींच-सींच कर बड़ा किया गया हो, तब उसके दूर होने का अहसास पुनः माता पिता को सोलह-सत्रह वर्ष पूर्व पहुँचा देता है, जहाँ खुशियाँ तो हैं परंतु निसंतान होने का दर्द भी है। ऐसा दर्द जिसका उपचार एक संतान ही हो सकती है। स्वयं की कोख से संतान का जन्म दे पाने की पीड़ा एक स्त्री ही समझ सकती है। तान्या के जीवन के परिवर्तन की रूपरेखा उसके अध्ययन काल से बनती है। तान्या को उपन्यास की नायिका के रूप में यहीं से उभारा गया है। उपन्यास का ताना-बाना बहुत ही सुगठित रूप ऐसा बुना गया है कि राजी दी और पापा-मम्मी से प्रारंभ होकर जो कथा अग्रसर होती है, वह सहजता के साथ तान्या के जीवन में पाठक को लाकर खड़ा कर देती है। यहाँ से कथा धीरे-धीरे एक धीर, गंभीर नदी में परिवर्तित हो अंत में सुख के सागर में विलीन हो जाती है। हंसा जी ने इस भाव को बहुत ही सिद्धहस्तता के साथ उपन्यास में प्रस्तुत किया है। माता-पिता दोनों ने निश्चित किया हुआ होता है कि जब उनकी गोद ली हुई पुत्री सोलह वर्ष की हो जाएगी तब वे उसके जन्मदिन के अवसर पर उसे बता देंगे कि वे उसके जन्मदाता माता-पिता नहीं पालक माता-पिता हैं। सत्यनिष्ठा, मातृत्व, संतान सुख एवं उसके जुदा होने का आभास एक माता को किस हद तक आशंकित कर सकता है ये हमें उपन्यास का ये अंश दर्शाता है - ''दिल के रिश्ते जीते, ना जीते, पर पिछले सोलह सालों में जो खुशी तान्या को मिली है, उसको तो अब कोई छीन नहीं सकता। इन बीते सालों ने एक पूर्णता दी है उसे। 'माँ' न बन पाने का एक अधूरापन ख़तम किया है, तो उसकी पूँजी है अब। एक ऐसी धरोहर है, जो सदा ही तान्या की रहेगी देने वाले ने उसे इतना दे दिया है कि अब कुछ न भी दे, तो उन यादों के सहारे ही जी लेगी तान्या। ज़िंदगी कट जाएगी उसकी, उन यादों को याद करते हुए।'' ('बंद मुट्ठी' 2018, पृष्ठ सं. 15)

कथानक

प्रस्तुत उपन्यास कथानक अपने साथ वैशिष्ट्यपूर्ण है। कथानक की पृष्ठभूमि में सिंगापुर और टोरंटो (कनाडा) तथा अल्पतम रूप में पोलैंड व चीन हैं। बहु-देशीय पृष्ठभूमि वाले इस कथानक में पात्रों में भारत एवं हिंदी भाषा दोनों ही जीवंत हैं, भले ही परिवेश अलग है। अमेरिका और कनाडा में सपरिवार जीवन का लंबा समय व्यतीत कर चुकी डॉ. हंसा दीप के कथाकार मन में भारत, भारतीयता, संस्कृति तथा हिंदी भाषा के प्रति जुड़ाव, कथानक को सरल और हृदयस्पर्शी शब्द-चयन के साथ बहुत ही सहजता के साथ बढ़ाते हुए उपन्यास को पूर्णता प्रदान करती हैं। शब्द चयन आयु और वातावरण के अनुसार चित्रों को गति प्रदान करते हैं।

भारतीयता की उपस्थिति

प्रस्तुत उपन्यास के अग्रलिखित उदाहरण लेखिका के भारत और यहाँ की संस्कृति से असीम जुड़ाव को प्रदर्शित करते हैं-

पिता और किसान

''बीज तो बचपन में ही बोए जाते हैं, तभी तो फ़सल कटती है....., फल मिलता है....'' पापा के अंदर का दूरदर्शी पिता दार्शनिक बनने लगता।'' ('बंद मुट्ठी' 2018) ये वक्तव्य हर भारतीय पिता को व्याख्यायित करता है। जिस प्रकार एक किसान फ़सल को बोने के पूर्व खेत में मेहनत करता है। फिर बीज बोता है। सिंचाई, निराई तथा लंबी देख-रेख की प्रक्रिया के बाद फ़सल पूर्णता प्राप्त करती है। कई बार किसी कारणवश फ़सल ख़राब हो जाती है, तो किसान बहुत दुखी होता है क्योंकि उसकी सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है। किसान की तरह ही पिता संतान रूपी बीज को आरोपित करता है, उसे सींचता है, उसके सुख-दुख का ख़्याल रखता है और जब संतान उसी इच्छा अनुसार चलने के बजाय अपनी मर्ज़ी से चलती है, तब पिता को भी किसान की भाँति पीड़ा होती है। लेखिका द्वारा उपन्यास में इस उदाहरण को दिया जाना उनके भारत भूमि से जुड़ाव को स्पष्ट दर्शाता है।

स्त्रीमन की परख

''बधाइयों के सिलसिले के बीच मम्मी के आँसू बहने लगे। सपनों के साथ हक़ीक़त का धरातल टकराने लगा।'' ('बंद मुट्ठी' 2018) भारतीय परिवेश में यह दृश्य भी आम होता है जहाँ लोग दुख के अवसरों पर तो रोते ही हैं परंतु खुशी के अवसरों पर भी आँसू स्वयंमेव छलक आते हैं। जब रिश्तेदार कुछ दिन के प्रवास के बाद अपने घर के लिए वापसी पर होते हैं, तो विशेषकर स्त्रियाँ परस्पर गले मिलती हैं और कोई दुख का कारण नहीं भी होने पर एक दूसरे से गले मिलकर रोती हुई दिखाई देती हैं। लेखिका का यह कथन इस बात को समझाने में पर्याप्त सक्षम है भले ही दुख का वातावरण न हो स्त्रियाँ परस्पर विदाई के समय भी किसी न किसी ऐसी घटना का स्मरण करती हैं या वह स्मरण स्वयं आ जाता है, जो उसके किसी परिवारीजन के लिए अप्रिय एवं दुखकारी रहा हो। यह सामान्य तौर पर समझ में नहीं आता है परंतु एक स्त्री ही दूसरे स्त्रीमन को समझ सकती है। लेखिका के मन में आज भी अपने मध्य प्रदेश के गाँव की स्मृतियाँ है।

पुत्री की बेहरतरी की चिंता

''किसी 'अपने' के बगैर कितना बदल जाता है इंसान का जीवन! मम्मी और दीदी के पल्लू को पकड़ कर पली-बढ़ी लड़की आज एक नए देश में कितनी अकेली हो गई है।'' पुत्री का विवाह किसी भी परिवार के लिए बहुत बड़ी घटना होती है। जिस पुत्री को बड़े लाड़-प्यार से पाला, पोसा होता है वह हमेशा के लिए उनके आँगन को छोड़कर जाती है। घर के आँगन का हर कोना चित्कार करने लगता है। माता-पिता को पुत्री के जाने के बाद भी हर जगह पुत्री दिखाई देती है। माँ की चिंता शब्दों में प्रकट हो भी जाती है परंतु पिता का हृदय पुत्री वियोग को अंदर ही अंदर झेलता है। नायिका तान्या का पिता के घर जीवन बहुत अनुशासित एवं अच्छा होता है। भारत से बाहर जाकर जब कोई परिवार विदेश में रहने लगता है तो पाश्चात्य संस्कृति में रहते हुए भी उसके भीतर वर्षों से बैठे हुए पारंपरिक संस्कार, कई सारी वर्जनाओं की स्थापना उस परिवार के सदस्यों के मन में कर देते हैं।

मूल संस्कारों से अलग हटकर नई पीढ़ी जब अपने किसी निर्णय पर आगे बढ़ जाती है तो माँ-बाप के भीतर बैठा संस्कारी स्वभाव उस परंपरा से हटकर लिए गए निर्णय को स्वीकार नहीं कर पाता है। यहीं द्वंद्व उपन्यास में एक प्रमुख भावना के रूप में चित्रित हुआ है। माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध लिया गया निर्णय तान्या के जीवन में कई सारे बदलाव लाकर रख देता है। प्रत्येक संतान अपने परिवार द्वारा निर्धारित सीमाओं से परिचित होता है और जब वह उससे हटकर कोई निर्णय लेती है, तो उसके अंतर्मन में व्याप्त भय, अपना निर्णय न बताना, उसे अपने ही परिवार से ही दूर कर देता है।

दो पीढ़ियों में सोच का अंतर

''घर में बड़े बच्चे होने का सबसे बड़ा नुकसान यही होता है कि सारी तमन्नाएँ पूरी करने के लिए उसी बच्चे को केन्द्र बना लिया जाता है।'' हंसा दीप के उपन्यास के इस कथन से किसी भी परिवार का दृश्य उपस्थित हो उठता है। माता-पिता एवं अन्य परिवारीजन बड़े बच्चे से भावनात्मक स्तर पर बहुत ज़्यादा जुड़े होते हैं। इस विश्व में संभवत: बिरला ही हो जिसकी सभी इच्छाएँ, आशाएँ एवं तमन्नाएँ पूरी हो पाई हों। ऐसे में माता-पिता जो स्वयं नहीं कर पाए या जो उन्हें नहीं मिल पाया वह अपनी बड़ी संतान को देने के लिए दिन-रात एक कर देते हैं; और चूँकि वे पूरी ईमानदारी के साथ उस बच्चे की परवरिश करते हैं इसलिए उससे अपेक्षाएँ भी सर्वाधिक होती हैं।

ऐसे में यदि बड़ी संतान अपनी इच्छा से निर्णय ले ले, विशेषकर शादी-विवाह का तो माता-पिता के असंख्य सपने चूर-चूर हो जाते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है परंतु अतिशय प्रेम इसे बुराई में परिवर्तित कर देता है और माता-पिता के हृदय को व्यथित कर देता है। यद्यपि इसमें माता-पिता का कोई स्वार्थ नहीं होता है। यहाँ सिर्फ प्रेम होता है, संतान की बेहतरी की भावना होती है, परंतु संतान को युवावस्था में माता-पिता की सीख, नसीहत बुरी लगती हैं। एक शिल्पी के रूप में संतान का जीवन गढ़ने वाले पिता का मन इस बात से आशंकित रहता है कि कहीं उसकी संतान के निर्णय से उसका जीवन तबाह हो जाए वह दुखों के भँवर में न फँस जाए। चूँकि सारा मामला दो पीढ़ियों के मध्य सोच के अंतर का होता है। यहाँ अक्सर युवा पीढ़ी और पालक पीढ़ी की सोच एवं मान्यताओं में टकराव देखा जाता है।

विदेशों में हो या न हो परंतु भारत में तो यह हर घर की कहानी है। युवा संतान को माता-पिता की रोक-टोक एवं नसीहतें समझ आती तो हैं लेकिन तब तक उनकी बेहतरी के लिए चिंतित रहने वाले इस संसार को और उन्हें हमेशा के लिए छोड़कर जा चुके होते हैं और कल के युवा जिन्हें माता-पिता की नसीहतें चुभती हैं स्वयं माता-पिता बन चुके होते हैं।

धन का अपव्यय

''अमीरों की दुनिया में एक होड़-सी हो जाती है कि कौन, अपने बच्चों की शादी कितने ठाट से करेगा! यहीं पर सारे पैसे वाले अपने पैसों को इस तरह उड़ाते हैं कि लगता है, आने वाले मेहमानों को अपनी रईसी का प्रदर्शन कर रहे हों। पैसों के बलबूते पर साख टिकी होने का जीता-जागता उदाहरण है, ये शादियाँ।'' सर्वविदित है कि दुनिया प्रदर्शन की है। समाज में अपनी श्रेष्ठता दर्शाना मानव की प्राचीन वृत्ति है और इसी वृत्ति का परिणाम होता है शादी-ब्याहों में आवश्यकता से अधिक धन का व्यय। खर्च करने वाला सम्पन्न होता है परंतु वह यह भूल जाता है कि यदि वह उसी धन को किफ़ायत से खर्च करे और बचे हुए धन को समाज, कल्याण या देशहित में लगाए तो सम्पूर्ण मानव समाज का भला हो सकता है। अधिकांशत: धनवानों की सोच बहुत ही संकीर्ण पाई जाती रही है। इसी संकीर्णता का परिणाम में देश में सामाजिक असंतुलन।

दाम्पत्य जीवन और प्रेम

तान्या के जीवन में सैम का प्रवेश होता है। धीरे-धीरे सैम और तान्या के मध्य प्रेम पनपता है और विवाह संबंध में बँधने के साथ दोनों के प्रेम को लेखिका ने सम्पूर्ण विस्तार प्रदान करते हुए उसे सहज ग्राह्यता की स्थिति तक पहुँचाया है। पोलैंड सैम और सिंगापुर वासी तान्या साथ में जीवन जीने का तय कर लेते हैं और एक दूसरे का हाथ थामे हुए मुश्किल झणों में भी अपनी प्रेम भावना को कम नहीं होने देते हैं। नायक और नायिका के जीवन में आने वाले परिवर्तनों का लेखिका ने बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करते हुए भावनात्मक चित्रण किया है। संभवत: ऐसा बिरला ही परिवार हो जहाँ परिवारजनों में आपस में किसी बात पर नोंक-झोंक न होती हो, तर्क-वितर्क न होता हो। छोटी-छोटी नोंक-झोंक को लेखिका भी दांपत्य जीवन में सदस्यों के परस्पर लगाव एवं प्रेम का मूलाधार मानती हैं; क्योंकि जहाँ अपनापन नहीं, लगाव नहीं वहाँ कोई कुछ भी करे किसी भी सदस्य को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। बतौर उपन्यास ''जिस दिन झगड़ना बंद होगा, शायद हम एक-दूसरे से दूर होने लग जाएँगे।'' इस तथ्य का प्रमाण है कि हम जिससे प्रेम करते हैं और उसी से अपेक्षाएँ भी रखते हैं। उन्हीं अपेक्षाओं के लिए हक़ स्वरूप परिवारी सदस्य एक दूसरे से झगड़ते हैं।

बच्चों की खुशियों को विशेष बनाने की खुशी

माता-पिता बच्चों की खुशियों में अपनी खुशी ढूँढ़ते हैं वे अपनी संतानों से जुड़े छोटे से छोटे पल को विशेष बनाने के लिए सतत् प्रयासरत रहते हैं। उन्हें जो किसी कारणवश नहीं मिल पाया उसे भी वे बहुत ही गहनीयता के साथ अपनी संतानों को देने में असीम सुख का अनुभव करते हैं।

लेखिका द्वारा प्रस्तुत उपन्यास के अंत में रिया के सोलहवें जन्मदिन को विशिष्टता प्रदान करने के लिए की गई अनूठी कल्पना, उसका दृश्यांकन, स्काइप के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर घनिष्ठ रिश्तों को उस आयोजन में सहभागी बनाने का कार्य तथा प्रोजेक्टर के माध्यम से तान्या, सैम एवं रिया की तब तक की जीवन-यात्रा का स्मरणात्मक प्रदर्शन किया जाना, माता-पिता की भावनाओं का बहुत ही जीवंत प्रस्तुतीकरण है। लेखिका के स्त्री मन की उर्वरता तथा दूसरी तरफ़ एक पिता के रूप में सैम की रचनात्मकता का भी बहुत ही सुंदर उदाहरण है।

पात्र संयोजन एवं उद्देश्य

'बंद मुट्ठी' उपन्यास के सभी पात्र अपने आप में बहुत सत्यनिष्ठ हैं, सभी को एक-दूसरे का ख़्याल होता है, परवाह होती है, एक दूसरे से पारस्परिक स्नेह और लगाव सम्पूर्ण उपन्यास में स्पष्ट परिलक्षित होता है। संबंधों की प्रगाढ़ता और परस्पर अप्रस्तुत परंतु आवश्यक अपेक्षाओं के मध्य नायिका तान्या के 'स्व' की जीवन-यात्रा के भावपूर्ण खट्टे-मीठे अनुभव हृदयस्पर्शी हैं। पति का पत्नी के लिए, पत्नी का पति तथा संतान का माता-पिता के प्रति तथा दीदी एवं मौसी के प्रति जुड़ाव सम्पूर्ण पात्रों को एक दूसरे से अटूट रिश्ते से बाँधे रखता है। नायिका का बचपन से ही अधिकांश कार्यों के लिए अपनी दीदी पर निर्भर रहना वस्तुत: अकर्मण्यता का नहीं लगाव का बोधक है। ''मासी तो माँ-सी होती है।'' वाक्य वर्तमान बिखरते पारिवारिक रिश्तों के परिदृश्य में बहुत ही सार्थक लगता है। प्रवासी जीवन में भौगोलिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के मध्य पात्रों का परस्पर रिश्तों के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कहीं न कहीं लेखिका के प्रवासी मन में विद्यमान भारतीयता का परिचय देता है। साथ ही प्रवासी परिवेश में स्वयं को अपनी जड़ों के साथ जोड़े रखना उनकी जीवटता का बोध कराता है।

अपनी पुत्री के लिए सभी अवसरों को जुटाने, पुत्री को सभी प्रकार से आत्मनिर्भर बनने का पाठ पढ़ाने वाले स्नेहिल माता-पिता का अहं तब बुरी तरह से आहत होता है, जब वह तान्या का स्वेच्छा से विवाह का निर्णय सुनते हैं, और नायिका का यह निर्णय रिश्तों की मिठास में अनचाहे ही एक कसैलापन घोल देता है। दो पीढ़ियों की सोच का पार्थक्य पाठक घर-घर की कहानी का बोध कराते हुए पाठकों के मन से सीधा संवाद स्थापित करने में सक्षम है। लेखिका का उद्देश्य यहाँ बहुत ही स्पष्ट है कि वर्तमान परिदृश्य में संकुचित होते रिश्तों के मध्य तथा दो पीढ़ियों की विचारधारा की टकराहटपूर्ण स्थिति को माता-पिता की पारंपरिक सोच को विस्तार देकर भविष्य अच्छे हेतु रिश्तों के नवीन क्षितिज का सहज अन्वेषण संभव है। वस्तुत: उपन्यास का मूल उद्देश्य भी यही है।

भाषा एवं शैली

संस्मरणात्मकता के साथ उपन्यास कहीं-कहीं पर आत्मकथात्मक भी प्रतीत होता है। सरल एवं सुसंवादयुक्त शैली कहीं भी पाठ की गत्यात्मकता में बाधा उत्पन्न नहीं करती है। संवाद छोटे-छोटे है और शब्द चयन भावानुकूल होने के साथ-साथ अर्थग्राही हैं।

लेकिन यह भी सत्य है कि निजी जीवन के कई सारे चरित्र लेखक की कथा में आते ही हैं और जीवन का प्रभाव ही रचना को रचता है। प्रत्येक पात्र को उसकी पूरी संभावनाओं के साथ खोजकर प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पात्रों के अनुकूल भावों का पूर्ण निर्धारण करते हुए देश, काल और स्थितियों के अनुरूप प्रस्तुतीकरण उपन्यास को विशिष्टता के साथ-साथ भावात्मक क्रमबद्धता भी प्रदान करता है। मानव जीवन के मूल्यों का सत्यता और रूढ़ियों के मध्य से सुगम मार्ग का नैसर्गिक रूप से अन्वेषण रोचकता के साथ-साथ कथानक को विश्वसनीय एवं प्रामाणिकता स्थापित करता है। सम्पूर्ण उपन्यास में भाषाई क्लिष्टता न आने देना लेखिका के कुशल शब्द शिल्पी होने का प्रमाण है। हंसा जी का लेखकीय कौशल इस कला के माध्यम से भी स्पष्ट होता है कि लेखिका उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित हैं फिर भी वे उपन्यास के हर कोने में उपस्थित सी आभासित होती हैं।

उपसंहार

उपन्यास 'बंद मुट्ठी' पूर्ण जागरूक लेखकीय दस्तावेज़ होने के साथ-साथ भावनात्मकता का एक ऐसा संसार है, जिसमें एक पूरा परिवार अपने पूरेपन के साथ हँसी, खुशी तथा सुख-दुख के साथ पाठक के समक्ष अपनी विद्यमानता दर्ज कराता है। लेखिका की यह प्रथम औपन्यासिक कृति है परंतु कहीं भी इसमें अपरिपक्वता नहीं है और न ही इसमें कहीं पठनीयता और भाषा की सजगता के स्तर पर कमता परिलक्षित होती है। सहज प्रवाहमयी कहानी के प्राकृतिक बहाव में पाठक बहता चला जाता है और उपन्यास के अंत में सकारात्मकता के साथ अपनी मंज़िल पर पहुँचता है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

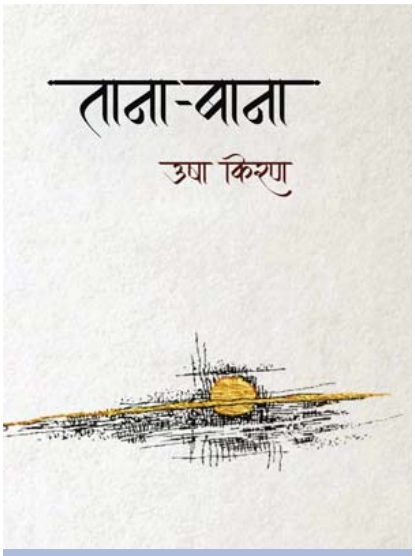

पुस्तक समीक्षा

ताना-बाना

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा

लेखक : डॉ. उषाकिरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. सीमा शर्मा
एल-235, शास्त्रीनगर,
मेरठ (उ.प्र.)250004
मोबाइल : 9457034271
ईमेल : sseema561@gmail.com

'कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो,दर्शन न हो, पर कविता अवश्य होगी। इसका क्या कारण है ? बात यह है कि संसार के अनेक कृत्रिम व्यापारों में फँसे रहने से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहने का डर रहता है। अतएव मानुषी प्रकृति को जागृत रखने के लिए ईश्वर ने कविता रूपी औषधि बनाई है।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन की पुष्टि डॉ. उषा किरण के काव्य संग्रह 'ताना -बाना' के रूप में हो जाती है। जब वे कहती हैं -''जो रह गए पीछे /उन्हें उठाएँ /गले लगाएँ /हौसले बढ़ाएँ !''

यह ऐसा समय है जब मनुष्य तथाकथित आधुनिकता की होड़ में अत्यधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। वह अपनी ही दुनिया में प्रसन्न है, जिसे किसी के सुख - दु:ख की कोई परवाह नहीं। जैसे उसका व्यक्तित्त्व निरंतर लघुता को प्राप्त हो रहा है या कहें बोन्साई में परिवर्तित होता जा रहा है। लेकिन वह अपनी ही दुनिया में मुदित है। गर्वित है। एक भावुक व्यक्ति के लिए यह वृत्ति असह्य हो सकती है। ऐसी ही किसी मनोदशा में 'बोन्साई' कविता का सृजन हुआ होगा। कविता अत्यधिक स्वकेन्द्रित होने की वृत्ति पर प्रहार करती है। यहाँ बोन्साई एक 'रूपक' बन गया है एक विशिष्ट वृत्ति के लिए। कविता का कुछ अंश दृष्टव्य है-

''जब से/ घने जंगलों को छोड़/ड्राइंग-रूम में सिमट गए हो /ज़रूरत के हिसाब से हँसते हो/इंचों में नाप के मुस्कराते हो /बरगद !/तुम कितने मॉडर्न हो गए हो..... तुम विस्तृत थे /उन्मुक्त थे /झूमते थे /हँसते थे। ..... गाते थे। ...../गुदगुदाते थे /तुम्हारी छाया में कुछ श्रम/ विश्राम पाते थे /उन लोगों को कहने दो /अपनी तरफ़ देखो /कितने साफ हो तुम /और कितने सलीक़ेदार।''

आप देख सकते हैं यहाँ 'साफ़ और सलीक़ेदार' इन दो शब्दों में कितना तीखा व्यंग्य कवयित्री ने किया है। डॉ. उषा किरण ऐसी कलाकार एवं कवि हैं जो तमाम विभेद भुलाकर सृजन की दुनिया में रत हैं। वे लिखती हैं –''गंध, स्पर्श, सम्बोधन /जात, धर्म, रंग, रूप /सबसे दूर !/बस जब जी चाहा /उँगली घुमाई और बना लिया / मनचाहा इंद्रधनुष /उसी के सीने पर छेड़ दिए स्वरों के तार /या रच दी कोई कविता / अंकित कर दिया कोई चित्र /या तैर लिए बनाकर नदी /जब चाहा मनचाहा विस्तार किया /और जब चाहा /पिटारी में रख लिया तहाकर /एक टुकड़ा आसमान।'' डॉ. उषा किरण का काव्य संग्रह भी उनके उसी विस्तृत नभ का एक अंश है।

'ताना-बाना' काव्य संग्रह शब्द और चित्रों की सम्यक जुगलबंदी है। शब्द और चित्रों के ताने-बाने से निकलती एक मधुर लय, जहाँ शब्द और चित्र एक दूसरे के पूरक बन गए हैं, लेकिन कभी-कभी यही शब्द और चित्र एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी की तरह, आमने-सामने खड़े दिखाई देते हैं। कभी शब्द, चित्र पर भारी तो, कभी चित्र शब्दों पर। उदाहरण के रूप में 'सुन रही हो न ' (पृष्ठ 78 –79) कविता को देख सकते हैं। इस कविता में उषा किरण ने घरेलू हिंसा जैसे संवेदनशील मुद्दे को बहुत सशक्त ढंग से उठाया है और यह भी संकेत किया है कि घरेलू हिंसा मात्र निम्न वर्ग की समस्या नहीं –''पथरीली दीवारों का कलेजा चीर /एक आर्त्तनाद गूँजता है /तथाकथित पॉश – कॉलोनी के /सुगढ़ गलियारों में।''

उषा किरण स्त्रियों के प्रति होने वाली हिंसा की न केवल पहचान करती हैं वरन् इसके प्रति विद्रोह की सीख भी देती हैं; क्योंकि वे जानती हैं पहल आपको स्वयं करनी होगी, कोई और आपके लिए नहीं आएगा –

''इससे पहले कि बहती पीड़ाओं के कुंड में डूब जाओ /इससे पहले कि सीने की आग राख कर दे तुम्हें /टूट जाए साँसों की डोर /या कि होश साथ छोड़ दे /हिम्मत करो उठो !.....आग को पीते जो /वो कमज़ोर हो नहीं सकते !/चाहे जो भी हो /पहला पत्थर तो उठाना होगा तुमको ही /तो उठाओ और पूरे ज़ोर से उछालो .... /तुम सुन रही हो न..?'' ऐसी ही एक अन्य कविता है 'सभ्य औरतें' जिसमें कवयित्री ने सामाजिक विकृतियों और पितृसत्तात्मक सोच पर प्रहार किया है। स्त्री की स्थिति दो अतिवादी छोरों पर टिकी है एक ओर वह देवी है तो दूसरी ओर दासी और भोग्या। उसे देवत्व प्राप्त करने के लिए सभ्य बनना होगा और सभ्य बनने की पहली शर्त है उसका चुप रहना – ''चुप रहो /ख़ामोश रहो /सभ्य औरतें चुप रहती हैं/ कुलीन स्त्रियाँ लड़ती नहीं /भले घर की औरतें शिकायतें नहीं करतीं पिटने का दर्द /तानों का दर्द /बच्चे जानने का दर्द / रेप का दर्द /एसिड फिंकने का दर्द /चुप रहती हैं सभ्य औरतें।'' यहीं से उषा किरण की सृजनात्मकता शुरू होती है। उनकी ये सभ्य औरतें उठती पीर को ताने-उलाहने देती हैं पर हँस-हँस कर, क्योंकि सभ्य औरतें बोलती नहीं; पर शब्दों में न सही प्रतीकात्मक रूप से ही सही वे अपनी बात कहती ज़रूर हैं। कवयित्री स्त्रियों को साहस देते हुए कहती हैं– ''कोई पीठ थपथपाए / ज़रूरी तो नहीं /कि यूँ भी तो चला जा सकता है /झूमते गुनगुनाते /अपनी ही ताल पर मस्त।''

यदि समग्रता में देखें तो इन कविताओं और चित्रों में लोक, लोक की भावनाएँ और लोकहित का भाव सर्वोपरि है। इसका प्रमाण ये पंक्तियाँ हैं –''एक रोटी बनाऊँ – चाँद जितनी बड़ी /जिसमें सब भूखों की / भूख समाए /चरखे पर कोई / ऐसा सूत कातूँ –कि सब नंगों का तन ढक जाए /मेरी छत हो इतनी विशाल /जो सभी बेसहारों की बसर हो जाए।''

यहाँ स्मृतियाँ, प्रेम, मातृत्व, तीज, त्यौहार, दर्शन आदि सब कुछ है। अभिव्यक्ति के लिए सरल भाषा, जिसे समझने के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं है। इसलिए पाठक सहज ही इन कविताओं से स्वयं को जुड़ा हुआ पाता है और उसे ये कविताएँ अपनी सी जान पड़ती हैं। यदि पुस्तक के आवरण की बात करें तो यह काव्य संग्रह एक कलाकृति बन गया है। मात्र तीन रंगों में सजा इसका आवरण बहुत आकर्षक है। इस पुस्तक को आप पढ़ सकते हैं,देख सकते हैं और अपने घर में सजा भी सकते हैं।

000

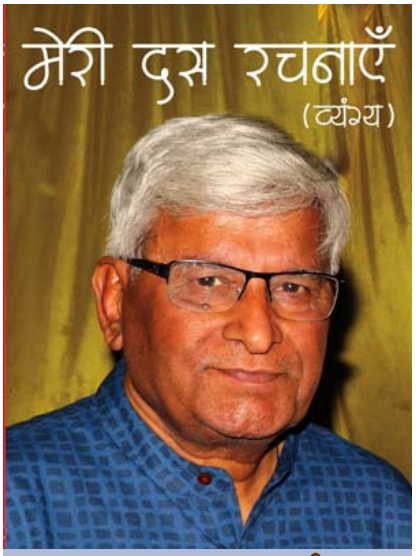

पुस्तक चर्चा

मेरी दस रचनाएँ

लेखक : डॉ. प्रेम जनमेजय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

डॉ. प्रेम जनमेजय का वर्तमान दौर की सर्वाधिक चर्चित व्यंग्य विधा के संवर्धन एवं सृजन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। व्यंग्य को एक गंभीर कर्म तथा सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा मानने वाले डॉ. प्रेम जनमेजय ने हिंदी व्यंग्य को सही दिशा देने में सार्थक भूमिका निभाई है। परंपरागत विषयों से हटकर डॉ. प्रेम जनमेजय ने समाज में व्याप्त अर्थिक विसंगतियों तथा सांस्कृतिक प्रदूषण को चित्रित किया है । व्यंग्य के प्रति गंभीर एवं सृजनात्मक चिंतन के चलते ही उन्होंने सन् 2004 में व्यंग्य केंद्रित पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका ने व्यंग्य विमर्श का मंच तैयार किया। डॉ. प्रेम जनमेजय के लिखे व्यंग्य नाटकों को भी अपार ख्याति मिली है। इस संग्रह में डॉ. प्रेम जनमेजय के दस प्रतिनिधि व्यंग्य सम्मिलित किए गए हैं। संग्रह में शामिल व्यंग्य इस प्रकार हैं– ओम गंदगीयाय नमः, राम वनवास का सीधा प्रसारण, इक श्मशान बने न्यारा, बर्फ का पानी, लक्ष्मीशरणम् गच्छामी, राजधानी में गंवार, टर गए हरीशचंद्र, अथ श्वान् शास्त्र कथनम्, साहित्य और सफेदी, अब मैं होली नहीं खेलता।

000

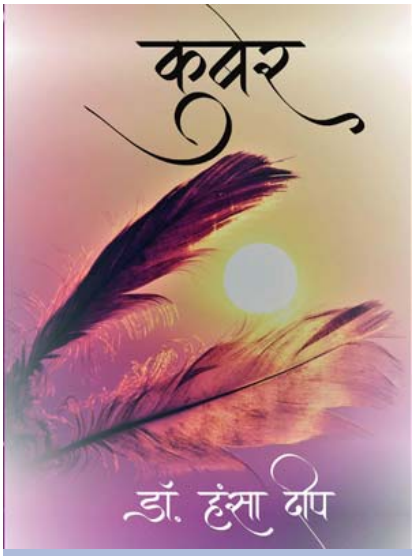

पुस्तक समीक्षा

कुबेर

(उपन्यास)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. हंसा दीप

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मप्र
मोबाइल : 9425067036
ईमेल: deepakgirkar2016@gmail.com

उपन्यासकार डॉ. हंसा दीप का हिंदी कथा साहित्य में चर्चित नाम है। कहानी और कथा लेखन में हंसा जी की सक्रियता और प्रभाव व्यापक है। डॉ. हंसा दीप की कई कहानियाँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। 'कुबेर' डॉ. हंसा दीप का दूसरा उपन्यास है, इन दिनों काफी चर्चा में है। पिछले साल इनका 'बंद मुट्ठी' उपन्यास भी काफी चर्चित रहा था। लेखिका का एक कहानी संग्रह 'चश्मे अपने-अपने' प्रकाशित हो चुका है। लेखिका वर्तमान में यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत हैं। लेखिका ने उपन्यास 'कुबेर' में बालक धन्नू के जीवन-संघर्ष, उसकी सफलताओं, विफलताओं और उसके जीवन के उतार-चढ़ाव को जिस कौशल से पिरोया है, वह अद्भुत है। 'कुबेर' उपन्यास का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है। इस उपन्यास के पात्र जीवंत हैं। यदि आप एक बार इस उपन्यास को पढ़ना शुरू कर देते हो, तो आप इसे बीच में छोड़कर उठ नहीं सकते हैं, आपको इस उपन्यास के पात्र अपनी दुनिया में खींच लेते हैं। इस उपन्यास में गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ है। पुस्तक की भाषा सरल व सहज है। हंसा जी की लेखनी में परिपक्वता है और इनकी रचनाधर्मिता हमेशा सोद्देश्य रही है। इस उपन्यास का उद्देश्य है ग़रीब असहायों की सेवा करने जैसी भावनाओं को जगाना। इस कथा के पात्र जब एक दूसरे से बिछुड़ते हैं, तो उस बिछुड़ने के दर्द को हंसा जी ने बहुत ही खूबसूरत शब्दों में व्यक्त किया है। नायक धन्नू के जीवन पर केंद्रित इस उपन्यास का कथानक सकारात्मक और प्रेरणादायी है। कथाकार ने इस उपन्यास की कथा में मानवीय रिश्तों के भावनात्मक पहलूओं के साथ व्यावसायिक पक्षों को भी प्रभावी तरीके से अभिव्यक्त किया है। लेखिका इस उपन्यास में लिखती हैं ''कुबेर का ख़ज़ाना नहीं है मेरे पास जो हर वक़्त पैसे माँगते रहते हो। माँ की इस डाँट से बालक धन्नू समझ नहीं पाया कि दस-बीस रुपयों में ख़ज़ाना कैसे आ जाता है बीच में, यह ख़ज़ाना कहाँ है और इसमें पैसे ही पैसे हैं, कभी ख़त्म न होने वाले। अगर यह सच है तो - माँ के लिए एक दिन यह ख़ज़ाना हासिल करके

रहूँगा मैं। एक छोटे से गाँव के ग़रीब परिवार का धन्नू किस प्रकार अपनी मेहनत, लगन, कर्मठता, तन्मयता, क़ाबिलियत और दृढ़ इच्छाशक्ति से अपने गाँव से न्यूयॉर्क पहुँचता है और कुबेर बनता है और साथ ही उसके द्वारा गोद लिए ग्यारह बच्चे भी कुबेर बनते हैं, यह तो आप नायाब और बेमिसाल उपन्यास 'कुबेर' पढ़कर ही समझ पाएँगे। उपन्यास पढ़ते हुए कहीं-कहीं आँखें भीग जाती हैं। जीवन-ज्योत संस्था में रहने वाले और वहाँ के मुख्य कार्यकर्ताओं के रहन-सहन, खान-पान, वार्तालाप-संभाषण आदि को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे लेखिका जीवन-ज्योत में उनके साथ रही हो।

कथाकार हंसा जी ने इस उपन्यास को नोबेल पुरस्कार विजेता माननीय कैलाश सत्यार्थी जी को समर्पित किया है। देश में ग़रीबी, बालश्रम और सामाजिक, प्राकृतिक त्रासदी से दिन-रात भिड़ने वाले असली नायकों को जानने की चाह रखने वालों के लिए 'कुबेर' एक बेहद पठनीय उपन्यास है। इस उपन्यास की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से वरिष्ठ साहित्यकार श्री पंकज सुबीर ने लिखी है। श्री पंकज सुबीर ने भूमिका में लिखा है "असल में हंसा जी के उपन्यासों की कथावस्तु जीवन से ली गई होती है। आम आदमी के जीवन से। उसके संघर्ष, उसकी सफलताएँ, विफलताएँ, ख़ुशी, ग़म ये सब हंसा जी के कथा विस्तार में शामिल रहता है। उनकी शैली तथा शिल्प इतना रोचक तथा संप्रेषणीय होता है कि उपन्यास पढ़ते समय आगे के घटनाक्रम की जिज्ञासा बनी रहती है।" लेखिका जीवन की समस्याओं को बख़ूबी उठाती हैं और संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं। इस पुस्तक को पढ़ते हुए इस उपन्यास के पात्रों के अंदर की छटपटाहट, उनके अन्तर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है। वैश्विक परिवेश में झिलमिलाते मानवीय मूल्य पाठकों को ताज़गी से भर देते हैं। पूरा उपन्यास एक सधी हुई भाषा में लिखा गया है। उपन्यास के कथानक में कहीं बिखराव नहीं है। बुनावट में कहीं भी ढीलापन नहीं है। उपन्यास की बुनावट और कथा का प्रवाह पाठक को बाँधे रखता है, प्रस्तुत उपन्यास का कथानक गतिशील है जिससे पाठक में जिज्ञासा बनी रहती है। इसका कथानक इसे दूसरे उपन्यासों से अलग श्रेणी में खड़ा करता है। 'कुबेर' बहुपात्रीय उपन्यास है। पात्रों की अधिक संख्या से ऊब नहीं पैदा होती है, अपितु उनके संवाद से स्वाभाविकता का निर्माण होता है। प्रत्येक पात्र अपने-अपने चरित्र का निर्माण स्वयं करता है। अन्य पात्रों के साथ प्रत्येक घटना धन्नू उर्फ़ डीपी के आसपास घूमती है। उपन्यास रोचक है और अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। अंत बहुत प्रभावशाली है।

'कुबेर' उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है। उपन्यास का कथानक इस प्रकार है। एक नेताजी धन्नू का उत्साह देखकर उसे गाँव के सरकारी स्कूल से निकालकर गाँव से दूर एक अँग्रेज़ी स्कूल में दाखिला करवा देते हैं। दो वर्ष तक सब कुछ ठीक चलता है क्योंकि नेताजी ही उसके स्कूल की फीस, पुस्तकें और कॉपियों का इंतज़ाम करते हैं लेकिन जब दो साल बाद नेताजी सत्ता में नहीं रहते है तब धन्नू पर आफत आ पड़ती है। उसके माता-पिता बहुत ग़रीब हैं जो उसके स्कूल की फीस, पुस्तकों और कॉपियों की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। स्कूल में धन्नू को रोज़ मार पड़ती है और अपमान सहन करना पड़ता है। एक दिन धन्नू बिना किसी की बताए ग़ुस्से में अपना घर छोड़ देता है और गाँव से बहुत दूर शहर के रास्ते पर वह गुप्ता जी के ढाबे पर काम करता है। वह कड़ी मेहनत और लगन से काम करता है। वह कुछ दिनों के बाद अपने माता-पिता से मिलने गाँव जाता है लेकिन उसके गाँव पहुँचने के पूर्व ही उसके माता-पिता का देहांत हो चुका होता है। वह वापस ढाबे पर आ जाता है। इस ढाबे पर एक स्वयं सेवी संस्था 'जीवन ज्योत' संस्था के दादा आते रहते हैं और धन्नू के काम की लगन से वे उससे काफी प्रभावित होते है। वे धन्नू को अपने साथ जीवन ज्योत में लेकर चले जाते हैं। दादा उसके पढ़ने की इच्छा को देखकर उसे जीवन ज्योत में ही पढ़ाते हैं। धन्नू सब कुछ जल्दी सीख जाता है और वह जीवन ज्योत संस्था में सेवा कार्य में जुट जाता है। 'जीवन ज्योत' संस्था के दादा ने धन्नू में एक अजब आत्मविश्वास पैदा किया। यहाँ उसे धन्नू प्रसाद से डीपी नाम से पुकारा जाने लगता है। जीवन ज्योत में कई बेसहारा लोग आते और वहाँ के ही हो जाते। इस संस्था की सहायता से बच्चे पढ़ लिखकर बाहर जाते और अपनी आमदनी में से संस्था को पैसा भेजते रहते। कुछ बच्चे विदेशों में भी चले गए थे और इस संस्था को आर्थिक रूप से सहायता करते रहते थे। दादा कई बार विदेशों में जाते रहते हैं तब जीवन ज्योत संस्था को डीपी ही सँभालता है। वह अपनी जवाबदारी को बख़ूबी निभाता है। वह इस संस्था में सबका चहेता बन जाता है। एक बार दादा उसे अपने साथ न्यूयार्क ले जाते हैं। न्यूयार्क में दादा को हार्ट अटैक आता है और दादा का देहांत हो जाता है। न्यूयार्क में डीपी की मुलाक़ात भाईजी जॉन से होती है। भाईजी की सहायता से डीपी दादा का अंतिम संस्कार न्यूयार्क में ही करता है। दादा के देहांत के पश्चात् जीवन ज्योत की सारी जवाबदारी डीपी के कंधों पर आ जाती है। भाई जी की सलाह पर डीपी न्यूयार्क में ही अचल संपत्ति (रियल एस्टेट) का व्यवसाय प्रारम्भ करता है। इस व्यवसाय में डीपी को सफलता मिलती है। डीपी इस व्यवसाय की आमदनी का पैसा जीवन ज्योत संस्था को भेजता रहता है, लेकिन जीवन ज्योत संस्था में ग़रीब, बेसहारा नए सदस्यों की संख्या में प्रतिदिन बढ़ोतरी होती है। डीपी भाई जी की सलाह पर शेयर बाज़ार की बारीकियों को समझकर इस नए व्यवसाय में निवेश करता है और साथ ही विभिन्न स्थानों पर अपनी व्याख्यान (स्पीच) देकर आय के स्त्रोत बढ़ाता है। डीपी के मन में दादा की दी हुई एक पूँजी थी "सब अपने हैं, सबका दुःख अपना है, सबकी ख़ुशी अपनी है।" जहाँ लोग दूसरों के ग्राहकों को खींचने के लिए जी-जान एक कर देते, वहीं डीपी दूसरों की मदद के लिए अपने ग्राहकों को भी उनकी सिफारिश करता। डीपी न्यूयार्क जैसे शहर में भी काफी लोगों का चहेता बन चुका था। समय हमेशा एक सा नहीं रहता। सफलता का सिलसिला कई बार क़ायम नहीं रह पाता। डीपी के साथ भी यही होता है। इधर भारत में बाढ़ आती है जिससे काफी लोग बेघर हो जाते हैं। वे जीवन ज्योत संस्था में आकर आसरा लेते हैं और ग्यारह मासूम बच्चे जिनके माता-पिता बाढ़ के कारण जीवित नहीं रह

पाते हैं वे भी जीवन ज्योत संस्था में लाए जाते हैं। अब डीपी को जीवन ज्योत संस्था में अधिक पैसे भेजने का दबाव था। वह कुछ ज़मीन के टुकड़े, मकान बेचने का विचार कर ही रहा था। लेकिन अभी डीपी का समय ठीक नहीं चल रहा था। अचल संपत्ति के भाव एकदम से गिर गए। डीपी को कुछ अचल संपत्ति कम भाव में ही बेचनी पड़ी। डीपी उन ग्यारह मासूम बच्चों को गोद ले लेता है। इन ग्यारह बच्चों में से एक बच्चा धीरम गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाता है। डीपी धीरम को अमेरिका अपने पास बुलवाकर उसका अच्छे से इलाज करवाता है। इलाज में काफी पैसा खर्च होता है। डीपी पैसा कमाने के लिए टैक्सी भी चलाता है। धीरम धीरे-धीरे ठीक होने लगता है। इधर शेयर मार्केट और ज़मीन, मकान के सौदों में डीपी अपनी मेहनत, बुद्धि और लगन से काफी पैसे कमा लेता है। वह अब जीवन ज्योत संस्था और अपने गाँव को भरपूर पैसा भेजने लगा। अब डीपी का काम था सेमीनार, वर्कशॉप और कक्षाओं के माध्यम से अपने अनुभवों को बाँटना। धन्नू उर्फ़ डीपी उर्फ़ कुबेर ने अपने गाँव को ही नहीं अपने गाँव के आसपास के गाँवों को भी कुबेरमयी बना दिया। अब धन्नू के पास ख़ज़ानों के कई भण्डार हैं। एक देश में ही नहीं, कई देशों में हैं। कुबेर एक विचार से प्रस्फुटित हुआ, क्रांति की तरह फैला और एक तीली से ज्वाला लेकर मशाल में परिवर्तित हो गया।

पुस्तक में यहाँ-वहाँ बिखरे सूत्र वाक्य उपन्यास के विचार सौंदर्य को पुष्ट करते हैं। जैसे - वैसे भी काम करवाना तो हर कोई जानता है पर काम को सम्मान देना हर किसी के बस की बात नहीं। (पृष्ठ 32)

-मन के रिश्तों को बनने के लिए कभी किसी शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ती। (पृष्ठ 71)

-हर किसी को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती है। (पृष्ठ 78)

-बग़ैर सैनिकों के दो देशों की सीमा रेखाएँ बहुत कुछ कहती हैं, बहुत कुछ सिखाती हैं। मानवता के पाठ, शान्ति के पाठ, नागरिकों की आपसी समझ और विश्वास के पाठ। (पृष्ठ 121)

-उम्र की लकीरों में समझने और समझाने का कौशल छुपा होता है जो हर बढ़ती लकीर के साथ निखरता जाता है। (पृष्ठ 125)

-एक जमा पूँजी थी मन में दादा की दी हुई कि - ''सब अपने हैं, सबका दुःख अपना है, सबकी ख़ुशी अपनी है।'' (पृष्ठ 127)

-मैं ऑटोग्राफ देना नहीं बनाना चाहता हूँ। आपको बनाना चाहता हूँ इस लायक कि मैं एक दिन आपसे ऑटोग्राफ माँग सकूँ। (पृष्ठ 241)

-तालियाँ अब भी बज रही थीं। उनकी थमती साँसों में मानो हर बजती ताली उनके कानों में फुसफुसा रही थी - ''यहाँ एक नहीं, कई कुबेर खड़े हैं।'' (पृष्ठ 259, उपन्यास का अंतिम वाक्य)

हिंदी साहित्य में 'कुबेर' एक अनूठा उपन्यास है। कथा नायक का संघर्ष बड़ा है, पर कथन-भंगिमा सामान्य है। यही बात उपन्यास को विशिष्टता प्रदान करती है। लेखिका का यह उपन्यास 'कुबेर' ऐसा समसायिक उपन्यास है जो आज तो प्रासंगिक है ही भविष्य में भी प्रासंगिक रहेगा। पुस्तक पाठकों को अपने कर्म-जीवन की यात्रा पर सोचने पर विवश करती है। उपन्यास के भाव पक्ष के साथ ही भाषा पक्ष भी सुदृढ़ है। इस उपन्यास के माध्यम से डॉ. हंसा दीप ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। यह उपन्यास समकालीन हिंदी उपन्यासों के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है। यह एक प्रेरणादायी उपन्यास है। इसे महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। डॉ. हंसा दीप एक उम्दा और दिलचस्प उपन्यास लिखने के लिए बधाई की पात्र हैं।

000

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— —**सदस्यता शुल्क :**— — — — — — —**चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — —

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — —**दिनांक :** — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार अमजद ख़ान), ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

धर्मपुर लॉज

समीक्षक : राजीव कार्तिकेय

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

राजीव कार्तिकेय
ग्राम – पुरुषोत्तमपुर, पोस्ट – जनार्दनपुर
भाया – कल्याणपुर, जिला – समस्तीपुर
बिहार – 848302
ईमेल : rajeevkartikeya@gmail.com

कथाकार प्रज्ञा का इस वर्ष लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज से प्रकाशित उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' एक राजनीतिक उपन्यास है। इससे पहले उनका लिखा उपन्यास 'गूदड़ बस्ती' भी काफी चर्चित रहा था। अस्सी के दशक में एक न्यायिक आदेश से दिल्ली की कपड़ा मिलों को बंद कर दिया गया था; जिससे मिलों के हज़ारों श्रमिक बेरोज़गार होकर विस्थापित होने के लिए मजबूर हो गए, उन्होंने मुआवज़े और ज़िंदगी को फिर से पटरी पर लाने की एक लम्बी लड़ाई लड़ी। इस समय में मज़दूरों की यूनियनों ने भी सड़क से न्यायालय तक शिद्दत के साथ संघर्ष किया पर बावजूद इसके इतिहास की किताब का यह पन्ना जैसे गुमनाम ही रहा। प्रज्ञा का उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' इतिहास के इसी हिस्से को जैसे जीवित कर देता है। देश की राजधानी दिल्ली में घटी इस भयानक त्रासदी पर अब तक का यह पहला उपन्यास है जो दिल्ली की अन्य कपड़ा मिलों विशेषकर घण्टाघर के पास स्थित बिड़ला मिल के मज़दूरों के हालात और जनता के सच्चे नेता, स्वतंत्रता सेनानी गुरु राधाकृष्ण की आंदोलनकारी छवि को उजागर करता है।

उपन्यास, पुरानी दिल्ली के मुकीमपुरा, मल्कागंज, घण्टाघर, दिल्ली की मशहूर बिड़ला मिल के जरिए न सिर्फ मज़दूर बस्तियों के बल्कि उस क्षेत्र के पूरे जन-जीवन का आईना बनता है। प्रज्ञा ने इसे राजनीतिक-सामाजिक सरोकारों और प्रतिबद्ध दृष्टि से रचा है। यह दृष्टि उनकी कहानियों –'तकसीम','स्याह घेरे', 'मन्नत टेलर्स', 'ताबूत की पहली कील', 'राजा का कुंड' आदि में भी साफ दिखाई देती है, क्योंकि प्रज्ञा का कथा साहित्य स्त्री होने के नाते स्त्री विमर्श का बँधा-बँधाया रास्ता अख़्तियार नहीं करता, वह राजनीति और अर्थ जगत् की विडम्बनाओं की गहराइयों में उतर कर यथार्थ के अनेक आयामों को अपने साहित्य में खोलता है। 'धर्मपुर लॉज' औद्योगिक क्षेत्र के बीच, बसा एक जीवंत आसरा है। यहीं से दिशा खुलती है तो बच्चों –वयस्कों के लिए जनता पुस्तकालय बना दिया जाता है और युवाओं के लिए राजनीतिक व्यक्तित्व को गढ़ने की इबारतें सजाता है। यह शहरी आंचलिकता के भाव को उसकी सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। यहाँ मज़दूर इकाई एटक की कार्यवाहियाँ भी होती हैं, सब्जीमंडी क्षेत्र की समस्याएँ भी हल होती हैं और युवा एआईएसएफ का बनता चेहरा भी नज़र आता है।

उपन्यासकार ने आज़ादी के बाद भारत की राजधानी दिल्ली के इस क्षेत्र के गठन और उजाड़ का ऐतिहासिक ब्यौरा पेश किया है, जिसमें स्वतंत्रता सेनानी, जन नेता, अपने सोच में कम्युनिस्ट और कार्यपद्धति में गांधीवादी गुरु राधाकृष्ण का वास्तविक जीवन है तो उपन्यास के तीन काल्पनिक पात्रों संजय सोनकर, द्विजेन्द्रनाथ त्रिपाठी और नन्दन मण्डोरिया का जीवन भी। इन तीन नौजवानों और सब्ज़ी मंडी इलाके के लोगों के जीवन में आया बदलाव

धर्मपुर लॉज की ही देन है। यह उपन्यास पिछली सदी के अंतिम वर्षों से पाठक को गुज़ारकर बताता चलता है कि कुछ ऐसे ठिकाने संघर्षशील लोगों ने ज़रूर बनाए हैं जिससे वर्तमान पीढ़ी प्रभावित हो और आने वाली पीढ़ी को भी दिशानिर्देश मिलता रहे। साथ ही यह भी कि राजनीति का सकारात्मक चेहरा कैसा हो, आंदोलन का चरित्र क्या हो। इस तरह यह उपन्यास भविष्य की ओर ले जाने का रास्ता भी खोलता है।

उपन्यास को पढ़ने के बाद इतना ज़रूर लगता है - काश! एक-एक 'धर्मपुर लॉज' हर इलाके में होता और उसे संचालित करने के लिए गुरु राधाकृष्ण जैसा जीवट-जुझारू व्यक्तित्व होता जिससे समाज की हर समस्या चाहे वो राजनीतिक, आर्थिक हो, सामाजिक हो, पारिवारिक हो, किसी भी तरह की हो, लोग साझा कर लेते। गुरुजी के जाने के बाद कोई दूसरा उन जैसा नहीं हुआ, अगर होता तो शायद हज़ारों की संख्या में बेदख़ल कर दिए गए मज़दूरों की हालत कुछ और होती। उपन्यास में नई पीढ़ी का पात्र नन्दन गुरुजी की विचार यात्रा का सच्चा वाहक बनता है। उनका विचार लिए दिल्ली से बाहर चला गया नंदन अपने रोज़गार से अलग मज़दूरों के लिए ज़िम्मेवारी महसूस करता है। उसका कारवाँ गुरुजी की तरह नहीं हो सकता पर वह उस राह पर अपनी ज़िम्मेदारियों के साथ चलता है। यही वह प्रगतिशीलता है, जो अंत तक हमें जीवन के प्रश्न के साथ, सामाजिक-राजनीतिक प्रश्न के लिए खड़ा रखती है। उपन्यास का एक पात्र कहता है -''सच की लौ कितनी अकेली हो अंधेरे को चुनौती देती है।''

यह उपन्यास अपने कलेवर में बिल्कुल नया है। नया केवल हिंदी उपन्यास में दिल्ली की इस ज़मीन का, कपड़ा मिलबन्दी का अब तक का अछूता विषय ही नहीं बल्कि ट्रेड यूनियन गतिविधियों के स्वरूप की दृष्टि से भी नया। कथाकार प्रज्ञा ने 233 पृष्ठों में सँजोई कहानी को अलग-अलग शीर्षकों के हवाले से बयान किया है। इस उपन्यास के शिल्प की खासियत है कि प्रत्येक शीर्षक का अंत कहीं काव्यात्मक पंक्तियों से हो रहा है तो अधिकांश सूक्तियों में और दार्शनिक अंदाज़ में। मसलन--''जीवन की प्रयोगशालाओं में विफलताएँ, सफलता से कहीं अधिक सिखा-बना जाती हैं'', ''कुछ सुंदरताएँ भी अपनी आचरण में विद्रूप होती हैं'', 'ज़िंदगी बदतर सही मौत से तो बेहतर है'', ''चमकती दुनिया से परे हसरतों की एक दुनिया न जाने कब से धड़कती है'', ''औलादें कुंठित महत्त्वाकांक्षाओं की सूली पर बेधड़क चढ़ा दी जाती हैं'' या फिर ''इश्क की नाव दोस्त ही पार लगाते हैं और कभी-कभी दोस्त ही उसमें छेद भी कर देते हैं''- जैसे कथन उप शीर्षक में व्यक्त कथा का सार भी हैं जो जीवन की घोर सच्चाई को ज्ञानात्मक-संवेदन के साथ पाठक के सामने रखते हैं। उपन्यास के शिल्प में यह बिल्कुल अनूठा प्रयोग है। भाषा, यथार्थ को पूरी रवानगी से पेश करती है। अनेक स्थलों पर आप उपन्यासकार की उँगली थामकर दिल्ली के इस इलाके को पूरा घूम लेते हैं। पूरा भूगोल आपके ज़हन में दर्ज हो जाता है। यही नहीं नन्दन, त्रिपाठी-मीरा के प्रेम प्रसंग में लेखिका की भाषा जिस प्रखर संवेदना से आगे बढ़ती है और पाठक को एकाकार करती है वह चकित करने वाला है। कहीं संजय के प्रेम में डूबी कांता है तो कहीं उसका भाई नन्दन जो मीरा से अनकहा- इकतरफा प्रेम जीवन भर निभाता है। जिस दिन नन्दन को मीरा की पसंद त्रिपाठी के विषय में पता चलता है, वह पहली बार अपनी विवाहित बहन से फ़ोन करके उसके अतीत के बारे में जानना चाहता है। यह प्रसंग सम्वेदना से तरल है जो पाठक के मर्म को छू लेता है। नन्दन कहता है-''कांता! तुझे अभी भी संजय की याद आती है?''

जिसके बारे में आज तलक दोनों के बीच कभी बात नहीं हुई थी उसका ज़िक्र इतने दिनों बाद उठा तो कांता हैरान रह गई। ''बता न कांता ?'' कांता की चुप्पी को तोड़ता नन्दन फिर बोला।

''जो बीत गया अब जाने दे भैया। न मैंने उसका मन टटोला न उसने ही कुछ कहा। वो तो जानता भी नहीं था मैं ही....आज भी...'' (155) यही नहीं उपन्यास में त्रिपाठी और मीरा की प्रेमकथा भी है जो जाति के संकीर्ण बंधन तोड़ती है। परिवार से विद्रोह करती है। दलित लड़की और ब्राह्मण लड़के का विवाह। दोनों की बच्ची के जन्म के कुछ दिन बाद मीरा की एक बीमारी से मृत्यु पाठक को हतप्रभ कर देती है।

यह उपन्यास बहुत रोचक तरीके से द्विजेंद्रनाथ त्रिपाठी के पिता पंडित बृजेन्द्रनाथ त्रिपाठी की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा, आपातकाल के समय से लगातार इलाके में गुरु जी का प्रतिद्वंद्वी बनकर खड़ा होना और उनके नैतिकता से विचलन को प्रेमा प्रसंग के ज़रिये सामने लाता है। वहीं चंद्रभान जैसे जीवट पात्र के अनेक रोचक क़िस्से भी सामने आते हैं। जिसकी जिजीविषा और जीवन में प्रयोगों की इच्छा कभी ख़त्म नहीं होती। स्त्री पात्रों में मीरा, कॉमरेड अमरजीत, कॉमरेड प्रकाश, सुनीता शर्मा गुरु, जैसे सशक्त किरदार भी हैं और जीवन की विडंबनाओं से जूझते कांता, त्रिपाठी और नन्दन की माँ जैसे पात्र भी। जीवन्त हास्य की अनेक घटनाएँ उपन्यास में शामिल हैं चाहे वह चन्द्रभान के प्रयोगों का विफल होना हो या दोस्तों के स्कूली जीवन और जवान उम्र के क़िस्से हों। चन्द्रभान की बहुओं के ज़ेवर का लुट जाने का प्रसंग बहुत रोचक शैली में लिखा गया है। कांता के दुखी गृहस्थ जीवन की त्रासदी से नन्दन उसे सशक्त राह देता है और उसकी बेटी सपना का दायित्व उठाता है। कहानी दलित जीवन के पक्षों को नन्दन मन्डोरिया और संजय सोनकर जैसे पात्रों के पक्ष से भी रखती है। अनेक किरदारों से जुड़ा यह उपन्यास अनेक ज़िंदगियों की कहानी कहता चलता है। अनेक किरदार इसमें शामिल हैं। उपन्यास शहरी आंचलिकता को अपने अलग अंदाज़ में पेश करता है, जिसमें कहा जाए तो दिल्ली के भौगोलिक ढाँचे को निहारा जा सकता है। इसमें हर जाति, सम्प्रदाय, विश्वास, वर्ग, मत के लोग हैं। सबकी अपनी दिक़्क़तें भी हैं और उससे निबटने का हौसला भी और वे सब उसका पुरज़ोर सामना भी करते हैं। चाहे परिस्थितियाँ चौरासी के दंगे की हों, या बाबरी विध्वंस की या फिर ग्लोबलाइज़ेशन, प्राइवेटाइज़ेशन के बाद का दौर हो। महत्त्वपूर्ण है कि सोवियत रूस के पतन और उदारीकरण के दौर में निराश नन्दन गुरु जी से सवाल करता है कि अब इस विचारधारा का क्या होगा?

इस पर गुरु जी कहते हैं- ''नन्दन! हमारा अपना कम्युनिज़्म है। हम अपनी राह चलते हैं। हमारे कम्युनिज़्म का मतलब हमारे मज़दूर हैं। पूँजीवाद की पहले भी कोशिश रही कि वर्गीय चेतना को मिटाया जाए और हमारी पूरी लड़ाई इसी मिटाए जाने के ख़िलाफ़ रही। हम पहले भी लड़ते थे आज भी लड़ेंगे।'' पचहत्तर के बाद से अट्ठानवे तक की पूरी ऐतिहासिक, सामाजिक परिघटनाएँ अपने सरोकार के साथ यहाँ दर्ज हुई हैं। आज एक बात आम है, सब पूछते हैं क्यों अलग-अलग मुद्दों पर सबको सम्मिलित हस्तक्षेप करना चाहिए? उपन्यास के हवाले से एक बेहतर जवाब दिया गया है - ''तोड़ने वाली ताक़तें भी इसी सोच से हमला करती हैं। ये तो औरतों का मुद्दा ठहरा, ये मज़दूर का है, ये किसान का है, ये सरकारी नौकरीवाले का। इसमें बड़ी आसानी से टुकड़े कर दिए जाते हैं। हम अलग, वो अलग। कोई ज़ात से अलग, कोई पैसे से, तो कोई काम से अलग, जबकि समाज में तो सब लोग आते हैं। जाति, धर्म, भाषा, लिंग, सम्प्रदाय के आधार पर सत्ताएँ हमेशा से बाँटने का काम करती आई हैं पर साझी लड़ाई दूर तलक जाकर असर दिखाती है। यही वास्तविक मुक्ति है।'' गुरुजी आगे कहते हैं - ''ग़ौर करो तो सारे मुद्दे एक-दूसरे से जुड़े हैं बशर्ते तुम अपने तक सीमित न रहो। व्यापक समाज और उसकी मुक्ति की बात समझो-सोचो। मुक्ति के संघर्ष साझे होते हैं।'' दिल्ली की कपड़ा मिलों के बन्द होने, प्रबंधन की चालबाज़ियाँ और मज़दूर परिवारों के उजड़ने और विस्थापन की कहानी कहने वाला पहला उपन्यास है। जहाँ दिल्ली से हज़ारों, लाखों मज़दूर बेदख़ल हुए। अकेले बिड़ला मिल से ही प्रबंधन ने बेदर्दी से हज़ारों मज़दूरों को निकाल दिया। हिमाचल में सोलन के बद्दी में मिल स्थानांतरित होने पर मज़दूरों को कोई बुनियादी सुविधा नहीं मिली। इस बीच गुरुजी की मौत, (सन 1996) का हृदय विदारक प्रसंग भी आता है। गुरु जी के विचारों का सच्चा सिपाही नन्दन उन मज़दूरों से जुड़ता है। वहाँ अचानक एक मज़दूर भरत की मौत, प्रबंधन की क्रूरता और नन्दन का उसके शव को लेकर दिल्ली आने का सन्दर्भ पाठक को बहुत बेचैन कर देता है। ''भूख-प्यास और अपने टूटे सपनों को लेकर बद्दी पहुँचे मज़दूर पर्यावरण कानून और मैनेजमेंट की तानाशाही के बीच फँस गए...यहाँ आए मज़दूरों में से भरत नाम के एक मज़दूर की मृत्यु बुनियादी सुविधाओं के अभाव में हो गई। उसकी असमय मौत से भड़के मज़दूरों ने प्रबंधन से उसके परिवार के लिए मौत के हर्जाने और पार्थिव शरीर को दिल्ली भेजने के किराए की माँग की जिसे प्रबंधन ने पूरी बेदर्दी के साथ ठुकरा दिया। ज़िंदगी से मात खा रहे मज़दूरों ने समय की नज़ाकत देखते हुए सौ-सौ रुपये चन्दा इकठ्ठा किया और भरत के शरीर को दिल्ली पहुँचाया। भरत मरकर अपने घर लौट आया पर बाकी बचे मज़दूरों की गिनती न जीवितों में है, न मृतकों में।''(231) उपन्यास में नन्दन का पूरी घटना की रिपोर्ट लिखना और भरत का शव लेकर दिल्ली आना भी बेहद प्रतीकात्मक है।

'धर्मपुर लॉज' गुरु राधाकृष्ण की जीवनी नहीं ये भूमंडलीकरण के दो दशकों में एक इलाक़े का जीवन है जो सिर्फ दो दशकों की कहानी नहीं आज की कहानी कहता है। आज के समय मे श्रमजीवी वर्ग की दिक़्क़तें औऱ बढ़ी हैं, इस दृष्टि से भी उपन्यास वर्तमान के लिए भी रोशनी देता है। दूसरी तरफ इसकी कहानी साम्प्रदायिकता-पूँजी के दमनात्मक रूप के बरक्स राजनीति की मूल्यधर्मिता को सामने लाती है।

प्रज्ञा का यह दूसरा उपन्यास शोधपरक यथार्थ और कल्पना की ज़मीन मज़बूती से पकड़े हुए है। वे उपन्यास के आरम्भ में 'ज़िंदगी के भीतर ज़िंदगी के बाहर' शीर्षक से अपनी बात कहते हुए लिखती हैं-''मैं बैठ जाती थी मुकीमपुरा के घरों के आगे चबूतरों पर, लोग घेर लेते थे। लोग मुझे पहचानने लगे थे और मैं पहचान रही थी उस धर्मपुर लॉज को जो मुझे धर्मपुर लॉज के पार्टी दफ़्तर में पूरा नहीं मिला, मुकीमपुरा में मिला।'' (पृ 8) इस तरह समय के एक बड़े यथार्थ को अपनी कल्पनाशीलता से उपन्यासकार ने आकार दिया है। ज़ाहिर है यह 'गूदड़ बस्ती' से आगे का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो आने वाले समय का एक ज़रूरी दस्तावेज़ होगा।

000

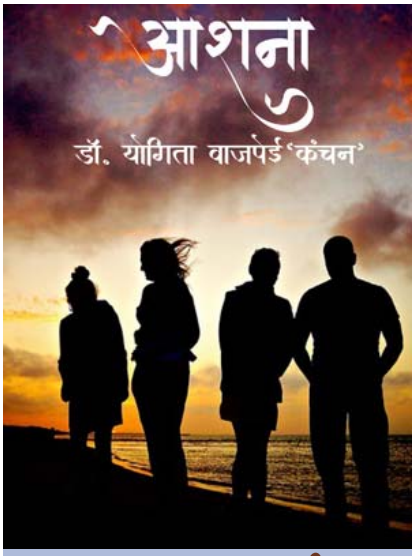

पुस्तक चर्चा

आशना

लेखक : डॉ. योगिता बाजपेई 'कंचन'

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

'आशना' डॉ. योगिता बाजपेई 'कंचन' का नया ग़ज़ल संग्रह है। इसके पूर्व योगिता बाजपेई 'कंचन' के 'भीगा-भीगा मन', 'बादलों की कतरनें', 'अनुनाद', 'माधव मंथन' जैसे संग्रह प्रकाशित हुए हैं और मक़बूल हुए हैं। इन दिनों उर्दू कविता की ग़ज़ल विधा अपनी लोकप्रियता के चरम पर है और साहित्यकारों की पसंदीदा विधा बन चुकी है। वर्तमान में ग़ज़ल अपने उस मक़ाम पर है जहाँ नित नए लोग आ आकर अपने लहजे से, अपने ज़ाविये से इसे एक नया अंदाज़ बख्श रहे हैं और ग़ज़ल नये लिबास में अपने कुदरती सौन्दर्य में इज़ाफ़ा कर रही है। इसी तारतम्य में अपने नये लबो-लहजे के साथ ग़ज़ल को अपनी ही तरह से परिभाषित करने में डॉ. योगिता बाजपेई का नाम तेज़ी से उभर कर सामने आ रहा है। उनकी ग़ज़लों से जैसे जैसे रू-ब-रू होते जाते हैं, आँखों को नये रंग मिलते जाते हैं, दिमागों को ताज़गी और चीज़ों को महसूस करने में एक अज़नबीपन जो हमे नये ज़ाविये से सन्दर्भों को समझने, देखने और परिभषित करने की नज़र देता है।

000

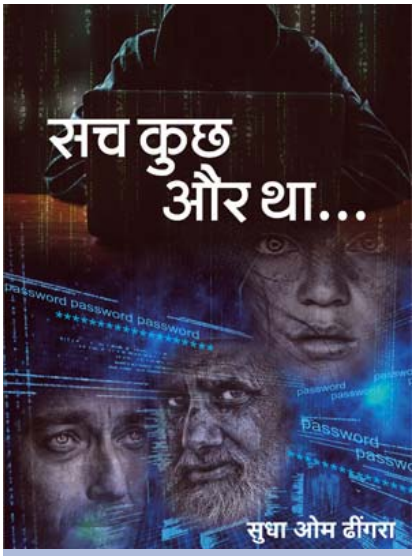

पुस्तक समीक्षा

सच कुछ और था

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : रेखा भाटिया

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

सुधा ओम ढींगरा का कहानी संग्रह 'सच कुछ और था...' का कवर पेज ही भीतर की कहानियाँ की सिरहन को उजागर कर देता है। सुधा जी आधुनिक युग के चुनिंदा प्रतिष्ठित लेखकों में से एक हैं और भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी उनकी कहानियाँ इस तथ्य का पुख़्ता प्रमाण देती हैं। केवल नारी अत्याचार, नारी अपमान, समानता, नारी सम्मान जैसे एक विषय पर लिखना आसान तब होता है जब एक ही समय काल की बात की जाए, एक ही समाज के धरातल पर, एक ही देश, एक ही संस्कृति के भीतर के दायरे में रहकर लिखा जाए। सुधाजी के लेखन का सबसे सशक्त पहलू है, उनकी कहानियों में दो भिन्न देशों, दो भिन्न समाजों, भिन्न सभ्यताओं, भिन्न संस्कृतियों, विभिन्न समय काल, आधुनिक शहरों से लेकर ठेठ देहात तक, उस पर भिन्न भाषाएँ हिंदी, अंग्रेज़ी और बीच में पंजाबी पुट सभी कुछ समान्तर पाठक को पढ़ने को मिलता है और एक सेतु का काम करता है। साथ ही उनकी कहानियों की विषय वस्तु पाठक को भीतर गहरा सोचने पर,आत्ममंथन करने पर मजबूर करती हैं, अनोखे विकल्प सुझाती है। सुधा जी अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में फैली भ्रांतियों, कुसंगतियों, ऐसे नाज़ुक ज्वलंत विषय, जिन पर खुल कर लिखा नहीं जाता, मानव जीवन दर्शन शास्त्र, मानवीय रिश्तों की जटिलता, उसके पीछे के मनोवैज्ञानिक कारण, धर्म के नाम पर किया जाने वाला अधर्म, राजनीति की आड़ में किए जाने वाले घिघौने कारनामों का काला सच जैसे जटिल विषयों पर गहराई से जाँच-पड़ताल विस्तार से लिखती हैं। उनके लेखन में विषय पर पकड़, परिपक्वता, ठहराव और गहराई झलकती है, वह उन्हें आज के लेखकों की श्रेणी में विशिष्ट स्थान दिलवाती है। उनकी लेखनी की विशेषता है पाठक कहानियों के मायाजाल में स्वयं एक पात्र बन उनके साथ जीने लगता है और विषम परिस्थितियों में जब कहानी पहुँचती है तब स्वयं भी भँवर में फँसा महसूस करता है।

पहली कहानी 'अनुगूँज' की शुरुआत सन्न, सर्द, बर्फीले तूफ़ान में खड़ी नायिका के स्वप्न से होती है, जो वशीभूत होकर अपने स्वप्न के रमणीक स्थान में बर्फ से ढके क्रिस्टल

Rekha Bhatia
9305 Linen Tree Lane, Charlotte,
NC-28277
मोबाइल: 704-978-4898
ईमेल: rekhabhatia@hotmail.com

से पहाड़ पर बार-बार चढ़ने की कोशिश करती है और नाकामयाब होती है, फिर कोशिश करती है और अचानक किसी के रोने की आवाज़ से डर कर घबरा जाती है,जब जागती है तो ख़ौफ़नाक सच्चाई का सामना करती है। अपनी आँखों के सामने अपनी बड़ी बहन-सी जेठानी के क़त्ल की गवाह बनती है। यहाँ से सुधाजी की कलम की पैनी धार का नशा कुछ इस तरह चढ़ने लगता है जैसे परोसी गई अच्छी शराब को एक घूँट में गटक लिया जाए या धीरे-धीरे गले से उतारा जाए। पाठक कहानी के हर मोड़ पर बेसब्री से खड़ा इंतज़ार करता है यह जानने के लिए पता नहीं आगे क्या होगा?

नायिका का मन भी उस बर्फ की तरह सन्न, सर्द और बर्फीले तूफ़ान में घिरा प्रतीत होता है जो अपने विवेक से, अपने डर से, अपनी बुद्धि से, अपने रिश्तों की ख़ातिर लड़ना भी चाहता है और सब कुछ खोने के डर से चुप भी रहना चाहता है। इसी डर में बेचैन नायिका जो सच्चाई का साथ भी देना चाहती है, ज़िंदा लाश से भी बदतर अवस्था में खुद को पाती है। यह इंसानी जीवन की विडम्बना है। कई दफे घर, समाज के भीतर घटित अपराधों में अपराधी घर के, समाज के जाने-पहचाने सदस्य ही होते हैं लेकिन सब कुछ खो जाने के डर से जानते हुए भी रिश्तों को लाँघना, अपराधी को दंड दिलाने का साहसिक कार्य घर के अन्य सदस्य कर नहीं पाते हैं और अपराधी आराम से बच जाते हैं। कहानी का दूसरा पक्ष विदेश में बसे भारतीय परिवारों की अजीब-सी डरावनी कड़वी सच्चाई, लेखिका ने जो बात कहानी के जरिए उठाई है यहाँ अमेरिका में ऐसी कई सच्ची घटनाओं की ख़बरें अख़बारों में पढ़ी हैं। विडम्बना यही है भारतीय समाज में, कई बार माँ-बाप परिवार की बिना अधिक जाँच-पड़ताल कर विदेश भेजने के लालच में बेटियों को शादी कर ऐसे परिवारों के हवाले कर देते हैं। यहाँ ऐसी कई महिलाएँ अत्याचार की शिकार हो जाती हैं, देश लौट नहीं सकती आर्थिक तंगी की वजह से, पासपोर्ट छीन लिया जाता है, शारीरिक कष्ट दिए जाते हैं, किसी को जानती नहीं,इस देश के कानून को नहीं जानती, ऐसे कई मुद्दे होते हैं।

हालात, पति, ससुराल, ससुराल के वकील और अपने डर के दबाव में एक मकड़जाल में फँस चुकी नायिका रिश्तों को, अपनी सुरक्षा को ताक पर रख कर अंत में अपने डर से जीतकर जब सच का साथ देने की हिम्मत से कोर्ट में खड़ी होती है, यहाँ पर रोंगटे खड़े कर देने में लेखिका सफल रही हैं मानों नायिका उस बर्फ के पहाड़ पर सचमुच चढ़ गई हो जो असंभव था। यह सुधा जी की लेखनी का कमाल ही है जो पाठक अंत तक विचलित और रोमांचित रहता है। बहुत ही उम्दा कहानी है।

यहाँ भारतीय समाज में कई परिवारों अमेरिका जैसे सभ्य और आधुनिक देश में रहकर भी दोहरी और दकियानूसी मानसिकता के शिकार हैं। बीवियों के रूप में घर में ठेठ भारतीय देहाती औरतें चाहिए जो बिना आवाज़ किए कोल्हू के बैल-सी खूँटें से बँधी रहें। कोई सवाल-जवाब न करें चुपचाप बिना सवाल हाँ में हाँ मिलती जाएँ और दूसरी ओर भोगने के लिए आज़ाद ख़यालों वाली गोरियाँ चाहिए जो किसी रिश्ते, बंधन या ज़िम्मेदारी में बँधे बिना सिर्फ अपनी शर्तों पर ऐश के लिए रिश्ता जोड़ती हैं।

अगली कहानी 'उसकी खुशबू' अभिमन्यु के चक्रव्यूह-सी खूबसूरती से रची गई कहानी जिसमें रहस्य, रोमांच, रोमांस, दहशत, बदला, दो संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन समानता-असमानता, डिजिटल वर्ल्ड और बाज़ारवाद का मानव संस्कृतियों पर प्रभाव, नायक की दुविधा-भीतरी द्वंद्व, नायिका का द्वेष के कारण बदला लेने का ख़ौफ़नाक तरीका, पाठक स्वयं इस चक्रव्यूह में घिरा महसूस करता है। रोंगटे खड़े करती अप्रत्याशित, दमदार, मज़ेदार। एक नकारात्मक सोच वाली कहानी की नायिका और कहानी का सकारात्मक अंत।

कहानी 'सच कुछ और था....' इस पूरे कहानी संकलन की आत्मा है। अलग-अलग जीवन, उनकी अलग-अलग कहानियाँ। कुछ कहानियाँ लगता है आम व्यक्ति जीवन में असंभव लगती हैं लेकिन असल ज़िंदगी में भी ऐसा कई बार घटित होता है जिस पर विश्वास कर पाना मुश्किल लगता है। कहानियाँ जीवन की घटनाओं से प्रेरित होती हैं या महज कल्पना मात्र, उनका वास्तविक होना या काल्पनिक यह तो कहानी के विषय पर निर्भर करता है या लेखक की कल्पनाशीलता पर परन्तु जीवनकाल में आसपास ऐसे अनेकों परिचित व्यक्तित्वों से मुलाकात होती है जिनके बारे में अनुमान लगाना मुश्किल होता है लेकिन कई बार जब राज़ खुलते हैं और चौंकाने वाले अनुभव होते हैं। विश्वास करना असंभव हो जाता है। यह वही व्यक्तित्व है, जिसे हम जानते थे,यह ऐसा भी कर सकता है!

कहानी 'सच कुछ और था....' का पात्र महेंद्र जो दोहरे व्यक्तित्व का है। भ्रम,दोहरे मापदंड, दोहरी मानसिकता, दोहरा जीवन जीता है जिसका अंदाज़ा उसके करीबी दोस्त निखिल को भी नहीं लग पाता। महेंद्र के दोस्त की पत्नी रिया जो उसकी असलियत और बनावटीपन को पहचान जाती है, महेंद्र उससे जलन और दोस्त से बदले की भावना रखता है। उसके अंदर हीनभावना है जिसका वह किसी को पता नहीं चलने देता। अपनी सच्ची प्रेमिका अर्चना को धोखा देता है, उसे ज़िंदगी के बीच भँवर में छोड़ खुद भाग जाता है। अमेरिका में लिंडा जैसी लड़की उसकी पत्नी बनती है फिर भी अपने दोहरेपन में वह उसे इतना अधिक मानसिक संताप देता है कि लिंडा उस तनाव और दुविधा में महेंद्र का ख़ून कर देती है। अपने ढोंगीपन और दोहराव भरे व्यक्तित्व के कारण महेंद्र अंत में अपनी जान गवाँ बैठता है, अपनी ही पत्नी के हाथों। और लिंडा भी कितनी मजबूर हो जाती है मानसिक प्रताड़ना झेलती जाती है। कहानी में लेखिका ने बहुत ही खूबसूरती से सारा परिदृश्य सँजोया और पिरोया है। सभी पात्रों को रचने, गढ़ने और इतनी उलझी हुई कहानी को निपुणता से बढ़ाने में लेखिका ने कमाल किया है। कहानी का अंत दुखद है और दोहरे व्यक्तित्व के कई राज़ खोलता है अंत में।

'पासवर्ड' कहानी में लेखिका ने एक ऐसा विषय चुना है जिसकी तरफ़ कम ही ध्यान जाता है। अक्सर ऐसे क़िस्से कई बार समाचार पत्रों में, न्यूज़ में, मीडिया के ज़रिये सामने आते है। जब एन आर आई इंडिया में शादी करा कर लड़की को अमेरिका लाते हैं और धोखा देते हैं। या तो उनकी पहले से

कोई दूसरी गर्ल फ्रेंड होती है या अमेरिकन वाईफ होती है, कई बार तलाकशुदा होते हैं और इंडिया में लड़की और उसके परिवार को पूरी सच्चाई का पता नहीं होता। कई बार कई एन आर आई के पहले से गर्ल फ्रेंड्स के साथ बच्चे भी होते हैं,जो इंडिया से ब्याह कर लाई लड़की को पता नहीं होता लेकिन इस कहानी में बिलकुल उल्टा है। इस कहानी में देसी एन आर आई लड़की भारतीय एन आर आई का फ़ायदा उठाती है। यहाँ के एन आर आई भारतीय बच्चों को स्ट्रीट स्मार्ट कहते हैं क्योंकि उन्हें सर्वाइवल स्किल्स होते हैं जो यहाँ के बच्चों में नहीं होते; क्योंकि उन्हें कभी भारत जाकर चुनौतियों का सामना कर खुद को साम, दाम दंड, भेद वाली राजनीति कर हर हालत से सामना कर खुद को बचाकर रखने की कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

कहानी में तन्वी अपने प्रेमी मनु के साथ मिलकर अपने एन आर आई पति साकेत के साथ धोखाधड़ी करती है। ग्रीन कार्ड और पैसे को पाने के लालच में वह साकेत को अपने ग़लत इरादों को पूरा करने के लिए सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करती है; लेकिन साकेत के सचेत हो जाने से पासा उल्टा पड़ जाता है और तन्वी खुद ही कानून के शिकंजे में फँस जाती है। यह महज कहानी का अंत है लेकिन असल ज़िंदगी में कई ऐसे क़िस्से सुनने में और देखने में आए हैं। भारत से शादी कर कर आई कई लड़कियों ने शादी को महज ग्रीन कार्ड पाने का एक रास्ता बना लिया है, ग्रीन कार्ड आ जाने पर पति से तलाक ले स्वयं अमेरिका की निवासी बन जाती हैं, कई बार उनके प्रेमी भी उनके साथ इस सब में शामिल होते हैं। गंभीर विषय को लेखिका ने पूरी गंभीरता से निभाया है।

'तलाश जारी है...' कहानी विश्वास दिलाती है ज़िंदगी गोल चक्र में घूमती है और घूम फिर कर ज़िंदगी कर्मों के चक्र में फिर वहीं लौट आती है और कर्मों का हिसाब चुकाकर ही आगे बढ़ती है,कर्मों का फल सभी को भोगना पड़ता है। देश बदल गए, भौगोलिक स्थान बदल गए, परिवेश, भाषा, संस्कृति बदल गई पर कुछ लोगों की सोच कभी नहीं बदलती! अमेरिका में आकर भी वही भारतीय सोच रखकर चलते है। कहानी के पात्र सिस्टम को धोखा देते हैं और फ़ायदा उठाते हैं। कहानी का तीसरा पात्र पार्क की बेंच पर निद्रा में सारा माज़रा सुनता है, यह प्रयोग कर लेखिका ने पूरी कहानी कही है, कमाल ही कर दिया है। इसमें धर्म के नाम पर दुकानदारी, मार्केटिंग, सौदेबाज़ी, मंदिर के प्राँगण में शराब पीने के क़िस्से, सिस्टम को धता कर ऐसे कई कांड जिनको सालों तक अंजाम देते रहे लेकिन अंत में पकड़े गए। बुरे का अंत भी बुरा !

कहानी 'विकल्प' ने सोचने पर मजबूर किया। महाभारत काल, रामायण काल हो या अन्य कोई काल क्या नैतिक है,क्या अनैतिक है ? क्या सही है क्या ग़लत है? कई अनुचित, उचित घटनाएँ हर काल में होती आई हैं। मानव बुद्धि से बिना तर्क-वितर्क किए कई भ्रम पाल लेते हैं, अन्धविश्वास को मानते जाते हैं,उन्हीं को आदर्श मान लेते हैं। बिना सवाल किए उनकी पूजा करते हैं। क्या यह सही नहीं है कि अतीत और इतिहास का विश्लेषण कर सही और ग़लत का फ़ैसला वक़्त के अनुसार लेना चाहिए और पुरानी सोच और भ्रांतियों से बाहर निकलना चाहिए ! सम्पदा की सोच, उसका तनाव, उसका धर्मसंकट और नीरा का कठोर वास्तविकता से सम्पदा को अवगत कराना। वास्तविकता का धरातल इतना नुकीला है कि सम्पदा का हृदय सच्चाई को जान घायल हो जाता है। कहानी एकदम से पलटा खाती है और सम्पदा से नीरा की हो जाती है जो अपने वंश को आगे बढ़ाने के लिए नैतिक-अनैतिक किसी भी तर्क में पड़े बिना किसी भी हद तक जा सकती है. ....

'विषबीज' हिलाकर रख देने वाली ऐसी कहानी जो सोचने पर मजबूर करती है। जन्म से कोई भी अपराधी बन कर पैदा नहीं होता। उस की सोच,उसकी मानसिकता उसे अपराधी बनाती है और जिन हालात में इंसान बड़ा होता है, उसमें जिन संस्कारों के विषबीज पड़ते हैं, बड़ा होने पर वही संस्कार ज़हरीले फल देने वाले पेड़ बन जाते हैं। उन्हीं की छत्रछाया में वह जुर्म करता है। यह अन्य बात है कि कोई आत्मा आपराधिक प्रवृति के संस्कार लेकर आई है तो अच्छे माहौल में भी वह आत्मा जुर्म का रास्ता ही अपनाएगी ! दूसरी बात महर्षी वाल्मीकि डाकू से महर्षि बने। इस कहानी में लेखिका ने अपराधी के जरिये ही उसके जुल्म ही सज़ा क्या हो, एक विकल्प समाज को सुझाया है। बलात्कार एक जघन्य घिघौना अपराध है। अमेरिका की कानून व्यवस्था में अपराधी को उसके अपराध के लिए कम समय में सज़ा सुना दी जाती है। वहीं भारत की कानून व्यवस्था में सालों गुज़र जाते है। अपराधी ज़मानत पर जेल के बाहर खुले घूमते हैं और मुकदमों पर अदालत में सुनवाई सालों चलती रहती है, न्याय नहीं मिल पाता।

यहाँ पर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, जो लेखक नारी, नारी सम्मान, नारी शक्ति, नारी सवेंदनाएँ, भावनाएँ, नारी अत्याचार, पुरुष दंभ, पुरुषसत्ता जैसे विषयों पर लिखती आई हैं और यह उनकी लेखनी का मज़बूत पक्ष है। उस लेखक ने लीक से हटकर अगल किस्म की कहानी जिसमें बहुत गहराई से एक सैनिक, बलात्कारी पुरुष मन की टोह ली है, उसकी आपराधिक प्रवृत्ति के पीछे छिपे तत्थों और विकृत मानसिकता के कारणों को उजागर किया है। यह बहुत चुनौतीपूर्ण है।

कहानी काश! ऐसा होता.....पुरुष अधिकतर दूसरे विवाह को लेकर अधिक आतुर होते हैं। विवाह संस्था के बंधन का मज़ाक बना उसे कोसना, विवशता यह सोच, यह पुरुष प्रधान समाज की देन है....नारी विवाह के बाद भी समान अधिकारों से वंचित ही रही। दूसरे विवाह की ख़्वाहिश पुरुष जाति में अधिक प्रबल होती है। औरत हमेशा यह सोच पीछे हट जाती है, समाज क्या कहेगा ? लोग क्या सोचेंगे ? मेरे बच्चों का क्या होगा ? मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ ? मैं ऐसा करती हूँ तो मैं मेरे बच्चों के साथ अन्याय करती हूँ और अपनी ख़्वाहिशों का गला घोंट स्वयं कठिन परिस्थितियों में जीवन गुज़ारती है। यहाँ पाश्चात्य संस्कृति में सिर्फ माँ ही नहीं वरन् नानी, दादियों के दूसरे विवाह, बॉय फ्रेंड्स आम बात है और समाज में यह स्वीकार्य है; क्योंकि यहाँ सभी को अपना जीवन जीना, अपने जीवन के निर्णय खुद लेने की स्वतंत्रता है। एक दूसरे को स्पेस देकर एक दूसरे के निर्णयों का आदर करते हैं, भारतीय समाज में अक्सर निर्णय थोपे हुए होते हैं।

बुढ़ापा, स्त्री होने की बेबसी, दो

संस्कृतियों में अंतर, बेटी का माँ के दर्द को महसूस करना, भाइयों की बेरुख़ी, औरत के जज़्बात से अधिक पैसे का महत्त्व, बेटों का माँ की भावनाओं को न समझना, माँ का एक तरह से तिरस्कार, बेटी की माँ को सुखी देखने की ख़्वाहिश, पुरानी सोच, ज़माना क्या कहेगा! इसलिए बेटी के घर आकर माँ का रहने से इंकार ! जबकि सच्चाई यह है वर्तमान में लड़के भी पहले से अधिक संवेदनशील हो गए हैं, सोच बदल रही है और कई वृद्ध दम्पति अपने दामाद और बेटी के साथ रहते हैं। एक भावुक और समाज की सोच को बदलने की अपील करती कहानी !

'क्यों ब्याही परदेस ?' कहानी एक चिट्ठी है, जो बेटी ने माँ को लिखी है और विदेश में जीवन निर्वाह करने की बेबसी और अकेलेपन का विस्तार से वर्णन किया है। विदेश के मोह में लड़कियाँ विदेश में ब्याह तो दी जाती हैं लेकिन अकेले रहने के संघर्ष, बेबसी, हर काम खुद करना होता है, मौसम भी बहुत खुला नहीं होता, अक्सर अमेरिका में अधिक स्थानों पर साल भर ठंड अधिक पड़ती है; जिसके कारण घरों में अधिक समय गुज़ारना होता है और घर में आप अकेले हैं, तो किसी से बात करने को भी आप तरस जाते हो। भारत की तरह यहाँ ऐसा नहीं है आप किसी के घर, पड़ोसी के घर बिना अनुमति के पहले से सूचना दिए बगैर चले जाते हो.....।

दूसरा पहलू वर्क परमिट ना होने की वजह से कई भारतीय लड़कियाँ जो भारत में कंप्यूटर तकनीकी में जॉब करती थीं यहाँ पर दूसरों के लिए खाना पकाने का काम भी करती हैं,उन्हें देखकर कई बार महसूस होता है पैसा और भौतिक सुख या कोई मज़बूरी .... यह सच्चाई है यहाँ की।

'और आँसू टपकते रहे...' कहानी का शिल्प नया है। कहानी वर्तमान से होकर विचारों के टेड़े-मेढ़े रास्तों से गुज़रती भूत में चली जाती है फिर वर्तमान में लौटती है,फिर भूत में चली जाती है। कहानी के पात्र को ग्लानि होती है, वह उस लड़की की जान नहीं बचा पाया जो मजबूरी में ऐसा काम करने को विवश है, जिसके लिए उसका ज़मीर उसे धिक्कारता है और वह अपनी जान दे देती है ! दूसरी ओर आधुनिक अधेड़ मिसेज़ सोनी के इरादे कुछ और ही हैं..... शादी उसने अपनी मर्ज़ी से वृद्ध व्यक्ति से की, अपनी मर्जी का जीवन जी रही है फिर भी असंतुष्ट है। छोटी-सी कहानी में लेखिका ने कमाल का शिल्प रचा है।

'बेघर सच' बहुत भावुक कहानी। औरत के हृदय, मान-सम्मान, पीड़ा, वेदना, भीतरी छटपटाहट को एक होनहार मूर्तिकार के रूप में लेखक ने हर दिशा हर कोण से उकेरा है। युग कोई भी हो, नारी संघर्ष वही, बस समय के साथ उसका स्वरूप बदलता है। नारी की अपने अस्तित्व की लड़ाई पुरुष के साथ ? पुरुष जानता नहीं या जानकर अनजान है स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज का धरातल हैं, एक दूसरे के पूरक! अमेरिका में यदि नारी को समान अधिकार प्राप्त हैं, तो भारतीय पुरुष इस देश, इस संस्कृति से थोड़ा बहुत सीखकर अपनी सोच नहीं बदल सकते ? औरत जो बीबी है, प्रेमिका है, दोस्त है, माँ है, बहन है, जिसके साथ पुरुष जीवन का इतना समय गुज़ारते हैं, उस औरत की ख़्वाहिशें, इच्छाएँ, पीड़ा, वेदना, चाहत समझना कितना मुश्किल होता है एक पुरुष के लिए ? पुरुष दंभ, अहंकार की पट्टी हमेशा आँखों पर चढ़ाए रहता है! इस दक़ियानूसी सोच का लबादा ओढ़े पुरुष कब तक जीता रहेगा? और क्या यह दकियानूसी सोच सिर्फ भारतीय समाज के पुरुषों की ही है ? यदि ऐसा है तो अमेरिका में अपराधों की सूची में घरेलू अपराध सबसे अधिक शीर्ष स्थान पर क्यों हैं ? हर युग में, हर संस्कृति में औरत का दर्द, पीड़ा वही है, वह अपनी मर्ज़ी से, सम्मान के साथ पंख फैलाकर जीना चाहती है, उस अधिकार को पाना चाहती है।

कहानी का दूसरा पक्ष माँ का हाल बेटी समझती थी। दादी, चाची की सत्ता है तो क्या वे सुखी थीं ? एक औरत दूसरी औरत का दमन करती है अपनी सत्ता को बरक़रार रखने के लिए, दूसरी नारी का दर्द नहीं समझती या समझना नहीं चाहती स्वार्थ में विवश? संजय दस साल के वैवाहिक जीवन में भी रंजना के भीतर की कोमल नारी, नारी की संवेदनाएँ, प्रेम के सही मायने समझ नहीं पाया। रंजना का कौन सा अपना घर ? पिता का, पति का या जो वह खुद के लिए बनाए, अपनी मर्ज़ी से सँवारे वह घर ? लेकिन उसमें रिश्तों के नाम पर क्या वह अकेली जिए ? क्या यही सम्मान के साथ जीने की औरत की नियति है, विकल्प है......

लेखिका ने नारी शरीर की प्रक्रिया और प्रकृति की उसे हर माह की देन का वर्णन बहुत ही खूबसूरती से किया है, अद्भुत है।

विषय के मर्म से छूने की क्षमता, पुरुष प्रधान समाज में रिश्तों की जटिलता, औरत की वेदना का मार्मिक वर्णन, दोनों संस्कृतियों के मध्य का अंतर, उनमें सामंजस्य, अपने अस्तित्व के साथ जीवन के अमूल्य रास्तों को तलाशती और उस पर अमल करती नारी, हालातों के आगे झुक कर, समझौता कर कोई नकारात्मक फ़ैसले लेने को मजबूर औरत से ऊपर हर हाल में हालातों से लड़ने वाली दृढ़ सकारात्मक सोच रखने वाली नारी लेखिका की कहानियों की नायिका, सुधा जी की कहानियाँ हर उस नारी मन की तलाश को पूरा करने में समर्थ हैं जो अपने भीतर की नारी तलाशती हैं !

भारत से अमेरिका आए तो जो भारतीय लबादा पहन कर आए, उसे ही ओढ़े रहोगे या नए परिवेश में वह लबादा उतार कर अमेरिकन लबादा पहन लोगे ? या दोनों ही संस्कृतियों में समान्तर संतुलन बना कर चलना समझदारी होगी ? जहाँ वह संतुलन बिगड़ता है कहानियों में व्यथा उत्पन्न होती है,जीवन में भी कुछ ऐसा ही होता है। दाँई हथेली यदि भारत है तो बाँई हथेली अमेरिका है, दोनों हथेलियाँ भी अपनी हैं, किसे अपनाओगे,किसे छोड़ोगे ? मुट्ठी बंद कर लेने से रेखाओं का मिटना, बनना क्या बंद हो जाएगा ? सिर्फ उनका दिखना बंद होगा। आधुनिकता के नाम पर नारी मुक्ति क्या सिर्फ देह मुक्ति, सेक्स में स्वछंद व्यवहार, शराबखोरी ही नारी मुक्ति है या कहानियों की नायिका जो चाहती है प्रेम की भाषा को गहराई से समझाना, मन की आज़ादी, मन की सुदृढ़ता,दृढ़ निश्चय जब नारी अपने अस्तित्व के लिए खड़ी होती है, अपनी लड़ाई लड़ती है, अपनी पहचान बनाती है वह असली नारी मुक्ति है! सुधा जी का कहानी संग्रह इस सब सवालों के जवाब देता बहुत सराहनीय संग्रह है।

000

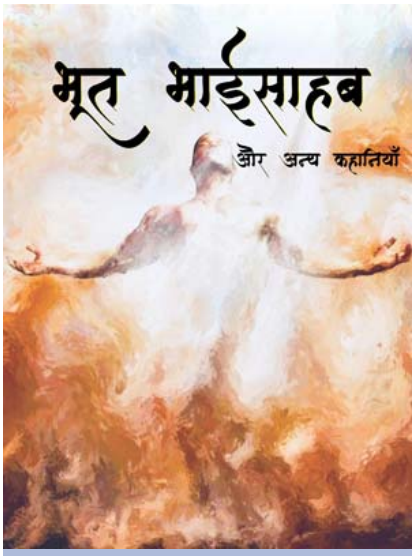

पुस्तक समीक्षा

भूत भाईसाहब और अन्य कहानियाँ

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा

लेखक : प्रियंका कौशल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. सीमा शर्मा
एल-235, शास्त्रीनगर,
मेरठ (उ.प्र.)250004
मोबाइल : 9457034271
ईमेल : sseema561@gmail.com

पत्रकार एवं लेखक प्रियंका कौशल के शिवना प्रकाशन सीहोर से सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह 'भूत भाई साहब : और अन्य कहानियाँ' में कुल सत्ताईस छोटी कहानियाँ हैं। पारम्परिक शैली में लिखी गई इन कहानियों में 'लोक' बसता है जो अलग-अलग रूपों में हमारे सामने आता है। लोक में भेदभाव की, चालाकियों की, ईर्ष्या की, अन्याय की, लालच की, मानवता की, जीवन मूल्यों की, दोहरे मानदंडों की, भूतों की और आत्माओं की तथा जीवन के कटु यथार्थ की कई कहानियाँ समाई रहती हैं; लेखिका ने इन्हें देखा,अनुभूत किया और अपने तरीके से अभिव्यक्त किया। कहानियाँ लिखने के पीछे जो उद्देश्य दिखाई देता है, वह कहीं न कहीं इस कहानियों के माध्यम से समाज में जागरूकता लाकर आदर्श की स्थापना करना है।

संग्रह की पहली कहानी 'अफ़सर बिटिया' ऐसी ही एक आदर्शवादी कहानी है जिसमें कथा नायिका के जीवन में कुछ उतार-चढ़ाव तो आते हैं लेकिन जल्दी ही सब ठीक हो जाता है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'अघोरी' और प्रतिनिधि कहानी 'भूत भाईसाहब' लोक (ग्रामीण क्षेत्र) में प्रचलित सामान्य कहानियों जैसी हैं। यहाँ इनकी विश्वसनीयता या सत्यता जैसे प्रश्न निरर्थक हो जाते हैं क्योंकि इस तरह की कहानियाँ पारम्परिक रूप से कही और बड़े चाव से सुनी जाती रही हैं। इन कहानियों का प्रयोग मनोरंजन के साथ-साथ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए भी किया जाता है। संग्रह की तीसरी कहानी 'अनोखी माँ' में एक ओर लड़कियों की तस्करी जैसी गंभीर समस्या को उठाया गया है,तो दूसरी ओर मीरा के रूप में एक ऐसे पात्र की स्थापना, जो न केवल मुसीबत में फँसी दो लड़कियों (फुलवा

और छुटकी) को बचाती है बल्कि उन दोनों को पढ़ाई के लिए आर्थिक मदद भी करती है जिससे ये दोनों लड़कियाँ एक दिन अफ़सर बन जाती हैं। 'अनोखी माँ' की तरह एक अन्य कहानी 'अपने नकुल को बचा लो' भी मानव तस्करी से जुड़ी एक मार्मिक कहानी है। किस तरह छोटे-छोटे बच्चों का अपहरण कर उन्हें यातनाएँ दी जाती हैं जिससे कई बालकों की मृत्यु तक हो जाती है। लेकिन सबको 'फुलवा और छुटकी' की तरह 'मीरा' जैसी 'अनोखी माँ' नहीं मिल पाती। ये कहानियाँ जैसे बाल-सुरक्षा को लेकर सचेत करती हैं। सामान्यतया 'पुलिस' के चरित्र को नकारात्मक रूप में देखा जाता है किंतु इस कहानी में पुलिस की परख 'मानव' के रूप में की गई है -''अब आप ये मत सोचिएगा कि पुलिस वालों के पास दिल नहीं होता। हाँ, यह ठीक है कि अपने आसपास अपराधियों को देखते रहने, अपराध कथाओं को लिखते और सुलझाते जाते रहने के कारण हम, आप लोगों जैसे कोमल भावना वाले नहीं होते। लेकिन हमें भावशून्य समझने की ग़लती भी मत कीजिए। कई बार हम भी घटनाओं-दुर्घटनाओं को देख-सुनकर भावनात्मक रूप से आहत होते हैं। लेकिन हमारी सोच की दिशा कॉमन मैन जैसी नहीं होती, बस इतना ही अंतर है आप में और हम में।'' (पृष्ठ.31)

'अंतिम इच्छा' वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या वृद्धावस्था में अकेले फँसे लोगों की कहानी है। इसमें नेहा एक ऐसा चरित्र है जो दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत कुशल होते हैं लेकिन जब उनकी बारी आती है तो वे सारे आदर्श भूल जाते हैं। अपने पति नीरज के साथ अमेरिका में बसी नेहा भारत में लौटकर अपने ससुर के घर जाना भी पसंद नहीं करती जबकि एक समय ऐसा था कि वह ''एक ग़ैर सरकारी संगठन से जुड़कर शहर के वृद्धाश्रम में सेवा करती थी। कैसे-कैसे क़िस्से सुनती थी आकर मुझे। फलाँ बेटा कितना निर्लज्ज है तो फलाँ बेटी कितनी निष्ठुर है। उन बहुओं से तो उसे सख़्त चिढ़ थी, जो अपने सास-ससुर को भगवान् भरोसे छोड़ देती थीं।''(पृष्ठ.26) लेकिन अब वह स्वयं क्या कर रही थी ? कहानी में लेखिका ने विभा को अपने विचारों का संवाहक बनाया है। विभा, नेहा के ससुर 'ज्योतिचंद्र दुबे' की कठिनाई कितना कम कर पाती है? उनकी अंतिम इच्छा को पूरा कर पाती है या नहीं ? यह तो कहानी में नहीं पता चलता लेकिन वह स्वयं एक संवेदनशील नागरिक के रूप में उभर कर सामने आती है और अपने सास-ससुर के प्रति उसमें संवेदनाएँ जागृत हो जाती हैं। इसे कहानी की सफलता के रूप में देखा जा सकता है।

'बहू और बेटी का भेद' कहानी पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं में स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव की कहानी है तो 'कमला किन्नर' समाज के एक निर्मम पक्ष को दिखती है। ''क्यों किन्नर इंसानों में नहीं गिने जाते ? हमें कभी माता-पिता का क्यों प्यार नहीं मिलता ? समाज हमें सम्मान क्यों नहीं देता ? क्यों हमें अपना भविष्य चुनने की आज़ादी नहीं दी जाती ? क्यों हम अपने भाई-बहनों, चाचा-चाची, बुआ, ताऊ के साथ नहीं रह सकते ?'' (पृष्ठ 50) ऐसे अनगिनत प्रश्न इस कहानी में उठाए गए हैं। कहानी किन्नरों के जीवन में व्याप्त असमानता एवं उनकी दुर्दशा को व्यक्त करती है और बताती है कि किस तरह से संपन्न परिवारों में भी तृतीय लिंगी रूप में जन्मे इन बच्चों को पूरी निर्ममता के साथ छोड़ दिया जाता है? और परिजनों में इसे लेकर कोई ग्लानि भी नहीं दिखाई देती। यह हमारे समाज का एक क्रूर यथार्थ है। 'इन्वेस्टमेंट' पुरुष वर्ग की चालाकियों की कहानी कि वे किस तरह स्त्रियों को फँसाते हैं और उनको अपने ढंग से नचाना चाहते हैं। 'दो एकड़ खेत' एक गंभीर कहानी है जो दिखाती है, छोटे-छोटे लालच के कारण किस तरह स्त्रियों को 'डायन' बताकर मार दिया जाता है और कोई कुछ नहीं बोल पाता- ''गाँव के दबंगों के आगे बोलने का साहस किसी में नहीं था। कोई नहीं था, जो चीख कर कहता कि यह हेमिन डायन नहीं है। हेमिन ही क्या दुनिया की कोई भी महिला डायन नहीं है। संवेदनहीन भीड़ की अगुवाई करते हुए गाँव के दबंग हेमिन को घसीटते हुए उस चबूतरे पर ले आए। यह वही चबूतरा था जहाँ पंच बैठकर गाँव का न्याय करते थे। हेमिन को सबके सामने ज़िंदा आग के हवाले कर दिया गया।'' (पृष्ठ.46) ''इधर हेमिन की चीखें गूँज रही थी उधर दुकालू घर में भय और क्षोभ से मरा जा रहा था। उसकी हेमिन को हैवान खींच कर ले गए थे लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता था।'' 'दुकालू' वही पुरुष था जिसे हेमिन वर्षों से पाल रही थी क्योंकि वह अपंग था और अपना पोषण नहीं कर सकता था। 'दुकालू' ही नहीं उस ''क्रूर भीड़ में हर तीसरा आदमी हेमिन के किसी न किसी अहसान के नीचे दबा हुआ था।'' 'दुकालू' एक तरह से उसी भीड़ का प्रतीक था जिसमें से हर किसी की कोई न कोई अपंगता थी जिसके कारण कोई 'हेमिन' को बचाने आगे नहीं आया। समीक्ष्य संग्रह की कहानी 'क्रांति', 'बस्तर' के नक्सलवाद को लेकर लिखी गई है। इस कहानी के माध्यम से उस पूरी प्रक्रिया को जाना जा सकता है जिसके तहत बालकों का 'ब्रेनवॉश' किया जाता है,जिससे उन्हें लगता है ''कितना शोषण हुआ है उसके समुदाय के साथ। सच में यह सरकारी लोग किसी नरभक्षी से कम नहीं हैं।''(पृष्ठ.54) प्रभाव स्वरूप स्कूल में गांधी-सुभाष पढ़ने वाली 'बुधरी' का मार्क्स लेनिन और स्टालिन और माओ को पढ़ना ''उसकी नसों में क्रांति ऐसे फड़कती है जैसे पूरी दुनिया के लिए वह अकेली ही लड़ रही हो। अपनी विचारधारा के लिए पूरी निष्ठा रखती। कोई दल के ख़िलाफ़ जाता तो भूल जाती कि वह साथी भी रहा है। क्रूरता की हद पार करके उसे दंड देती,'' समुदाय की संस्कृति/ परंपरा; इस विचारधारा के आगे सब व्यर्थ हो जाती है।

'अनुशासन' 'मंगो', 'सुबह तो होनी ही थी', 'पर्दा', 'रानी जीजी......', 'सबक', 'संयुक्त परिवार', 'श्राद्ध', 'श्रद्धा', 'स्वाभिमान', 'अनफिट', 'रॉंग नंबर' आदि अन्य कहनियाँ हैं। जो विभिन्न विषयों को लेकर लिखी गई हैं। प्रस्तुत कहानी संग्रह में छोटी किंतु संख्या में अधिक कहानियाँ होने से बहुत अलग-अलग विषयों का आना स्वभाविक था। कुछ अत्यंत गंभीर विषय यहाँ हैं तो वहीं कुछ सामान्य जीवनानुभव की कहानियाँ हैं। कहानियाँ पारंपरिक शैली एवं बोलचाल की भाषा में लिखी गई हैं जिससे पाठक की इनमें रुचि उत्पन्न हो जाती है और वो पढ़ता चला जाता है।

000

पुस्तक समीक्षा

ख़ुद से गुज़रते हुए

(कविता संग्रह)

समीक्षक : पंकज मित्र

लेखक : संगीता कुजारा टाक

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

पंकज मित्र
6, रातू रोड
आकाशवाणी
राँची, झारखण्ड 834001
मोबाइल: 9470956032

यूँ तो अंग्रेज़ी के महान कवि विलियम वर्ड्सवर्थ कविता को भावनाओं का स्वत:स्फूर्त ज्वार मानते हैं लेकिन क्या केवल भावनाओं का उद्वेग कविता को जन्म दे सकता है? शायद नहीं। किर्कगार्ड एक खूबसूरत बात कहते हैं कविता और कवि के संदर्भ में - कवि एक संतप्त प्राणी होता है जो हृदय के अंतरतम में गहरी पीड़ा गोपन रखता है लेकिन उसके होठों की निर्मिति इस तरह की होती है कि उसकी आह और पीड़ा का स्वर भी संगीत की तरह सुनाई देता है - वियोगी होगा पहला कवि /आह से उपजा होगा गान। परंतु संगीता कुजारा टाक का कविता संग्रह 'ख़ुद से गुज़रते हुए' केवल योग - वियोग - संयोग और इनसे उपजा आह का गान नहीं वरन् खुद से गुज़रना मानवीय संबंधों से, समाज से, जीवन से गुज़रना भी बन जाता है। प्रथम दृष्टया इस संग्रह की कविताएँ आत्मकेन्द्रिकता का संधिपत्र लगती हैं पर थोड़ी गहराई में उतरने पर ये मानवीय संबंधों, स्त्री पुरुष साहचर्य, मनुष्य की मूल भावनाओं - प्रेम-विछोह, हर्ष-विषाद, एषणाएँ-मात्सर्य, करुणा-क्रूरता - सबका एक अभियोग पत्र भी बन जाता है। प्रेम ऐसे निविड़ एकांत में घटित होता है जहाँ एक दुर्निवार आकर्षण है जैसे एक ब्लैकहोल सृजित हुआ हो जिसमें रिपल्शन(विकर्षण) की कोई संभावना नहीं है - मैं तुम्हारी ब्लैकहोल बनना चाहती हूँ।

प्रेम में उत्सर्ग की भावना इतनी प्रबल है कि सारी चोरियाँ भी-आँसू, बदनसीबी, बेचैनियाँ, थकन-अच्छी लगती हैं और उस दिन का इंतज़ार करती हैं जब यादों की कील दीवार को ही ढहाने में कामयाब हो जाएगी। संग्रह का मूल स्वर प्रेम है और अधिकांश कविताओं की धुरी भी, जो कवि के लिए सुंदरतम की अभिव्यक्ति, कविता के लिए काम्य भी है पर साथ-साथ इसकी अपनी चुनौतियाँ भी हैं। प्रेम कविताएँ इतनी दफा इतने तरीकों से लिखी जा चुकी हैं कि नव्यता की गुंजाइश मुश्किल होती है। पर इस संग्रह की कविताएँ अपने साधारणपने से, छोटी-छोटी बातों से प्रेम को अलग जाविए से देखने की कोशिश करती हैं, थोड़ा नयापन जोड़ती चलती हैं- चाँद सूरज और तारे भी आराम फ़रमा लेते अगर मेरी तरह उन्हें भी मिल जाता तुम्हारी पीठ का सहारा

परंतु प्रेम की सघनता कभी फीकी भी पड़ जाती है और यह कवयित्री की दृष्टि की परिपक्वता जाहिर करती है क्योंकि प्रेम का रंग हमेशा गहरा नहीं रहता है -

हमारे बीच ख़ामोशी है और चाय की प्याली भी.....
पर हाँ
इसमें चीनी कम है
पर प्रेम फिर फिर उग आता है फीनिक्स पक्षी की तरह अपनी राख से
- कल जिस पौधे से बातें की थीं तुम्हारे बारे में, देर रात सबसे छुपकर,
माली बता रहा था आज उसमें फूल उग आए हैं

विविधवर्णी प्रेम कविताएँ इस संग्रह की विशेषता है, जिसमें तरह-तरह के रंग हैं - अनगढ़ - परिपक्व, लिंक अप-ब्रेक अप, उपालंभ-शिकायत- सबसे बात होती है, फूल-पत्ती, पेड़-पौधे, ऐरे-गैरे, अपने-पराए-वो नाराज़ हैं आजकल।

पर्यावरण के प्रति प्रेम भी प्रेम की ही विस्तृत अभिव्यक्ति है, एक्सटेंशन है और स्त्री के

रूप में स्वयं के अधिकार सजगता के लिए प्रेम भी। औरत अपनी इयत्ता के प्रति इतनी आश्वस्त है कि मानती है हवाओं की नमी, चिनार का क़द, पंछी के हौसले की उड़ान सब कुछ औरत से ही उधार लिया गया है। टाँगी लिए हुए लकड़हारे के भय से सिमटे पेड़-पौधों की आवाज़ें भी कवयित्री सुन पाती है और यह सघन संवेदना का कोमलतम रूप है। प्रेम और सांसारिकता का द्वैध भी परिलक्षित है कुछ कविताओं में - पेपरवेट, ट्रेडमिल आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। पर नारीवादी नारे से लैस कविता ऐ पुरुष थोड़ी स्थूल अभिव्यक्ति है इससे बचा जा सकता था। भरपाई करती है कवयित्री माँ बनने के अहसास की कविता -

जैसे आज मैं खुद से उग आई हूँ या पिता बकोशिश बना नहीं जाता पिता उगता है आदमी में ।

विज्ञापन या बाज़ार के उपादानों से कठपुतली की तरह बरती जानेवाली स्त्री के लिए आक्रोश भी कई कविताओं का एक महत्त्वपूर्ण रंग है जो स्वाभाविक ही है क्योंकि कवयित्री की दृष्टि न केवल आत्मसजग है बल्कि समाज सजग भी।

छोटे-छोटे पदबंध, रोज़मर्रा के बिंबों के जरिये बड़ी बात कहने की कोशिश, शब्दस्फीति और भाषाई तरलता - जो बोलचाल की भाषा है, संवाद की भाषा है उसमें ही बिना चाकचिक्य के कहन - यहाँ तक कि अधिकांश प्रेम कविताएँ संवाद शैली में ही हैं और संवेदना को बिना भाषाई गुंजलक में फँसाए सहज संप्रेषित करती हैं।

निरंतर माँजना और कटाई-छँटाई से कविताओं का पर्यावरण अवश्य ही सुंदर होगा, 'ख़ुद से गुज़रते हुए' संग्रह ने यह आस जगा दी है। अलबत्ता शुभाशंसा में प्रूफ की गलतियाँ अन्न में कंकड़ की तरह रड़कती हैं जो पुस्तक के सुंदर कलेवर और प्रस्तुति को थोड़ा मलिन करती हैं; क्योंकि जैसा ऑस्कर वाइल्ड ने कहा था-कवि हर हाल में जीवित रह सकता है पर ग़लत छपाई उसके प्राण ले सकती हैं। नि:संदेह संगीता कुजारा टाक का यह कविता संग्रह 'ख़ुद से गुज़रते हुए' पढ़कर पाठक के अंत:करण का आयतन थोड़ा अवश्य ही विस्तृत होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

निन्यानवे का फेर

(लघुकथा संग्रह)

समीक्षक : पंकज सुबीर
लेखक : ज्योति जैन
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

ज्योति जैन का लघुकथा संग्रह 'निन्यानवे का फेर' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। बहुत ख़ामोशी के साथ काम करते रहने का अपना एक आनंद है, तो उसके ख़तरे भी हैं। ख़तरे यह; कि हो सकता है आपका काम अनदेखा ही रह जाए; हो सकता है आपके काम की चर्चा ही न हो। आत्म-आनंद के अपने ख़तरे होते ही हैं। कला की सारी विधाएँ असल में आत्म-आनंद ही तो हैं, इसीलिए कला की सारी विधाओं के साथ यह दुविधा बनी ही रहती है। ज्योति जैन ने अपने लिए आनंद का चयन किया है, और ख़तरों की परवाह अक्सर तो नहीं ही की है। वे कहानीकार हैं, उपन्यासकार हैं, स्तंभकार हैं, कवयित्री हैं और लघुकथाकार तो सबसे पहले हैं ही। साहित्य की लगभग सारी विधाओं को एक साथ साधना ज़रा मुश्किल होता है; लेकिन ज्योति जैन ने यह साधना अच्छे से की है। अक्षरों से शब्दों तक, शब्दों से वाक्यों तक और वाक्यों से एक मुकम्मल रचना तक पहुँचना बहुत श्रमसाध्य कार्य होता है। इस प्रक्रिया में कई बार यह भी हो जाता है कि या तो जोड़ लग ही नहीं पाते हैं और अगर लग जाएँ, तो बाहर से ही दिखाई देने लगते हैं कि कहाँ-कहाँ लगे हैं। लेकिन ज्योति जैन ने लगातार अभ्यास से रेशम के अदृश्य धागे से शब्दों और वाक्यों के जोड़ लगाना इस कुशलता से सीख लिया है कि खुर्दबीन लेकर देखने पर भी अब तो यह जोड़ दिखाई नहीं देते। जोड़ का नज़र नहीं आना ही किसी रचना को सम्पूर्ण और समग्र बनाता है। उसे एक इकाई बना देता है; क्योंकि असल में तो हर रचना में सबसे पहले यही गुण होना चाहिए। वह भले ही कई शब्दों, वाक्यों, विचारों, भावों से मिलकर बनी हो; किन्तु उसे अंत में एकाकार हो जाना चाहिए। इस प्रकार कि एक ही हो। ज्योति जैन की रचनाएँ इसी प्रकार की रचनाएँ होती हैं। उनकी रचनाओं की एक और विशेषता यह होती है कि उनकी सारी रचनाएँ हमारे आस पास के परिदृश्य का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। यूँ, जैसे किसी ने हमारे ही पास के किसी पात्र का उठा कर उसे कहानी का चरित्र बना दिया हो। ज्योति जैन ने जीवन और लोक दोनो को नहीं छोड़ा है; बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी जड़ों को बहुत मज़बूती के साथ इनमें गाड़ रखा है। इसीलिए ही उनकी रचनाएँ जीवन से भरी होती हैं। लघुकथाओं का एक बड़ा दोष होता है उनका धुरीहीन होना; लेकिन ज्योति जैन की इन सारी लघुकथाओं को पढ़ते समय धुरी और धुरी के चारों तरफ़ परिभ्रमण कर रही रचना को महसूस किया जा सकता है। आश्चर्य यह भी है कि इतनी सारी लघुकथाओं के होने के बाद भी किसी भी लघुकथा में किसी दूसरी लघुकथा का प्रतिस्वर नहीं है, सब एक-दूसरे से अलग हैं। किसी भी रचनाकार के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण होता है कि उसकी सारी रचनाएँ एक-दूसरे से हर अर्थ में भिन्न हों। ज्योति जैन जी का यह लघुकथा संग्रह इस मायने में विशिष्ट है कि यहाँ कोई दोहराव नहीं है। भाषा, शैली और शिल्प का रचाव और कसाव यहाँ बनत की सारी सोलह कलाओं के साथ उपस्थित है। यह लघुकथाएँ बस नाम से ही लघु हैं, बाक़ी इनमें कहीं कुछ भी लघु नहीं है।

000

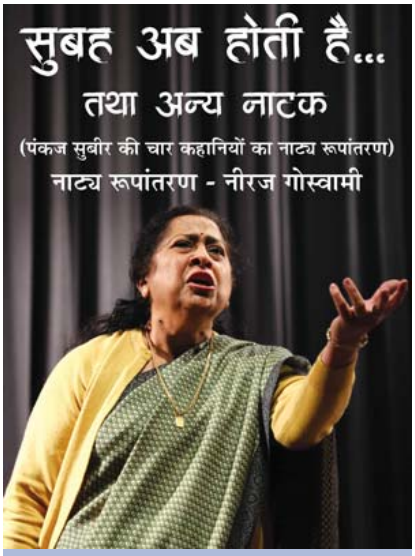

पुस्तक समीक्षा

सुबह अब होती है तथा अन्य नाटक

(नाटक संग्रह)

समीक्षक : पंकज सोनी

रूपांतरण : नीरज गोस्वामी
कहानीकार : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

पंकज सोनी
प्लॉट नं. 172
साकार सिटी
लालमटिया, मंगलीपेठ
सिवनी, मप्र 480661
मोबाइल: 8226030402

हाल ही हिंदी नाटकों की एक क़िताब पढ़ी 'सुबह अब होती है.. तथा अन्य नाटक'। शिवना प्रकाशन की यह किताब सुप्रसिद्ध लेखक पंकज सुबीर की चार कहानियों का नाट्य रूपांतरण है। नाट्य रूपांतरण किया है सुप्रसिद्ध रंगकर्मी और लेखक नीरज गोस्वामी ने। इन चारों कहानियों को मैं पहले ही पढ़ चुका था। और चारों ही मेरी पसंदीदा कहानियाँ हैं। किसी कहानी को मैं उसकी समग्रता में पसंद करता हूँ। मसलन उसमें निहित सामाजिक सोद्देश्यता, रोचकता, कहानीपन और चूँकि नाटकों की दुनिया से जुड़ा हूँ, तो उसमें नाटकीय तत्वों का होना बेहद ज़रूरी है, जो कि पंकज सुबीर की लगभग हर कहानी में होते ही हैं। चारों ही कहानियाँ मन को झकझोर देती हैं। जिन पर लंबी चर्चाएँ की जा सकती हैं। चूँकि मैं समीक्षक नहीं हूँ, सिर्फ एक रसिक पाठक हूँ। पर बतौर रंगकर्मी उसे एक अलग नज़रिये से ज़रूर देखता हूँ। मेरा मानना है कि एक सजग रंगकर्मी को पढ़ने की आदत एक साहित्यकार से भी ज़्यादा होनी चाहिए। क्योंकि यही उसकी बौद्धिक ख़ुराख है। एक बिन पढ़ा अभिनेता, रंगकर्मी कम रंगकर्मचारी ज़्यादा लगता है।

हिंदी नाटकों में नई और अच्छी पटकथा का सर्वथा अभाव देखा गया है। उसका कारण भी यही है कि नाट्य आलेख अब कम ही लिखे जा रहे हैं। एक अच्छी पटकथा वही है, जिसका मंचन संभव हो। और पटकथा लिख पाना तभी संभव है जब पटकथा लेखक के रंगकर्मियों से ताल्लुक़ात हों या लेखक खुद ही रंगकर्मी हो। हिंदी साहित्य के कथा सागर में अथाह मोती हैं, बस डुबकी लगाने की ही ज़रूरत है। नीरज गोस्वामी अखंड पाठक हैं। उन्होंने कथा सागर में डुबकी लगाई और पंकज सुबीर की कहानियों के चार मोती चुन लिए।

पटकथा लेखन बहुत ही श्रम साध्य काम है। यह इतना कठिन काम है कि आपको रस से लबालब भरे एक प्याले को हाथों में थामे एक नट की तरह रस्सी पर चलना है और मजाल है रस की एक बूँद भी छलक जाय। यह बहुत बड़ी चुनौती है कि आपको किसी कहानी का नया शरीर गढ़ना है लेकिन उसकी आत्मा को मारे बग़ैर। दरअसल पटकथा लेखक मूल कहानी की व्याख्या ही कर रहा होता है। नाटककार का बौद्धिक स्तर एक विचारक की तरह ही होना चाहिए। क्योंकि विचारों के विस्तार का ही दूसरा नाम पटकथा है। रचना संसार में कोई पुरुष नहीं होता वहाँ सिर्फ माँएँ ही होती है। क्योंकि सृजन भी जन्म देने की तरह है। विचार भी भ्रूण की तरह विकसित होते हैं। उस दौरान सृजनकार भी उतनी ही प्रसव वेदना से गुज़रता है जितनी कि कोई माँ गुज़रती है। यदि मूल लेखक उस रचना की माँ है तो उस रचना के नाटककार का दर्जा भी सेरोगेट मदर से कम नहीं है।

क्योंकि वो किसी और के बच्चे को अपनी कोख में पाले उसे अपने रक्त मज्जा से सींच रहा होता है। वो भी प्रसव वेदना से गुज़रता है। हो सकता है, उस संतान में उसके जीन्स का भी हिस्सा आ जाता हो। नाट्यलेखन एक स्वतंत्र विधा है। किसी कहानी का नाट्य रूपांतरण एक प्रकार का Transcreation है। इसमें एक विधा दूसरी विधा का रूप ले रही होती है। इसलिये नाट्य रूपांतरण का मूल लेख से कम योगदान नहीं होता है। कई बार वो मूल रचना से भी महान रचना हो जाती है। भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' पर बनी गोविंद निहलानी की कृति 'तमस' इसका बेहतरीन उदाहरण है। पंकज सुबीर की इन चारों कहानियों के लिए भी यही कहा जा सकता है कि उनकी कहानियाँ तो श्रेष्ठ हैं ही उनका नाट्य रूपांतरण उससे भी श्रेष्ठ है। और इसका श्रेय नाटककार नीरज गोस्वामी को जाता है। चारों नाटकों पर विस्तार से बात करना ज़रा मुश्किल है, इसलिए संक्षिप्त में ही लिख रहा हूँ। पहला नाटक है, 'सुबह अब होती है..., इसी नाम से पंकज सुबीर की रहस्य से भरपूर कहानी है। हंस ने रहस्य विशेषांक निकाला था जिसमें यह कहानी प्रकाशित हुई है। हिंदी साहित्य में रहस्य कथाओं को दोयम दर्जे का माना जाता रहा है, जिसे बाज लोग छुपकर पढ़ते हैं। लेकिन यही साहित्य जब अंग्रेज़ी में हो तो वो ड्रॉइंग रूम में शान से रखा जाता है। वो स्टेटस सिंबल बन जाता है। अपराध कथाओं को हम नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते हैं क्योंकि अपराध समाज का हिस्सा हैं। जब तक समाज में असमानता है, निर्धनता है, जात-पात या अन्य किस्म का भेदभाव है, अपराध होते रहेंगे। 'सुबह अब होती है... है तो रहस्य कथा पर यह अपराध के कारण और उसके मनोविज्ञान पर बात करती है। यह अंतहीन घुटन की कहानी है। कुछ लोग अति से ज़्यादा परफेक्टनिस्ट होते हैं। उन्हें हर चीज अनुशासित और नियम पूर्वक चाहिए। उनकी यही आदत उन्हें सनकी और ख़ब्ती बना देती है। वो यह भूल जाते हैं कि इस दुनिया में कोई भी चीज़ परफेक्ट नहीं होती। कुदरत उनके बनाए नियमों से नहीं बल्कि अपने नियमों से चलती है। उसके अपने अनुशासन हैं। जब वो अपने अनुशासन दूसरों पर थोप देते हैं। इन्हें अहसास ही नहीं होता कि वो दूसरों की ज़िंदगी को जहन्नुम बना देते हैं। ऐसे नमूने हर दो चार परिवार में मिल जाते हैं। उन्हें हर चीज यथास्थान चाहिए। वो इस हद तक यथास्थितिवादी होते हैं कि उनका बस चले तो वे मौसमों को भी बदलने से रोक दें। जबकि परिवर्तन संसार का नियम है। संसार मे शाश्वत यदि कुछ है तो वो है खुद परिवर्तन। यह कहानी एक सस्पेंस के साथ आगे बढ़ती है। थाने में एक गुमनाम चिट्ठी आती है जिसमें लिखा होता है कि फलाँ कॉलोनी में एक बुज़ुर्ग की मौत हुई है वो स्वभाविक मौत नहीं है बल्कि हत्या है। बस उसी तफ़्तीश में कहानी परत दर परत खुलती है। जितना अच्छा शिल्प पंकज सुबीर ने गढ़ा है उससे एक इंच भी कम नहीं है नाटक का शिल्प। बल्कि नाटककार ने उसको शरीर और आवाज़ देकर उसमें प्राण ही फूँके हैं। दूसरा नाटक है, 'औरतों की दुनिया' यह दुनिया यदि औरतों ने बनाई होती शायद ज़्यादा बेहतर होती। शिकार युग से ही मर्दों ने औरतों की खूबियों को पहचान लिया था। उन्हें अपनी सत्ता छीने जाने का डर था। उसने उस पर चौका-चूल्हा और बच्चों को पालने की ज़िम्मेदारी से बाँध दिया। यहाँ तक कि उस पर अपना सौंदर्यबोध भी थोप दिया। वो अपने शृंगार में कुछ यूँ उलझी की उसे पता ही नहीं चला कि वो अपनी चोटी से ही बँध कर रह गई। हज़ारों सालों से औरतों से मर्दों ने सत्ता कुछ यूँ छीनी की दुनिया में उनके लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ी। मजबूरन औरतों की अपनी अलग दुनिया है। उस दुनिया में प्रेम है, समर्पण है, ममता है। वहाँ घृणा नहीं है,नफ़रत नहीं है, छल कपट नहीं है, वासना नहीं है। वे किसी का अपमान नहीं करती हैं। किसी का हक़ नहीं छीनती हैं। उनमें दुःख बर्दाश्त करने की अद्भुत क्षमता है। पुरुषों ने केवल छीना है, जीता है। तमाम युद्ध औरत की छाती पर ही लड़े जाते हैं। सुहाग भी औरत का ही मिटता है, गोद भी औरत की ही उजड़ती है। क़िस्सा कुछ यूँ है कि एक शहरी नौजवान को लगता है कि गाँव में रहने वाले उसके सगे चाचा ने चालाकी से विरसे में मिली पैतृक संपत्ति में उनके हिस्से की ज़मीन को हथिया लिया है, सो वो मामले को कचहरी तक ले गया। परिवार के सभी लोग उसके इस कदम के ख़िलाफ़ हैं, ख़ासकर औरतें। आगे कहानी कुछ यूँ मोड़ लेती है, जिनके ख़िलाफ़ अदालत में केस लगाया है उन्हीं के घर पर रह रहे हैं, उन्हीं के घर का बना हुआ खा रहे हैं। खाना खाते हुए प्यार मनुहार, शिक़वे शिकायतें चलती हैं। नौजवान को लगने लगता है कि घर के मामले को कचहरी तक ले जाकर उससे वाकई ग़लती हो गई। चाची सिर्फ चाची ही नहीं होती, वो दोस्त और माँ दोनों ही होती है। चाचा एक ऐसा पिता होता है जिससे दोस्तों जैसा नाता होता है, जो बातें पिता से भी नहीं बोली जा सकती वो चाचा से शेयर की जा सकती हैं। झूठा अहम और लालच यदि न हो तो यह रिश्ता बहुत ही पवित्र होता है। नाटक के क्लाइमेक्स में एक सीन है-नौजवान पश्चाताप के आँसू बहा रहा है, उसकी चाची भावुक होकर कहती है ''अब चुप कर मुन्ना बस कर। जो हुआ सो हुआ। पहले ही घर आ जाता बेटा तो इत्ते साल तो दुःख में न बीतते। अच्छा हुआ जो आज तूने औरतों की दुनिया में झाँकना सीख लिया। काश, अगर सब हमारी इस दुनिया की झलक पा लें तो दुनिया से नफ़रत जड़ से ख़तम हो जाए।''

'कसाब.गाँधी@यरवदा.in' नाम से तीसरा नाटक है। यह कहानी पंकज सुबीर की सबसे ज़्यादा चर्चित कहानी है। पहली बार जब इसे पढ़ी थी तब से ही यह ज़ेहन में घूम रही थी। इसको लिखने के लिए लोहे का जिगर चाहिए। ज्ञात हो कि अजमल कसाब ने जेल में गांधी की जीवनी पढ़ी थी और पूना की जिस यरवदा जेल में वो क़ैद था वहाँ कभी मोहनदास करमचंद गांधी भी क़ैद थे। कथाकार का यह जीनियस है कि वो कल्पना करता है कि फाँसी की आख़िरी रात क़साब को आभास होता है कि उसके साथ बैरक में कोई और भी है। वो और कोई नहीं बल्कि खुद महात्मा गांधी हैं। कहानी में अज़मल क़साब और गांधी का लंबा वार्तालाप है। कहानी का जिस्ट यह है कि आतंकवादी पेड़ पर नहीं उगते हैं, वो भी व्यवस्था की ही उपज होते हैं। इस दुनिया में अमीर और गरीब की लंबी खाई का नहीं बल्कि ज़मीन और आकाश का अंतर है।

जहाँ एक ओर एक अमीर आदमी अपनी पत्नी को तोहफ़ें में पाँच हज़ार करोड़ का मकान बनाकर देता है, वहीं दूसरी ओर इतनी ग़रीबी है कि लोग कूड़े के ढेर से खाना बटोरते हैं। जहाँ मुट्ठी भर लोग जन्नत की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं, वहीं लाखों लोग जहन्नुम के कीड़ों की तरह बिलबिला रहे हैं। आज़ादी के इतने साल बाद भी देश की जनता आर्थिक ग़ुलाम है। आज भी लाखों लोग शिक्षा, स्वास्थ और रोज़गार जैसी मौलिक ज़रूरतों से महरूम हैं। दूसरा यह कि आज भी बार-बार गांधी को सवालों के कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है। यहाँ भी गांधी सवालों के कटघरे में खड़े हैं और कसाब उनसे सवाल पूछ रहा है। पंकज सुबीर की कहानी जब नाटक में तब्दील होती है तब नीरज गोस्वामी का जीनियस टच उसको और महान बना देता है। नाटक में गांधी की पहचान क़ैदी नंबर 189 और क़साब की पहचान क़ैदी नंबर 7096 है। कहानी में दोनों के बीच सिर्फ संवाद है पर नीरज अपने नाटक में उसे और आगे ले जाते हैं। यहाँ कथानक में कसाब का परिवार भी आ जाता है। और बताया गया है कि कैसे ग़रीबी का फ़ायदा उठाकर घाघ राजनीतिज्ञ ग़रीबों के बच्चों से आतंकवाद जैसा घिनौने काम करवाते हैं। इसे उन्होंने नाटक में पिरोया है। नाटक में अजमल कसाब की माँ का एक संवाद है। ''क्यों है इतना ख़ून ख़राबा क्यों? मैं कहती हूँ अगर माँओं के हाथ में यह दुनिया सौंप दी जाए, तो ये सारा ख़ून-ख़राबा ये सारी हिंसा ही रुक जाए। मगर आप लोग ऐसा होने नहीं देंगे क्योंकि माँएँ इस दुनिया को बदल देंगी। वो बुहार देंगी दुनिया के नक़्शे पर खींची गई सारी लकीरों को, इधर से उधर तक सब एक सा कर देंगी। झाड़ू लेकर साफ कर देंगी सारी बारूदों को और फेंक आएँगी उसे कूड़ेदान में। वो जानती हैं कि बारूद हमेशा किसी माँ की कोख को ही झुलसाती है। वो इस दुनिया को सचमुच रहने के क़ाबिल बना देंगी, यदि आप ये दुनिया उन्हें सौंप दें।'' पूरा नाटक इस तरह से गढ़ा गया है कि दर्शक या पाठक खुद को पात्र की तरह महसूस करने लगते हैं। आने वाले समय में लोग नीरज गोस्वामी को इस नाटक के रचयिता के रूप में जानेंगे।

चौथी और अंतिम कहानी है 'चौथमल मास्साब और पूस की रात' आप लोगों ने प्रेमचंद की पूस की रात तो पढ़ी ही होगी। यह पंकज सुबीर की लिखी पूस की रात है। ये एक शरारत भरी कहानी है। इंसान को जीने के लिये सिर्फ रोटी कपड़ा और मकान की ही नहीं और भी वगैरह की ज़रूरत होती है। यह वगैरह वगैरह आदिम भूख का नाम है। जिसे हम ठरक कहते हैं, जो होती तो हर किसी में है, पर स्वीकारता कोई नही है। इस से तो देवता, दानव, यक्ष और गंदर्भ भी नहीं बच पाए तो बेचारे चौथमल मास्साब तो फिर एक इंसान ही हैं। बेचारे चौथमल मास्साब घर से सौ कि.मी.दूर एक गाँव में मास्टर हैं। पूरे गाँव में वही एक पढ़े-लिखे मनुष्य हैं। गाँव में बड़ी ठाठ है उनकी, ख़ूब इज़्ज़त है। बस कमी है तो उस चीज़ की जो इस आदिम भूख को शांत कर सकती है। सरसरी तौर पर देखो तो यह एक हल्की कहानी जान पड़ती है पर इसको गम्भीरतापूर्वक सोचो तो बड़ी असाधारण कहानी है। मज़ाक-मज़ाक में लेखक पाठकों को एक गम्भीर मैसेज दे देता है कि कैसे रोज़ी-रोटी की तलाश में अपनी पत्नी से दूर रह रहे पुरुष सेक्सुअल फ्रस्टेशन का शिकार हो जाते हैं। और दूसरा मैसेज यह है कि चौथमल मास्साब हर मर्द के अंदर होते हैं। वरना क्यों पाठक अंत तक इस कहानी को पढ़ रहे होते हैं कि आगे क्या हुआ होगा। यही हाल नाटक पढ़ते या देखते समय होता है। दर्शक अंत तक यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि मास्साब चौथमल की पूस की रात कैसे बीती। क्लाइमैक्स में सूत्रधार दर्शकों से कहता है कि हम सब में कहीं न कहीं चौथमल मास्साब छुपे बैठे हैं जो वक़्त और मौका मिलते ही बाहर आ ही जाते हैं। इस नाटक को पढ़कर कहानीकार और नाटककार दोनों की रेंज पता चलती है की वो यदि गम्भीर कहानियाँ लिख सकते हैं तो हल्के-फुल्के अंदाज़ में लोगों को हँसा भी सकते हैं। नाटक के संवाद बहुत ही चुटीले हैं। पढ़ते वक़्त कई बार हँसी फूट पड़ती है। कुल मिलाकर जो रंगकर्मी नई स्क्रिप्ट की तलाश में रहते हैं, उनके लिए यह किताब एक अच्छा उपहार है।

000

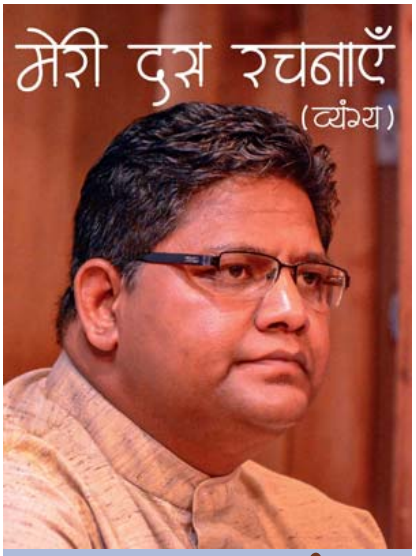

पुस्तक चर्चा

मेरी दस रचनाएँ

लेखक : लालित्य ललित

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

नियमित और लगातार लेखन लालित्य ललित की विशेषता है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास में संपादक जैसे महत्त्वपूर्ण तथा व्यस्तताओं से भरे पद पर कार्य करने के बाद भी वे लेखन के लिए समय निकाल लेते हैं और ख़ूब निकाल लेते हैं। व्यंग्य वे लगातार लिख रहे हैं। उनके व्यंग्य लगातार प्रकाशित हो रहे हैं। वे अपने व्यंग्य में जीवन से ही विषय को उठाते हैं और उन विषयों को आम बोलचाल की भाषा में इस प्रकार गढ़ते हैं कि पढ़ने वाला उनके पात्रों के साथ जुड़ता चला जाता है। छोटे-छोटे चुटीले संवाद गढ़ना उनकी ख़ासियत है। इस संग्रह में लालित्य ललित के दस प्रतिनिधि व्यंग्य सम्मिलित किए गए हैं। संग्रह में शामिल व्यंग्य इस प्रकार हैं- पांडेय जी और मतलबी लोगों की दुनिया, पांडेय जी का लेखकीय दौरा, पांडेय जी और उनकी फ़िलॉसफ़ी, पांडेय जी और दिल्ली की दिल्लगी, पांडेय जी और ट्रैफिक के लोचे, पांडेय, दुनिया और छज्जे की कहानी, पांडेय, शादी और उससे जुड़े किस्से, पांडेय जी और इलेक्शन के किस्से, पांडेय जी चुनाव और उसके चर्चे, पांडेय जी और यात्राओं के मज़े।

000

पुस्तक समीक्षा

दसवीं के भोंगाबाबा

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. हंसा दीप

लेखक : गोविंद सेन

प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन प्रा. लि.

Dr. Hansa Deep
1512-17, Anndale Dr.,
North York, Toronto-ON-
M2N2W7 Canada
Email - hansadeep8@gmail.com
Mobile - 001 +647 213 1817

कहते हैं कि अपनी ज़मीन से जुड़ा आदमी खुद अपने से भी उतना ही जुड़ा रहता है, अपने आप से बातें करते हुए तब वह अपने साथ दूसरों के दु:खों से, तकलीफ़ों से भी जुड़ जाता है। गोविंद सेन की कहानियों को पढ़ते हुए कुछ ऐसा ही महसूस करती हूँ मैं व अपने जन्मस्थल झाबुआ जिले, कार्यस्थल धार जिले के आसपास पहुँच जाती हूँ। ''बचपन की पोटली में गाँव की यादों के सिक्के खनखनाते रहते हैं।'' वहाँ बिताए बचपन और जीवन के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दिन, जो सदा स्मृति में रहते हैं याद आ जाते हैं। हर दृश्य एक-एक करके आँखों के सामने से गुज़रता है, तब ऐसा लगता है जैसे गोविंद जी के पात्रों के साथ मैं भी वहीं हूँ। वह जीवंतता कहीं न कहीं ऐसी दिल को छूती है कि कहानी के पात्रों के साथ मैं बरबस ही उनमें शामिल हो जाती हूँ।

संग्रह की पहली कहानी लाँबू फोतरूँ - में नायक गुमानसिंग अपनी मस्त जीवन शैली में रहते एक शहरी पढ़े-लिखे को जिस तरह से बौना साबित करता है वह हर एक मानसिक कुंठा से ग्रस्त व्यक्ति की हक़ीक़त है। जब अपनी सारी समृद्धियों को दर्शाते ऐसे लोग लगातार अपने श्रेष्ठ होने का अहसास जताते रहते हैं व सामने खड़े व्यक्ति को बौना महसूस करने के लिए मजबूर कर देते हैं। कहानी में मालवी, निमाड़ी और भीली बोली के शब्दों की भरमार, यथार्थ के साथ रू-ब-रू करवाती है। ''वह अक्षरों में भी छोटा दिखना पसंद नहीं करता था।'' जैसी भाषा अनायास ही कहानीकार की अपने चरित्र को अभिव्यक्त करती साफगोई की एक झलक दिखाते हुए, कथ्य पर अपनी पकड़ से अवगत करा देती है। सीढ़ियाँ - कहानी सम्मान समारोहों व उनसे जुड़े चरित्रों की दास्तान सामने लाती है। गोविंद जी की भाषा तीखी-धारदार होकर ऐसे व्यंग्य बाण चलाती है जो सीधे-सीधे चोट करते हैं। बढ़ती उम्र के साथ आदमी सम्मान की सीढ़ियाँ चढ़ता जाता है पर उम्र की सीढ़ियाँ उतरता जाता है। सच्चाई और साफगोई, कहानी की हर लकीर से उभरकर सामने आती है। लेखक स्वयं कहते हैं - ''मेरी कहानियों में यथार्थ की सीमेंट अधिकाधिक होती है और कल्पना की रेत कम से कम। सच्चाई की चमक मुझे आकर्षित करती है।''

कृपा का अधिकार - कहानी उन दिनों की याद दिला देती है जब मैं भी ऐसी घटनाओं

की गवाह बनी थी। नकल की बढ़ती समस्या में शिक्षकों की भागीदारी देश में अंधेरा फैलाने की कारगर कोशिश है। मैं इस सत्य से भलीभाँति परिचित हूँ। भारत में अपने शिक्षणकाल के दौरान मैंने कई ऐसे वाक़यों को अपने सामने से निकलते हुए देखा था व चाहकर भी कुछ नहीं कर पाई थी। शैक्षणिक संस्थाओं में दोगलेपन की मिसाल लिए इन चरित्रों की आपसी मिलीभगत अपनी संस्था के रिकार्ड को सुधारने के प्रयासों और हर टूटते नियम के पीछे की दास्ताँ है। ये चरित्र देश को बनाते नहीं, बिगाड़ते हैं व आने वाली भावी पीढ़ी को भी अपने गुर सिखा जाते हैं। यह परंपरा निरंतर चलती रहती है और देश को कमज़ोर करने वाली ताक़तें मज़बूत होती रहती हैं। खूमसिंग - कहानी उन लोगों की दास्ताँ है जो सीधे सपाट हमें यह कह जाते हैं कि ग़रीबी, भूख और बीमारी के चलते कितनी ज़िंदगियाँ यूँ ही चली जाती हैं। उनकी उपस्थिति कहीं दर्ज नहीं होती, कहीं भी नहीं। अपने आसपास बिखरे चरित्रों को लेकर जिस तरह से कहानी बुन लेते हैं गोविंद जी, वह किसी ख़ास व्यक्ति की नहीं बल्कि एक आम इंसान की कहानी बन जाती है। टापू - कहानी मेरी पसंदीदा कहानियों में से एक है। ''टापू'' शीर्षक का अर्थ जिस तरह से कहानी के चरित्र में उभरता है वह लाजवाब है। ''कभी-कभी आदमी खुद को टापू बना लेता है। समुद्र की अथाह जल राशि में नितांत अकेला निर्जन भूखंड।'' सत्य है यह, आदमी अकेला रहना चाहता है पर अकेला पड़ना नहीं चाहता। एकाकीपन की सत्यता को उजागर करती यह कहानी बेहद सशक्त है। भाषा बहुत अच्छी है, सहज, सरल और चरित्र को सूक्ष्मता से उकेरती।

ग़रीबी का गोवर्धन - यात्रा-संस्मरण शैली में लिखी गई कहानी है जहाँ ग़रीबी के फफोले को उजागर करने के लिए उम्दा भाषा और शैली के साथ सहज बढ़ती कहानी के माध्यम से इस भयावह समस्या को चित्रित किया गया है। अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग प्रासंगिक है। यह आधुनिक माहौल के साथ मेल खाता हुआ कथ्य चरित्रों के अनुसार समय-समय पर बदल जाता है। चरित्र बदलते ही देशज शब्दों का प्रयोग पाठक को यथार्थ के धरातल पर ले आता है। नराण दादा-द ग्रेट गपोड़ी, लक्झरी बाबू, न्हारसिंग का नसीब अपने विवरण देने के ख़ास तरीके से बहुत प्रभावित करती हैं। ''मक्खियों का भी मेला लगा हो।'' जैसे प्रयोग सामाजिक विसंगतियों पर सवाल छोड़ देते हैं पाठक के लिए। एक ओर दूसरा बाप जैसी कहानी में देह व्यापार में लिप्त लोग ग़रीबी का फ़ायदा उठाते हैं वहीं दूसरी ओर मोटाभाई की मूर्खता - का बयान करते हुए गोविंद जी स्वयं बताते हैं कि मैंने तो सच ही लिखा है। यानी मोटाभाई हैं व उन्हें पता भी है कि यह कहानी उन पर लिखी गई है। अपने इर्द-गिर्द के लोग और उनकी प्रवृत्तियों का बयान करते ऐसे कथ्य अनायास ही भाषायी सौंदर्य से प्रभावी और सशक्त हो जाते हैं - ''बनियान के पीछे से छाती के सफ़ेद दिशाहीन बाल झाँकते रहते हैं। कुरते के बटन खुले रखने का कारण बताते हैं कि मैं आज़ाद हूँ। खुले बटन मेरी आज़ादी का प्रतीक हैं।''

'दसवीं के भोंगा बाबा' पुस्तक का शीर्षक वाली कहानी होने का पूरा हक़ रखती है। एक व्यक्ति अपने प्रभाव से लोगों में इतना प्रचलित हो जाता है कि पूरा का पूरा गाँव उसका पर्याय बन जाता है। भाषा के कुशल चितेरे कहानीकार गोविंद सेन यहाँ अपना श्रेष्ठ देते हैं। उनका कौशल शब्दों के माध्यम से कानों में खनकता है - ''इस गाँव से भोंगा बाबा को घटा दिया जाए तो गाँव शून्य हो जाएगा।'' सरल, सहज और प्रवाहमयी प्रयोग अनायास ही किसी प्रतीक या बिंब की तरह नहीं, बल्कि चरित्र को बखानते आते हैं हमारी नज़रों के सामने - ''मानों गाँव के दस रास्ते हों और हर रास्ता खुला, जिस पर कोई भी किवाड़ नहीं। भोंगा बाबा अपने गाँव दसवीं की ही तरह दसों दिशाओं में खुले थे।''

कुल मिलाकर इस पुस्तक की कहानियाँ अपने आसपास के चरित्रों का गहराई से आकलन करके उनकी जीवन की सच्चाइयों को हमारे सामने कथाकार की कुशलता के साथ, यथार्थ का चित्रण करती हैं। गोविंद सेन जी को उनके दूसरे कहानी संकलन के लिए हार्दिक बधाइयाँ व ढेरों शुभकामनाएँ।

000

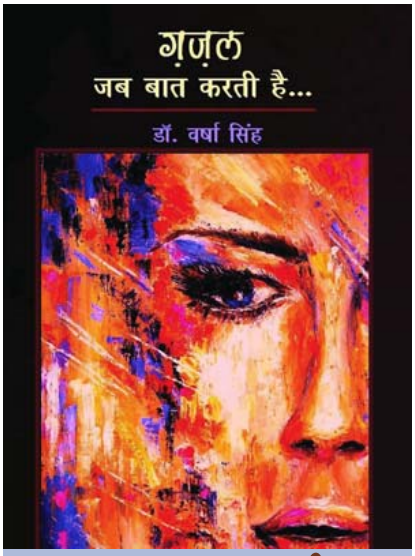

पुस्तक चर्चा

ग़ज़ल जब बात करती है

लेखक : डॉ. वर्षा सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

डॉ. वर्षा सिंह का ग़ज़ल संग्रह 'ग़ज़ल जब बात करती है' अभी शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। डॉ. वर्षा सिंह का नाम अदब और ग़ज़ल की दुनिया में बेहद मक़बूल और जाना पहचाना मक़ाम रखता है। वे कवि सम्मेलनों के कोलाहल से दूर रहती हैं मगर मन के अंदर के कोलाहल को भरपूर जीती हैं और ज़िंदगी की सारी थकन, घुटन और बेचैनी को बहुत ही शिद्दत के साथ काग़ज़ पर उतारती हैं। अपनी भाव प्रवणता और वैचारिक सांद्रता को अपने हुनर से बुनने का क़रीना, सलीक़ा डॉ. वर्षा सिंह में बखूबी है। व्याकरणिक अनुशासन का भरपूर रखरखाव और दृष्टि सापेक्षता उनकी ग़ज़लों की खूबी है। यह यक़ीन किया जा सकता है कि ग़ज़लकारा डॉ. वर्षा सिंह की शायरी किसी भी व्यक्ति की संवेदना को जगाने में सक्षम है। अपनी लम्बी काव्य यात्रा के दौरान डॉ. वर्षा सिंह ने अपने कहन का एक ख़ास अंदाज़ विकसित किया है जो बहुत सधा हुआ और ग़ज़लियत से भरा हुआ है। उन्होंने ग़ज़ल के अनुशासन को बख़ूबी साधा है।

000

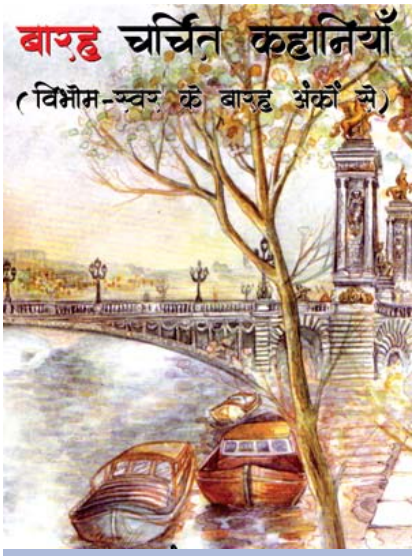

पुस्तक समीक्षा

बारह चर्चित कहानियाँ

(कहानी संकलन)

समीक्षक : प्रो. अवध किशोर प्रसाद

संपादक : सुधा ओम ढींगरा पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रोफ़ेसर अवध किशोर प्रसाद
टाइप- वी/1
सी आई ए ई कैम्पस
नबी बाग, बैरसिया रोड
भोपाल मध्य प्रदेश भोपाल 462038
मोबाइल : 95599794129

शिवना प्रकाशन सीहोर से सुधा ओम ढींगरा एवं पंकज सुबीर के संयुक्त संपादन में 'बारह चर्चित कहानियाँ' कहानी संकलन का प्रकाशन हुआ है। इसमें 'विभोम-स्वर' पत्रिका के बारह अंकों के बारह कथाकारों की बारह कहानियाँ संकलित हैं। इस संकलन की ख़ासियत यह है कि ये बारह कथाकार महिला लेखिकाएँ हैं, जिनकी कहानियों को प्रमुखता दी गई है। ऐसा किसी योजना के तहत नहीं हुआ है, बल्कि संपादक द्वय के अनुसार ''ऐसा जानबूझ कर या पहले से सोचकर नहीं किया गया। जब पूरी सूची बना ली गई तो ज्ञात हुआ कि सभी रचनाकार महिलाएँ ही हैं।'' उन्होंने आगे कहा ''यदि आप 'विभोम-स्वर' के पिछले बारह अंकों को देखेंगे, तो आपको महसूस होगा कि पत्रिका में प्रकाशित होने वाले रचनाकारों में महिलाओं की संख्या अधिक होती है। यह संख्या कभी-कभी पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक होती है।''

संकलन की पहली कहानी आकांक्षा पारे की 'कैंपस लव' है। इसमें कॉलेज में एक साथ पढ़ाई करने वाली लड़के-लड़कियों की प्रेम गाथा का चित्रण हुआ है। कथा वाचिका और मिताली एक ही सहपाठी परितोष कुलकर्णी से प्यार करती हैं किंतु वह लड़का इनमें से किसी को भी अपना हमसफ़र बनाना नहीं चाहता है। यद्यपि तथा वाचिका अपने जीवन-क्रम में बँध जाती है फिर भी वह उसके प्यार को अपने मन में सँजोए हुए है। इसके माध्यम से कथाकार ने जीवन में पनपते पहले प्यार की प्रासंगिकता को अभिव्यक्ति दी है। 'ख़ाली हथेली' सुदर्शन प्रियदर्शिनी की प्रवाहमयी भाषा में लिखी गई पुरुष वर्चस्व की कहानी है। कहानी में पुरुष के पुरुष होने के अहंकार एवं किसी भी पैमाने पर पुरुष से कमतर नहीं होने वाली नारी द्वारा पुरुष की स्वाधीनता स्वीकार करने की प्रवृत्ति का बड़ा ही सटीक वर्णन हुआ है। कथावाचक और उसकी पत्नी दोनों ही डॉक्टर हैं किंतु कथा वाचक के अंदर विराजमान नरकासुर जिसकी आसुरी भूख औरत को सताकर मिटती है, उसे हमेशा पत्नी को त्रास लेने के लिए सचेष्ट रखता है और पत्नी के भीतर व्याप्त परवशता की भावना उसे प्रताड़ना सहने के लिए बाध्य कर देती है। इन्ही दो बिंदुओं पर कहानी की रचना हुई है। एक उद्धरण दृष्टव्य है ''तुम मेरे समक्ष खड़ी होने की कोशिश कर रही थीं। ईंट का जवाब पत्थर से वाली मुद्रा में। पर मैं ऐसा नहीं चाहता था, मैं चाहता था तुम वैसी ही भीगी बिल्ली बनी रहो और मेरे अत्याचार सहती रहो। पलट के कभी कुछ न कहो, कुछ न बोलो।''

'क्या आज मैं यहाँ होती' नीरा त्यागी की कहानी में पत्नी के रूप में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास खोकर जीवन जीने वाली औरत, एक तलाक़शुदा जीवन जीने वाली संयमित नारी और एक तलाक़शुदा घाट-घाट का पानी पीने वाले निर्बंध पुरुष की ज़िंदगियों का सम्यक निरूपण हुआ है। तलाक़शुदा सुधा तलाक़शुदा नलिन के संपर्क में तो रहती है किंतु वह नलिन की बहन मोना के अनुसार 'शी इज़ नॉट लेस्बियन' है। नलिन की माँ के कहने पर ''जब तक दोनों एक-दूसरे को ठीक से जान लो, तब तक कैसे आगे बात बढ़ेगी।'' सुधा का उत्तर ''आप अपने बेटे को अच्छी तरह जानती हैं, यदि मैं भी वही करती जो और

करती हैं, तो क्या मैं यहाँ आज आपके पास बैठी होती।'' एक औरत की पवित्रता की उद्‌घोषणा करता है और कहानी के शीर्षक की सार्थकता भी सिद्ध करता है।

'छोटा सा शीश महल' अरुणा सब्बरवाल की कहानी है। इसमें एक माँ आशा की दर्द की अभिव्यक्ति हुई है, जो अपने जुड़वाँ पुत्र लव की याद में तड़पती रहती है, जिसका अवसान पच्चीस वर्ष बाद उसके दूसरे पुत्र कुश के दीक्षांत समारोह पर होता है, जब वह म्यूज़ियम में रखे लव के हृदय को जार में तैरते हुए देखती है। जन्म से ही लव को हृदय रोग था उसके हृदय का बायाँ कोष्ठक अविकसित था, जिसका इलाज नामुमकिन था। आशा का पति रवि डॉक्टर फ़र्ग्युसन के परामर्श पर लव के हृदय को डोनेट कर देता है ताकि हज़ारों विद्यार्थी इससे लाभान्वित हो सकें। लव के हृदय को देखकर आशा संज्ञा शून्य हो जाती है। रवि सहारा देते हुए कहता है ''देखो न, लव तो कुश से पहले ही प्रोफ़ेसरों का प्रोफ़ेसर बनकर कितने प्रोफ़ेसर बना चुका है। आशा सुना तुमने? उसने तुम्हें पुकारा मम्मी।'' कहानी में घटनाओं का समायोजन बड़ी ही मार्मिकता के साथ हुआ है।

पुष्पा सक्सेना की 'मेरे बाद' शीर्षक कहानी में एक प्रताड़ित औरत की दर्द भरी ज़िंदगी एवं उसकी पुत्री के संकल्प ''किसी भी परिवार में प्रताड़ित स्त्री को न्याय और उसका प्राप्य दिलाना, मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय और संकल्प होगा।'' की अभिव्यक्ति हुई है। सुहागन रहते हुए भी पति की प्रताड़ना सहन करती वैधव्य का एकांत जीवन यापन करने वाली सरस्वती की मृत्यु पर उसकी बेटी आकांक्षा, सरस्वती की इच्छा के अनुरूप पिता के रहते हुए स्वयं मुखाग्नि देती है। परिवार के किसी भी सदस्य को उसकी अर्थी का स्पर्श नहीं करने देती है। उसे विधवा लिबास पहनाती है। दादी कांता के विरोध पर वह व्यंग्यात्मक लहजे में उतर देती है; क्योंकि उसी की सहमति से सरस्वती के विरुद्ध सब कुछ होता रहा था। कहानी में व्यंग्य, यथार्थ और प्रतिकार का त्रिवेणी संगम है। अनिल प्रभा कुमार की 'उसका मरना' शीर्षक कहानी में अमेरिका में एक भारतीय की मृत्यु के बाद परिजनों को बिना सूचित किए उसकी अंत्येष्टि के उपरांत परिजनों के बीच होने वाले संवाद का कथोपकथन शैली में विवरण प्रस्तुत किया गया है। अनेक पात्रों के बीच के संवाद के माध्यम से भारत और अमेरिका में होने वाली अंत्येष्टि क्रिया तथा अंत्येष्टि यात्रा का वर्णन विवरण हुआ है। पात्रों के मौन में भी कथाकार ने कहानी के प्रतिपाद्य को स्पष्ट कर दिया है। डॉक्टर हर्ष बाला शर्मा की 'एक कायर दास्ताँ' दिलचस्प एवं मार्मिक कहानी है। इसमें तथ्यों का समायोजन बड़े ही सुनियोजित ढंग से हुआ है। कहानी का अंत कहानी के कथ्य को स्पष्ट कर देता है। कथावाचक का जीवन यद्यपि फ़ातिमा तथा नर्स के दोनों बच्चों रिज़वाना और राहत के साथ ख़ुशहाल है, फिर भी वह पनाह माँगती पनियल आँखों को भूल नहीं सकता है और अपने आपको कायर मानकर कोसता है। नर्स का लंबा ख़त कथावाचक की आत्मा को झकझोर देता है और पश्चाताप की आग में वह आपाद मस्तक जल उठता है- ''कायर हूँ मैं, कोड़े बरसाओ मुझ पर, थूको मुझ पर, मैं मोहब्बत की लायक नहीं।'' डॉ. अचला नागर की 'डोर' गुलेरी जी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी की शैली में लिखी गई बाल और युवा प्रेम की मनोवैज्ञानिक कहानी है। संतो के बाल मन में बैठी हुकुम सिंह की तस्वीर हक़ीक़त बन कर जब कुँए की मुँडेर पर खड़ी हो जाती है, तो वह स्तब्ध रह जाती है। किन्तु हुकुम सिंह की अप्रत्याशित मृत्यु उसे सकते में डाल देती है। हुकुम सिंह द्वारा गागर को सन्तो के सर पर धरने के बाद उसके बोल ''अब रोइयो मति ना तभी, मेरी सौं... देख जित्ते आँसू बहे ना उत्ता ही ख़ून बहता है शरीर का, समझी ना।'' सन्तो के हृदय में प्रेम का अंकुर फूट पड़ता है। यही उसके लिए अंतिम दर्शन था। लेकिन उसकी 'सौं' जीवन पर्यंत याद रही जो उसकी मृत्यु की ख़बर पर आँसुओं के रूप में बिखर गई। यह एक मार्मिक कहानी है।

डॉ. हंसा दीप की 'वह सुबह कुछ और थी' कहानी में ऑफ़िस में कार्यरत नील की एक ख़ुशनुमा दिन के विवरण के क्रम में कर्मचारियों के जीवन-क्रम, चिंतन तथा मौसम की मदमस्त फ़िज़ाँ की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कहानी पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। डॉ. विभा खरे की 'तवे पर रखी रोटी' एक चिंतन प्रधान कहानी है। इसमें बेलकर तवे पर रखने और उसके जल उठने के अंतराल में कथा वाचिका अपने पति राकेश के विषय में चिंतन करती है। इस चिंतन के क्रम में एक व्यक्ति के चरित्र का चित्रण किया गया है। पति राकेश के साथ अपने साम्य-वैषम्य का चिंतन ''बस कभी-कभी उसको प्यार करते करते ही एक प्रश्न सिर उठा देता है कि वो मुझे क्या समझता है, एक इंसान या सिर्फ़ एक बीवी।'' उसे असमंजस में डाल देता है। उर्मिला शिरीष की 'नाच गान' शीर्षक कहानी में अंतर्धामिक प्रेम से उत्पन्न विरोधाभासी संभावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। लीना और इमरान का प्रेम पारिवारिक, धार्मिक और सांप्रदायिक विवाद का कारण बन जाता है। इमरान के अब्बू का मैसेज ''आपका और इमरान का निकाह कभी नहीं हो सकता, सदियों से चली आ रही रवायतों को आपकी ज़िदों के कारण हम नहीं छोड़ सकते.. अपनी हदें पहचानिए और उसी में रहिए।'' लीना को संज्ञा शून्य कर देता है। कथोपकथन शैली में लिखी एक उत्कृष्ट कहानी है।

संकलन की अंतिम कहानी पारुल सिंह की 'ऑरेंज कलर का भूत' घटनाओं से भरी हुई एक लंबी कहानी है। बेटी के लिए डिसएबिलिटी सर्टिफ़िकेट बनवाने जैसी छोटी सी कथावस्तु पर लिखी गई एक चिंतन प्रधान कहानी है। कल्पना की उड़ान में विवरणों की घटाटोप छाई है। कहानी की शुरूआत ''आम सा मार्च का दिन, ख़ास से दिल्ली के रास्ते.. ख़ास मरकर भी ख़ास होते हैं... जो उनसे जुड़ जाता है वो तो और ख़ास हो जाता है।'' कौतूहलपूर्ण है तो अंत ''मैंने हाथ से अपना गीला सर छुआ तो मेरा हाथ पूरा ऑरेंज कलर से सना हुआ था।'' मार्मिक है। बीच के घटनाक्रमों में पाठक कथाकार के साथ बना रहता है।

संकलन की सभी कहानियाँ भाव, भाषा, कथ्य, शैली एवं शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इनमें कथावस्तु का समतुल्य विन्यास हुआ है। प्रवाहमयी भाषा में कल्पना की उड़ान है। कहानियाँ सर्वतोभावेन पठनीय एवं संपादकीय टीम का चुनाव क़ाबिले तारीफ़ है।

000

पुस्तक समीक्षा

कुछ दुःख कुछ चुप्पियाँ

(कविता संग्रह)

समीक्षक : शहंशाह आलम

लेखक : अभिज्ञात

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

शहंशाह आलम
प्रकाशन विभाग
बिहार विधान परिषद्
पटना – 800015, बिहार
मोबाइल : 09835417537

सच यही है कि आदमी के जीने-मरने के सारे अर्थ पहले से तय किए जा रहे हैं। आदमी क्या खाएगा, कितना खाएगा, क्यों खाएगा। आदमी कब मरेगा, कहाँ मरेगा। वह नोटबंदी की पंक्ति में लगकर मरेगा अथवा एन आर सी का विरोध करता हुआ मारा जाएगा। आदमी की संवेदना तक पहले से तय की जा रही है। एक आदमी को दुःख कितना होना चाहिए, वेदना कितनी होनी चाहिए, शोक कितना होना चाहिए। आदमी के विरुद्ध यह सब कर कौन रहा है – आदमी ही कर रहा है। बस फ़र्क़ इतना-सा है कि जो आदमी यह सब कर रहा है, वह सत्ता की रेड कार्पेट पर चल रहा होता है। वह व्यवसाय की रेड कार्पेट पर चल रहा होता है। वह शिक्षा माफ़िया की रेड कार्पेट पर चल रहा होता है। और जिस आदमी के ख़िलाफ़ यह सब हो रहा है, वह ग़रीब आदमी है। वह खोमचे वाला है, वह रिक्शे वाला है, वह ठेले वाला है या वह मध्यम वर्ग से आने वाला आदमी है। ऐसे ग़रीब आदमी के जीवन के बारे में बस यही तय है कि उनके बच्चे भी वही कार्य करें, जो वे करते आए हैं। तभी यूनिवर्सिटियों की फ़ीस बढ़ा दी जाती है। तभी कॉलेजों की फ़ीस बढ़ा दी जाती है। तभी स्कूलों की फ़ीस बढ़ा दी जाती है ताकि अच्छी यूनिवर्सिटियों में, अच्छे कॉलेजों में, अच्छे स्कूलों में बस रेड कार्पेट पर चलने वालों के बच्चे पढ़ें। खाने के सामान की क़ीमत बढ़ा दी जाती है ताकि सिर्फ़ उन्हीं के बच्चे सब अच्छा खाएँ। सब अच्छा पहनें। अभिज्ञात अपनी किताब 'कुछ दुःख कुछ चुप्पियाँ' की कविताओं में आदमी के जीवन की इन्हीं परेशानियों को लेकर अपनी चिंताएँ व्यक्त करते हैं, 'यह कविता विरोधी समय है / क्योंकि / चापलूस सच नहीं बोलते / और कविता झूठ नहीं बोल सकती / जिस दौर में / कमज़ोर विपक्ष पर / बनाए जा रहे हों लतीफ़े / और लोग ले रहे हों उसका लुत्फ़ / वह कविता विरोधी समय ही है (पृष्ठ : 13)।'

अभिज्ञात की चिंता वाज़िब है। विपक्ष कमज़ोर है तो इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि सत्तापक्ष निरंकुश होकर, अनियंत्रित होकर, स्वेच्छाचारी होकर मनमाना आचरण करने लगे। कविता भी चूँकि हमेशा एक अच्छे विपक्ष की भूमिका में रहती आई है, तभी अभिज्ञात आज की विपक्ष विरोधी सत्ता को कविता विरोधी सत्ता भी मानते हैं। जनता विरोधी सत्ता भी मानते हैं, 'अब अविश्वसनीय हो चुका है विश्वास / जब विचार / तलवार के बदले ढाल बन जाए / तो वह समय कविता विरोधी हो जाता है / जब सारे अर्थ पहले से तय हों / तब सारे शब्द अपना मार्ग खो देते हैं (पृष्ठ : 14)।' अभिज्ञात का कविता-संग्रह 'कुछ दुःख कुछ चुप्पियाँ' ऐसे समय में छपकर आया है, जिस समय में दुनिया भर के तानाशाह एक साथ सक्रिय दिखाई देते हैं। उन क्रियाशील-प्रतिक्रियाशील तानाशाहों से लड़ाई के लिए कवियों के पास बस शब्द होते हैं। अभिज्ञात भी उन तानाशाहों के विरुद्ध 'शब्दों पर शब्दों का ढेर' लगाते जाते हैं और इस साहस के साथ शब्दों का ढेर लगाते जाते हैं कि 'कविता आग का पर्याय' है। कवि को मालूम है कि आग जब मशाल बनकर सड़कों पर उतर आती है, तब सारे तानाशाह अपना कुरूप चेहरा छिपाने की ख़ातिर बिलों में छिपने के लिए मजबूर हो जाते हैं, 'बस एक तरीक़ा है / शब्द चलाने का / ठीक से उसे उठाओ / और फेंक दो

सही दिशा में / सही निशाने पर / अर्थ नया हो जाएगा / चल निकलेगा नए अर्थ के साथ (पृष्ठ : 25)।'

आज दुनिया भर के तानाशाहों की वजह से लोकतंत्र की हालत जितनी ख़राब है, पहले कभी नहीं हुई। अपने यहाँ के लोकतंत्र की हालत पर भी मुक्तिबोध हों, रघुवीर सहाय हों, धूमिल हों, जाबिर हुसैन हों, राजेश जोशी हों, मंगलेश डबराल हों यानी जितने भी लोकतंत्र समर्थक कवि हैं, अपनी-अपनी गंभीर चिंता व्यक्त करते आए हैं। अभिज्ञात की कविता-भाषा भी यही चिंता व्यक्त करती हुई छपाक-छपाक करके अपने समकालीन कवियों की भाषा के साथ कविता के विरोधी स्वर वाले दरिया में गोते लगाती है और इस दरिया में नहाकर नई ऊर्जा के साथ लोकतंत्र बचाए रखने की रखवाली में लग जाती है। कवि गोताख़ोर ही तो होता है। यह बात दीगर है कि कवि जिस दरिया में गोते लगाता है और ख़ुद को ऊर्जावान करता है, वह दरिया सबको दिखाई नहीं देता,

-'हर कवि / बार-बार जन्म लेता है / अपनी हर नई रचना के साथ / और बार-बार मरता है / जब भी करता है जीने की कोशिश (पृष्ठ : 70)।'

अभिज्ञात की कविता पढ़ते हुए एक ख़ास बात जो मैंने महसूस की है, वह यह कि अभिज्ञात जिस किसी निर्णय पर पहुँचना चाहते हैं बग़ैर किसी पसोपेश, बग़ैर किसी असमंजस, बग़ैर किसी दुविधा के पहुँच जाते हैं। इस वजह से इनकी कविता को पढ़ते हुए कविता के पाठक को सही निर्णय तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती। संग्रह की 'आग का पर्याय है कविता', 'हाशिये की ताक़त', 'लुकाछिपी का खेल', 'काल खण्डित करने की अविकल ललक', 'पीठ को पढ़ो', 'श्वेत रक्त कणों का नर्तन', 'सफलता के मंत्र', 'चुप्पियाँ', 'दु:ख', 'भाषा यूँ ही मर जाती है', 'लौ' आदि कविताएँ आपको एक नए तरीक़े के जोश से भर देती हैं। ग़ौर कीजिए तो अभिज्ञात की जो भी कविता है, वह हमारे समय की निराशा को काफ़ी हद तक दूर करती है और अभिज्ञात की कामयाबी इसी बात में है।

000

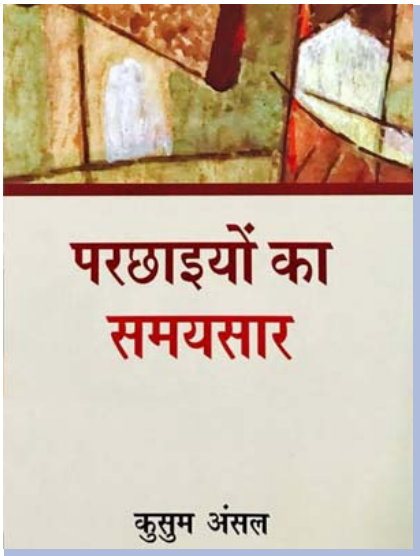

पुस्तक चर्चा

परछाइयों का समयसार

(उपन्यास)

समीक्षक : कादम्बरी मेहरा

लेखक : कुसुम अंसल

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन

''परछाइयों का समयसार'' कहानी एक युवती की जीवन गाथा है। मध्यम वर्ग की यह लड़की अपनी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर आगे बढ़ना चाहती है। वह मनोविज्ञान की छात्र है। स्नातकोपरांत शोध के सिलसिले में वह अपने गुरु जी को बहुत प्रभावित करती है। एकल जीवन की विषमताओं से जूझते उसके गुरु को वह अपने पुत्र के लिए उपयुक्त जीवन संगिनी समझ में आती है और वह उन दोनों का विवाह करवा देते हैं। नायिका सर्व गुण संपन्न पत्नी और वधु साबित होती है। उसका पति उस पर मोहित है। उनकी प्रणय यात्रा मानों इंद्रधनुष के पाँवड़े पर नील गगन की सैर हो। दो वर्ष तक वह सम्मोहित अवस्था में अभी एक दूसरे को पूरा महसूस भी नहीं कर पाए कि अचानक नियति पाँवों के नीचे से पाँवड़ा खींच देती है और उनका सतरंगा शीश महल झन्ना कर बिखर जाता है। दो वर्ष से कम अवधि में ही उसका पति एक भयानक दुर्घटना के बाद उसे आधार हीन छोड़कर जीवन से मुक्त हो जाता है। अपनी व्यथा को अपनी आतंरिक शक्ति का स्त्रोत बनाकर नायिका एकल जीवन में अग्रसर होती है। उसकी सेवा भावना, साधना एवं कर्त्तव्यपरायणता उसे कहीं भी कमज़ोर नहीं होने देती। तमाम प्रलोभनों को इच्छाशक्ति से कुचलते हुए वह अपनी आज़ादी को प्राथमिकता देती है और समाज सेवा के प्रति समर्पित हो जाती है। कुसुम जी ने बेहद सहज ढंग से उसकी नियति तय की है। लेखिका संभवत: यह सन्देश देती लगती हैं कि एक शिक्षित,कर्मठ स्त्री के लिए वैवाहिक जीवन ही केवल एकमात्र विकल्प नहीं है। पुरुष प्रेम जीवन का उद्देश्य नहीं है और ना ही विधवा स्त्री दया की पात्र है। आज की स्वावलम्बिनी नारी किसी सामाजिक विवशता से अभिशप्त नहीं है। उसकी आगामी जीवन यात्रा उसकी शक्तियों को उभारने में समर्थ साबित होती है।

पूरा उपन्यास भारतीय आधुनिक जीवन के प्रत्येक रंग को चित्रित करता है। विशेषकर मानवीय वेदना का सम्पूर्ण स्पेक्ट्रम अपनी विविधता में उपस्थित है। कुसुम जी की पकड़ न केवल स्त्रियों की मानसिकता पर है,वरन वह पुरुषों के लिए भी पैनी अंतर्दृष्टि रखती हैं। इस उपन्यास में हर उम्र के,हर तबके के और हर आर्थिक कोष्ठक के पात्र है जो यथार्थ जीवन से उठाए गए हैं। लेखिका ने बड़ी कुशलता से आम समाज के अपरिपक्व दृष्टिकोण को सुधारने का प्रयास किया है। अनेक आदर्श लगनेवाली नारियों का भी पर्दाफाश किया है और धार्मिक विडंबनाओं को उघाड़ा है। पूरी कहानी की भाषा परिमार्जित किन्तु सरल एवं सटीक है। कुसुम जी का गरिमामय व्यक्तित्व,अनेक स्थानों पर,नायिका के चित्रण में स्वत: दिखाई देता है। यद्यपि नायिका की जीवन दृष्टि आधुनिक सोच से ओत-प्रोत है, अनेक आकर्षणों के बावजूद वह एकाकी जीवन को चुनती है पर फिर भी कहानी का अंत एक अवसाद की सृष्टि करता है।

000

Kadambari Mehra, 35,The Avenue Cheam SM 27 QA , U K
Email : kadamhera@gmail.com

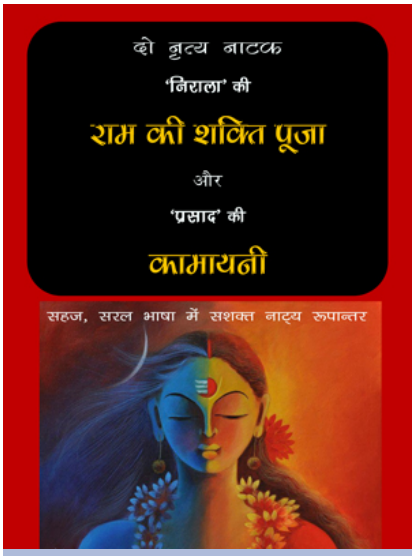

पुस्तक समीक्षा

'राम की शक्तिपूजा' और 'कामायनी' का नृत्य-नाटिका में रूपांतरण

(नाटक संग्रह)

समीक्षक : अशोक प्रियदर्शी

लेखक : कुमार संजय

प्रकाशक : नोशन प्रेस, चेन्नई

अशोक प्रियदर्शी
एम. आई. जी. 82, सहजानन्द चौक
हरमू हाउसिंग कॉलोनी
राँची, झारखण्ड 834002
मोबाइल: 9430145930

'निराला' की 'राम की शक्तिपूजा' और 'प्रसाद' की 'कामायनी' दोनों ही कालजयी रचनाएँ हैं हिन्दी साहित्य की अपूर्व निधियाँ हैं। 'राम की शक्तिपूजा' लंबी कविता है और कृतिवास के बांग्ला रामायण से प्रेरित है। 'निराला' की ऐसी ही अन्य लंबी कविताएँ हैं 'तुलसीदास' और 'सरोज स्मृति'। इन कविताओं के आधार पर कहा जाता रहा है कि कवि निराला में प्रबंध-लेखन की सामर्थ्य और क्षमता थी, इस ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। और सारे विवाद और ना-नुकुर के बाद भी प्रसाद जी की 'कामायनी' की छायावाद-युग का इकलौता महाकाव्य कहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इस कृति का औदात्त्य हमें चमत्कृत करता है। इसके बावजूद यह सच है कि ये दोनों ही उदात्त रचनाएँ वैसी लोकग्राह्य या लोकप्रिय नहीं हैं, अपनी प्रगाढ़ता, तत्सम भाशा और नूतन शिल्प-शैली के कारण। जैसे कभी छायावाद का मज़ाक उड़ाया जाता था वैसे ही 'राम की शक्तिपूजा' के प्रारंभिक छंद को लोग कभी मज़ाक में बिच्छू झाड़ने का मंत्र कहते थे - 'तीक्ष्ण शरविधृत क्षिपकर, वेगप्रखर, शतशेल सम्वरणशील, नील-नभ गर्जित स्वर'। असल में लोगों को 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' का पता नहीं था, इन पंक्तियों का अर्थ नहीं खुल रहा था। ये पंक्तियाँ राम-रावण-युद्ध की भंयकरता को शब्द-ध्वनि से मूर्त करती हैं। इन पंक्तियों का शाब्दिक अर्थ न भी समझें, इन पंक्तियों की ध्वनि अर्थ को समझा देती है।

और प्रसाद की कामायनी प्रतीकात्मकता, दार्शनिकता के कारण सामान्य पाठकों के पल्ले नहीं पड़ती जबकि साहित्य के पंडित इस रचना में ऊभ-चूभ करते रहे हैं, डूबते-उतराते रहे हैं। ये दोनों ही रचनाएँ इतनी विशिष्ट हैं कि जिस किसी भी विश्वविद्यालय में हिंदी का उच्चतर अध्यापन होता है वहाँ इनका पढ़ाया जाना अवश्यंभावी है, चाहे अंशों में ही सही। गिनने को जितनी भी कथा-कविताओं को हम महाकाव्य कह दें किन्तु जायसी की 'पद्मावत' और प्रसाद की 'कामायनी' को भुलाना असंभव है।

अब नाटक की बात। नाटक साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, इसमें लोक का सर्वाधिक जुड़ाव भी होता है। रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल का प्रारंभ नाटकों से होने पर आश्चर्य व्यक्त किया था। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस पर टिप्पणी की है कि शुक्ल जी जैसे विद्वान यह बात कैसे भूल गए कि लोक से सर्वाधिक जुड़ाव वाली विधा है नाटक। सो आधुनिक काल का प्रारंभ नाटकों से होना सहज-स्वाभाविक है।

डॉ. कुमार संजय के डी.एन.ए. में नाटक है। वे प्रसिद्ध नाट्य-मर्मज्ञ स्व. डॉ. सिद्धनाथ कुमार के सुपुत्र हैं। सिद्धनाथ बाबू ने नाट्य-मर्म को समझा-समझाया किन्तु 'अशोक' नामक एक पूर्णकालिक नाटक को बाद दे दें, तो उन्होंने मंच के लिए नाटक नहीं लिखे, रेडियो के लिए सैकड़ों नाटक लिखे और महत्त्वपूर्ण नाटक लिखे। डॉ. संजय जब रौ में आए तो लगातार मंचीय नाटक रचते रहे और संप्रति इनकी पंद्रह नाट्य पुस्तकों में पर्याप्त वैविध्य है। डॉ. संजय ने इस शिकायत को दूर करने की कोशिश की हिंदी में मंचित करने के लिए गिने-चुने नाटक ही उपलब्ध हैं, नाट्यकर्मी करें तो क्या करें! संजय ने पूर्णकालिक नाटक लिखे, बालोपयोगी नाटक लिखे, अँगरेजी की महत्त्वपूर्ण कहानियों का नाट्य रूपांतर किया (ये मूलत: अँगरेजी के विद्वान हैं), प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों का नाट्य रूपांतर किया। और अब 'राम की शक्तिपूजा' और 'कामायनी' को नृत्य-नाटिका के रूप में अंतरित कर इन्होंने प्रयास किया है कि दोनों विशिष्ट रचनाएँ लोकग्राह्य हों, लोगों, सामान्य लोगों तक भी ये रचनाएँ संप्रेषित हों। डॉ. संजय को नाटक की समझ तो है ही, इनके पास नाट्य-

भाषा है, संवाद-लेखन का कौशल है। आश्चर्य नहीं कि इनके प्राय: हर नाटक यहाँ-वहाँ मंचित होते रहते हैं और एक को तो सन् 2011 में मोहन राकेश सम्मान भी मिला और सिद्ध नाट्य-निर्देशकों ने दिल्ली सहित अनेक राज्यों की राजधानियों में इसे मंचित किया।

अब इस संकलन के दो नृत्य नाटकों को देखें। नाट्य रूपांतरकार डॉ. कुमार संजय ने प्रयास यह किया है कि मूल रचनाओं का सुवास-आस्वाद मिलता रहे और फिर भी यह लोक-आस्वाद बन जाएँ। इसके लिए 'राम की शक्तिपूजा' के प्रारंभिक भीषण युद्ध को ध्वनित करनेवाली कथा की सूचना दो सूत्रधारों से दिलवाई है और फिर उन्हें ही नैरेटर बनाकर कथा को संप्रेशित किया है। नैरेटर मूल पंक्तियों का भी वाचन करते हैं। शेष प्रसंगों के संप्रेषण के लिए कविता के मूल पात्रों से भी संवाद बुलवाए गए हैं और विवरणों को नैरेटरों के द्वारा कहलवाया गया है। डॉ. संजय के रूपांतर की भाषा अत्यंत सरल और सहज है ताकि भाषा की दुरूहता से दर्शक ऊबें नहीं। इसमें नैपथ्य से गायन तो है, नृत्य की आवश्यकता नहीं होने के कारण यह योजना नहीं की गई है।

'कामायनी' की अपेक्षया लंबी और दुरूह कथा के संप्रेषण के लिए सांगीतिक प्रभाव ख़ास प्रकाश-योजना, नैरेटर के कथा-प्रसंग का अपेक्षित विवरण और आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी नृत्य-भंगिमाओं का प्रयोग किया गया है। दर्शन और रहस्य सर्ग के जटिल प्रसंगों को सरल संवादों से स्पष्ट किया गया है, हिमालयारोहण और तीन गोलकों वाले प्रसंग को भी। पंद्रह संर्गों की कथा को समझाने के लिए प्रकाश-योजना (अंधकार और प्रकाश) का सहारा लिया गया है। इस तरह से 'कामायनी' में दर्शकों का प्रवेश हो जाता है। संभव है इस प्रवेश के बाद कुतूहलवश दर्शकों में मूल ग्रंथ को पढ़ने का उत्साह भी जगे, जो नाट्य रूपांतरकार का अभीष्ट है। दोनों नाट्य रूपांतरों के लिए कुमार संजय के प्रति आभार व्यक्त किया जाना चाहिए। आशा है, सिद्ध नाट्यकर्मी इन नाटकों को मंचित करेंगे। हाँ, प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं।

000

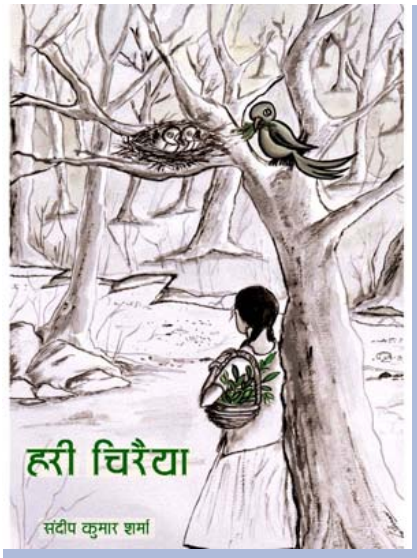

पुस्तक समीक्षा

हरी चिरैया

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : मनीष वैद्य
लेखक : संदीप कुमार शर्मा
प्रकाशक : न्यूसेंस पब्लिशिंग हाउस, मुरादाबाद

कहानी संग्रह 'हरी चिरैया' से अभी-अभी गुज़रा हूँ और इसके किरदार मेरे भीतर हलातोल मचा रहे हैं। उनकी आवाज़ें गूँज रही है। उनके आसपास की स्थितियाँ मुझे डरा रही हैं। इन कहानियों से होते हुए मैं झाँक पा रहा हूँ उस आसन्न विभीषिका के दरवाज़े के आर-पार। मैं चाहता हूँ कि यह विभीषिका टल जाए लेकिन जिस गति से यह मेरे और हमारे समाज की तरफ़ बढती हुई चली आ रही है, उससे इसके ख़तरों से बच पाना तो मुश्किल है। लेकिन इन्हीं कहानियों में दिए गए छोटे-छोटे उपायों के ज़रिए हम इसकी तीव्रता को कम कर सकते हैं और हमारे समाज को आपदा के बड़े और ख़तरनाक संकट से बचा सकते हैं।

आप सोच रहे होंगे कि मैं कहानियों पर बात करते हुए अनायास ये किस विभीषिका या युद्ध की तरह की बातें कर रहा हूँ तो मैं इन्हीं कहानियों के बरअक्स बात कर रहा हूँ। जी हाँ, यह कहानियाँ महज मनोरंजन या कोरी भावुकता या भाषा और शब्दों की जुगाली भर नहीं है, बल्कि ये पूरे समाज और दुनिया को एक बड़ा संदेश देती नज़र आती हैं और यहीं इनका क़द अनायास बढ़ जाता है। इस संग्रह में एक लंबी कहानी सहित कुल जमा आठ कहानियाँ हैं और ये सभी पानी और पर्यावरण के मुद्दे पर उद्देश्यपरक होकर लिखी गई हैं।

पानी की तासीर की तरह ही ये सहज-सरल, ताज़ी, पारदर्शी और तरल कहानियाँ हैं। इनसे गुज़रना किसी पहाड़ी नदी की बलखाती धाराओं से गुज़रना है। इनमें जीवन के प्रति उसी तरह का अनुराग है जो प्रकृति में सदैव उपस्थित रहता है। कहीं-कहीं उजाड़, तूफ़ान, अकाल, सूखा, त्राहि-त्राहि करते लोग भी हैं लेकिन वे वितृष्णा या जीवन में निराशा नहीं लाते बल्कि चेतावनी देते हुए वे अंत में फिर सब कुछ बदल कर एक सुखद बयार की उम्मीद से सराबोर भी कर देते हैं। मुझे लगता है कि ये मनुष्य की आदिम गहरी जिजीविषा को इंगित करती है और समाज को एक संदेश भी देती है। यह सही है कि कई जगह बात अंडरटोन की सीमाओं से परे नारे की तरह बड़े ज़ोर से कही गई है। हालाँकि इस तरह के विषय चयन में यह होना अवश्यंभावी भी है। करोड़ों लोगों की ज़िंदगी से सीधे तौर पर जुड़े प्रकृति के सवालों को ज़ोर से और नारे की शक्ल में ही कहा जा सकता है। अंडरटोन शायद यहाँ उतना कारगर नहीं है, जहाँ समय और समाज के बाक़ी सवालों को रेखांकित किया जाता है। आम तौर पर माना जाता है कि संदेशपरक कहानियाँ साहित्यिक गम्भीरता से दूर होती हैं लेकिन संदीप कुमार शर्मा ने इन कहानियों में इन दोनों के बीच की दूरी को पाटने की भरपूर कोशिश की है। ये सभी कहानियाँ हमें पानी और पर्यावरण की महत्ता बताते हुए अपने आप में एक मुकम्मिल कहानी की शर्तों को भी पूरा करती है। इनमें संवेदना भी है, कहन भी और सहज क़िस्सागोई भी, जो इन्हें साहित्येतर होने से बचाती हैं।

000

मनीष वैद्य, 11 ए, मुखर्जीनगर, पायनियर चौराहा, देवास (मप्र) पिन 455 001
मोबाइल : 98260 13806, ईमेल : manishvaidya1970@gmail.com

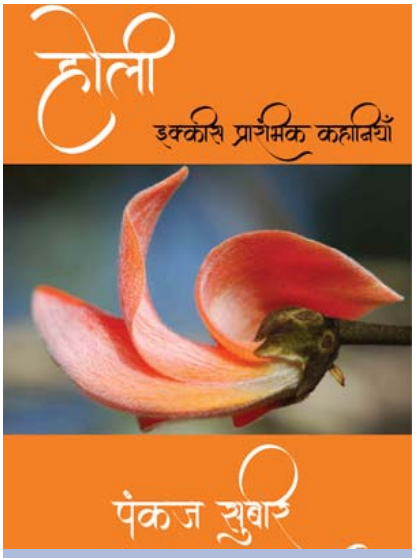

पुस्तक समीक्षा

होली

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : प्रो. अवध किशोर प्रसाद

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

प्रोफ़ेसर अवध किशोर प्रसाद
टाइप- वी/1
सी आई ए ई कैम्पस
नबी बाग, बैरसिया रोड
भोपाल मध्य प्रदेश भोपाल 462038
मोबाइल : 95599794129

शिवना प्रकाशन सीहोर से प्रकाशित पंकज सुबीर के कहानी संग्रह 'होली' में भी होली की मादकता, रंगिनी एवं सौंदर्य सुषमा का मार्मिक वर्णन हुआ है। इस संग्रह में होली से संबंधित इक्कीस कहानियाँ संकलित हैं, जिनका प्रतिपाद्य शीर्षक के अनुसार होली है। कथाकार की मान्यतानुसार ''यह एक लेखक के निर्माण प्रक्रिया से गुज़रने की, बल्कि उसमें भी एकदम प्रारंभ की कहानियाँ हैं।'' यह इक्कीस कहानियाँ उस हवेली की इक्कीस ईंटें हैं जिन पर 'चौपड़े की चुड़ैलें' वाली हवेली खड़ी की गई है।

संकलन की पहली कहानी 'बागड़' में दो सहेलियाँ कलूड़ी और सकूड़ी एक ही घर में क्रमश: जेठानी और देवरानी बनकर ब्याही जाती हैं। जबकि उनका कारोबार अलग है उनके बीच का प्रेम बंधन अटूट है। तीज-त्यौहार, होली-दीपावली जैसे पर्वों को साथ-साथ मनाती हैं। कालक्रम में समय परिवर्तित होता है और दोनों के बीच की छोटी सी लड़ाई विकराल रूप धारण कर लेती है। उनके बीच बोलचाल की बंदी के साथ उनकी आँगन में बागड़ लग जाता है। किंतु उनके दिलों के बीच बागड़ नहीं लगता है। होली की रात दोनों साथ-साथ होली मनाने चल पड़ती हैं। उनके आँगन का बागड़ भी टूट जाता है। वे एक प्राण दो देह हो जाती हैं। 'रंग दोस्ती के' शीर्षक कहानी में हिंदू लड़के-लड़कियाँ सोनू, मनीषा और स्वाति मुसलमान दोस्त कादिर के साथ मिलकर होली खेलते हैं। जिसकी इजाज़त कादर के अब्बू देते हैं। 'संधिकाल' में पड़ोसन मंजुला भाभी की समझाइश पर सुषमा अपने बेटे राहुल को परीक्षा के बावजूद होली खेलने की इजाज़त देती है। कथाकार ने संधिकाल का बड़ा ही मनोरम विश्लेषण किया है ''शरद ऋतु संधिकाल है वर्षा और ठंड तो फागुन है संधिकाल गर्मी और ठंड का। संधिकाल हमेशा से ही मोहक होता है चाहे वो ऋतु का हो, या फिर उम्र का।'' सारगर्भित भाषा में लिखी 'अब चलो भी कांता' एक औरत के भीतर बनते दर्प और समय की रेत उसके पिघलने की कहानी है। मायके की मिथ्याभिमान भरी ज़िंदगी के दर्प के कारण कांता अपने पति सुशील को छोड़कर मायके चली आती है। किंतु मायके के दर्प की ढहती दीवारें उसे बीस वर्ष बाद सुशील के पास लौटा देती हैं। सुशील को देखकर वह फूट-फूटकर रोने लगती है। सुशील के शब्द 'अब चलो भी कांता' उसके दर्प को बहा देते हैं। यह होली का रोमांचक अवसर था। 'स्मृतियों का ठहरा पलाश' होली के अवसर पर नंदनी और सुशील के बचपन की स्मृतियों को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करती मार्मिक कहानी है। 'लाड़ी माँ' मातृत्व प्रेम की कहानी है होली के त्योहार के आयोजन के क्रम में एक नि:संतान औरत के मन में अपने पति की पूर्व पत्नी के बेटे जो उसे लाड़ी माँ कहते हैं, के प्रति उत्पन्न पुत्र वत्सलता का मार्मिक चित्रण हुआ है। होली के अवसर पर बेटों के नहीं आने की आश्वस्ति पर कृष्णा निश्चिंत रहती है, किंतु जैसे ही उसे इस बात की सूचना मिलती है कि वे आने वाले हैं, वह तत्परता एवं तन्मयता के साथ तैयारी में जुट जाती है। बेटों के आने की सूचना पर लाड़ी माँ की आतुरता को कथाकार ने पति रतन लाल के प्रश्न ''पर इत्तो सोदो काई सारू ?'' और उसके उत्तर ''छोरा होन अइ रिया है, कुसुम के बाबूजी को छोटो मिल्यो थो। बोल्यो लाड़ी माँ से के दीजो अबार के सब अइ रिया है। पुन्नम की संजा वाली बस से सब अकेठे ही पोंच जाएगा।'' के रूप में अभिव्यक्त किया है। 'फिर से लौटा फागुन' शीर्षक कहानी में दादी की यादों को उसकी पोती नंदनी, उसकी समस्त सहेलियों को बुलाकर होली का मन भावन आयोजन कर लौटा देती है। होलिका जलाने, पलाश के फूलों को उबाल कर केसरिया रंग बनाने, दादी के साथ गाने वाली उसकी सहेलियों सरोज, कृष्णा, नंदा के गान का आयोजन, जिनके साथ दादी का नृत्य; सबका विवरण मनोरंजक है।

पिता की सीख ''जब रिवाज़ खुशियों के मार्ग में रोड़ा बनने लगें, तो रिवाज़ों को छोड़कर ख़ुशियों को थाम ले जाना चाहिए।'' और होली के अवसर पर घर आयी बुआ की समझाइश ''बेटा जीवन तो घटनाओं और दुर्घटनाओं से ही भरा है। लेकिन इन सबके बाद भी छोटी-छोटी खुशियों को जी लेना ही जीवन है। बड़ी-बड़ी खुशियों की प्रतीक्षा करना जीवन नहीं।'' पर नज़रअंदाज़ कर हादसे के बाद होली नहीं मनाने वाली शिखा अपने देवर हेमंत को रंग डालकर होली खेलने की शुरूआत करती है। 'छोटी-छोटी ख़ुशियों के रंग''

शीर्षक कहानी में होली के आयोजन के साथ इसी सत्य को रूपायित किया गया है। 'रुक गया फागुन' में बहू की पहली होली पर सास-बहू के साथ रहने के अपशकुन के मिथक को तोड़ कर बहू रचना अपनी सास के साथ ही रह कर होली मनाती है। वह न केवल अपने देवर को रंग देती है, बल्कि ससुर शिवरतन जी और सास उमा को रंग से तर बतर कर देती है। कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक है ''शिवरतन जी ने उमा की दशा देखी तो ठहाका मार कर हँसने लगे और उमा सीढ़ियों पर ही खिलखिलाकर हँसने लगी। अंदर आँगन में फागुन बरस रहा था और बाहर बरामदे में शिवरतन जी और उमा अपने हिस्से का रुका हुआ फागुन जी रहे थे।''

'पलाश' में होली के दिन ही एक साथ बचपन बिताने वाले पलाश और फाल्गुनी विवाह के संकेतात्मक स्वीकृति देते हैं। 'फूल पलाश के ले आना तुम' शीर्षक कहानी में भी शीला और सुनील के प्रेम का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कहानी के अंत की पंक्तियाँ उनके प्रेम की स्वीकृति के संकेतक हैं ''नीचे देखा तो फाल्गुनी हवाओं के स्पर्श से धीरे-धीरे हिल रही पलाश के फूलों की पंखुड़ियाँ किसी स्वीकृति की ओर इशारा कर रही थीं।'' 'रंगों का मौसम' में होली की रंगीनी के बीच सरिता के हृदय में मौसम के लिए व्याप्त प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु शीघ्र ही वह अपने आपको, यह सोचकर कि जब मौसम अपनी दुनिया में ख़ुश है, तो फिर उसने ये व्यर्थ की उदासी क्यों ओढ़ रखी है। संयत कर ख़ुशियों की दुनिया में लौट आती है। 'उसका फागुन' प्रेम कहानी है। फागुनी मस्ती के बीच प्रिया और सुधीर के अंतरंग प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। 'कोई फागुन वासंती सा' में होली के दिन ही सोमेश से अरुंधति की मुलाक़ात होती है और होली के दिन ही सोमेश अरुंधति से अधिकार माँगने आता है कि ''एक चुटकी गुलाल को वह सिंदूर बनाकर उसे दे दे।'' 'रंगों का रास्ता चंदन का जंगल' प्रेम कहानी है इसमें पूर्वा के लिए वर्षों से अपने हृदय में छिपाए प्रेम को विनय उसके वैधव्य के बावजूद उस पर रंग उड़ेल कर व्यक्त करता है- ''आज छोड़ने नहीं जाऊँगा तुम्हें तुम्हारे घर, तुम्हें ये घर, ये खेत, ये पलाश बहुत अच्छे लगते हैं ना, तो यहीं रहो । आज से ये सब तुम्हारा है।'' कहानी की अंतिम पंक्ति ''सर झुकाए खड़ी पूर्वा अपने सफ़ेद दुपट्टे पर धीरे-धीरे फैल रहे रंगों को देख रही थी।'' पूर्वा के अनबोले प्रेम की स्वीकृति देती है। 'रंग के छींटे' अनुभूतिमयी मार्मिक कहानी है। बचपन में जब लड़का उसे रंग देता है, तो लड़की उसे स्वीकार नहीं करती है, किन्तु अब जब वह उसके रंग को स्वीकार करना चाहती है तो वह उसे रंग देना नहीं चाहता है। क्योंकि अब वह लड़की उसकी अफ़सर हो गई है और लड़का उसका ड्राइवर है। पद और ओहदा प्रेम प्रदर्शन में बाधक बन जाता है। 'उसके हिस्से का प्रेम' अव्यक्त प्रेम की अधूरी कहानी है। अनुभा के लिए प्रेम की मौन अभिव्यक्ति कर उसका विद्यार्थी मालव उसकी अनबूझ उदासीनता के कारण मौत को प्राप्त कर अनुभा के भीतर टीस पैदा कर जाता है। संपूर्ण कहानी प्राकृतिक रमणीयता के विवरण से पूर्ण है। कहानी की शुरूआत प्रकृति चित्रण ''खिड़की के पार आसमान में टँका हुआ चाँद फाल्गुनी पूर्णिमा का ज़र्द, केसरिया भात से भरी थाली के समान चाँद से होती है और अंत भी प्रकृति चित्रण से होता है ''उसके आँसूओं से पलाश के फूल भीगते जा रहे थे और बाहर चंद्रमा उसी प्रकार पृथ्वी से प्रणय कर रहा था।'' 'होली के पाहुन' शीर्षक कहानी में वृंदा और मनोज के बीच के प्रेम का वर्णन है। होली के दिन रंग डालने के कारण मनोज वृंदा को चाँटा मारता है और चार वर्षों के बाद होली के दिन ही उसकी रज़ामंदी पर उससे विवाह की स्वीकृति देता है। मनोज के प्रश्न ''मैं तुम्हें उस समय भी प्रेम करता था और आज भी करता हूँ, लेकिन तुम्हारा निर्णय जानना भी मेरे लिए ज़रूरी है।'' पर वृंदा का उत्तर ''अब होली के मुजरिम को सज़ा तो सुनाई जाएगी.. प्रतीक्षा करिए कल तक।'' उसकी रज़ामंदी ही थी। बीच की घटनाएँ रोमानी और रोमांचक हैं। 'सुधियों का फागुन' शीर्षक कहानी में दो टूटे हुए परिवारों के बीच बहते हुए प्रेम के स्रोत के रूप में देवेश और वसुधा के बचपन के प्रेम को उनके युवा काल में विवाह के बंधन के रूप में परिणित का मार्मिक वर्णन हुआ है। '20 साल बाद' एक प्रेम कहानी है। छाया और गौतम आस-पास के घरों में रहने और साथ-साथ पढ़ने के कारण प्रेम में थे। होली के दिन गौतम नए प्लान के मुताबिक़ नदी के किनारे के रमणीक जंगल में छाया को बुलाता है पर छाया नहीं आती है और वह गुम हो जाता है। बीस वर्षों बाद जबकि छाया का विवाह हो जाता है उसकी गृहस्थी बस जाती है, होली के दिन गौतम का फ़ोन मिलता है। बात होती है पर गौतम मिलने से मना कर देता है। छाया उस पगडंडी को निहारती है, जो बीस वर्षों से उसकी प्रतीक्षा में बिछी है। संकलन की अंतिम कहानी 'रूट कैनाल थैरेपी' शीर्षक कहानी में एक डेंटिस्ट रीमा को उसी के बतलाए प्रोसेस से एक पेशेंट सृजन जीवन की सीख देता है। डॉक्टर किसी के दर्द में अपने जीवन को गमगीन बनाए हुए है। यहाँ तक कि होली का त्योहार भी नहीं मनाती है। सृजन उसे उसी की भाषा में समझाता है ''जो सड़ चुका है उसे निकालना ही पड़ेगा, उसके निकले बिना दर्द ठीक नहीं होगा। सड़े हुए पल्प से दर्द और इन्फ़ेक्शन दोनों का ख़तरा होता है।'' रीना आश्चर्यचकित हो जाती है कि सृजन कितनी आसानी से उसके ही पेशे की फिलॉसफी उसे ही समझा रहा था।

संकलन की कहानियों में होली का हुड़दंग, बसंत की मादकता, फागुन की मस्ती, प्रेम की पीर और गुदगुदी भरी हुई है। प्रकृति की मधुरिमा के बीच फाल्गुनी पूर्णिमा के चाँद की चाँदनी प्रेम की केली-क्रीड़ा करते युवा-युवती की मनोदशा का मनमोहक विवरण पाठक को उसी रम्यता में समेट लेता है। प्रेमी हृदय में उठती प्रेम की पीर को कथाकार ने वाणी नहीं शब्द का रूप दिया है। यहाँ प्रेमी प्रेमिका को कुछ कहना नहीं पड़ता है कथाकार ने प्रकृति के रंग में उपकरणों के माध्यम से सब कुछ कहला दिया है। संकलन की प्राय: सभी कहानियों में प्रकृति का चित्रण हुआ है। यहाँ प्रकृति मानवी क्रिया व्यापार करते दृष्टिगत होती है इस दृष्टि से यहाँ प्रकृति का मानवीकरण हुआ है जो अद्‌भुत है। कहानियों की भाषा में क्षेत्रीय बोली के शब्दों की भरमार है जिससे लोच, रोचकता और आंचलिकता का समावेश हो गया है।

000

केन्द्र में पुस्तक

प्रेम की उम्र के चार पड़ाव

(कविता संग्रह)

समीक्षक :
शैलेन्द्र शरण
नीलिमा शर्मा

लेखक : मनीषा कुलश्रेष्ठ
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी, आनंद नगर, खंडवा
450001 (म.प्र.)
मोबाइल: 9098433544, 8989423676
ईमेल: ss180258@gmail.com

नीलिमा शर्मा
77, टीचर्स कॉलोनी
गोबिंद गढ़,
देहरादून, उत्तराखण्ड 248001
मोबाइल : 8510801365

स्वप्न और यथार्थ के बीच का सच
(शैलेन्द्र शरण)

मनीषा कुलश्रेष्ठ मूलत: श्रेष्ठ कहानीकार और उपन्यासकार हैं। उनके सात कहानी संग्रह तथा पाँच उपन्यास आ चुके हैं। निश्चित ही वे मूर्धन्य साहित्यकार हैं जिनके पास अनेक उपलब्धियाँ हैं। ऐसे में उनके कविता संग्रह की उम्मीद शायद ही की गई हो। उनका पहला कविता संग्रह ''प्रेम की उम्र के चार पड़ाव'' इसी वर्ष शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है, तथा नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में इस संग्रह का लोकार्पण किया गया। कविता संग्रह पढ़ते हुए लगा कि कहानीकार या उपन्यासकार पहले एक नैसर्गिक कवि होता है। इधर-उधर बिखरी संवेदनाओं को समेटना, उन्हें शक्ल देना उसे कविता से ही आता है फिर यहीं से विस्तार पाकर ये गहन संवेदनाएँ, कहानी और उपन्यास गढ़ने लगती हैं।

''प्रेम की उम्र के चार पड़ाव'' कविताओं का ऐसा एक्वेरियम है जिसमें चार तरह की एंजेल फिश हैं। सिल्वर, ग्रीन, ब्लैक, और गोल्डन। जिनका अपना-अपना निराला ही सौन्दर्य हैं। अपने मन में इन मछलियों का ऊपर-नीचे होना, हम बार-बार महसूस करते हैं। इस संग्रह की कविताओं का अनूठापन, सुबह-सुबह सिंदूरी गुलाब पर जमी ओस की बूँद की तरह अनछुआ सा है।

पहले पड़ाव की कविताएँ 1981 से 1991 तक लिखी गईं उनकी वे कविताएँ हैं जिन्हें लेखिका ''थोड़ी कच्ची हैं'' कहती हैं, जबकि ये ऐसी कविताएँ हैं, जो बार-बार पढ़े जाने के लिए पाठक को आमंत्रित करती हैं। पहली ही कविता में जब वे अपने चंचल मन को एक्वेरियम की गोल्ड फिश की उपमा देती हैं, तो लगता है कि यदि ये कविताएँ किशोरवय के आरंभ की हैं, तो बाद की कविताएँ, किस हद तक समृद्ध और असाधारण होंगी ? उनकी इस पड़ाव की कविताएँ कोमल भाव के सुँदर शब्दचित्र हैं, एक उम्र में मन के भीतर होने वाले संघर्ष की सच्ची अनुभूति है। ये कविताएँ प्रेम के अहसास को अभिव्यक्त करती, संकेतों में गहन बातें करती, पीड़ा से उबरकर संयत होती, सघन प्रेम की पीड़ा-जनक प्रस्तुति है। मनीषा कुलश्रेष्ठ जी की कविताएँ बगैर विचलित हुए सीधे शब्दों में निराले ढंग से की गई बातों का इंद्रधनुष हैं। रुदन के रुकने के लिए - बरसात के रुकने का संकेत देना, हथेली की लकीरों को जंगल की पगडंडियाँ कहना, उदासी को पीले फूलों के सदृश्य अभिव्यक्त करना, असाधारण कवि की प्रतिभा वह प्रतिभा है, जो हमें उनके पहले पड़ाव की कविताओं में मिलती हैं।

'मैं ? / उसका कमरा हूँ' कविता के आरंभ के ये मात्र 'चार शब्द' ऐसे हैं जैसे किसी ने मंदिर के घंटे पर चोट की हो और देर तक ध्वनि तरंगें कानों के आस-पास दौड़ लगा रही हों।

एक उम्र छिपने की भी होती है और वही उम्र खुलकर सामने भी आना चाहती है। इस उम्र में मन चाहता है कि कभी ऐसा भी हो कि, जिस्म क़ैद हो और रूह आज़ाद हो, शरीर धरती हो और मन आकाश हो, जड़ें ज़मीन में हों और शाखाएँ हवाओं में हों। एक स्वप्न कि - जिसमें ऊँची इमारत से गिर रहें हों और कोई बीच में आकार थाम ले। उनकी कविता 'कच्चा आँगन' की पंक्तियों में आँगन से संगमरमरी इमारत में पदार्पण के बाद उनकी अनुभूति कुछ इसी तरह व्यक्त होती है।

कविता में छिपकर कहना हो तो उनकी कविता 'इसी मुहाने पर' सर्वथा उपयुक्त

उदाहरण है। इस सर्ग की अधिकतम कविताओं में मनीषा जी का कवि हृदय अधिकतर नदी, पहाड़ और समुद्र की बातें करता है। संघर्ष के, अभिसार के संकेत और आत्मसात हो जाने या कर लेने की ध्वनि इन कविताओं में विभिन्न बिंब और प्रतीकों के माध्यम से जब अभिव्यक्त होती हैं तो विस्मित करती हैं। आध्यात्म, दर्शन, गांभीर्य, जीवन का एक पक्ष है। अधध्यनशीलता उसे किसी भी आयु में पा सकती है। यह वक़्त वह रहा होगा जब मनीषा जी ने ग्रहस्थ रहते हुए वैराग्य को अनुभूत किया होगा। उनकी ''धनंजय'', ''पंचतत्व'', ''गणित'', ''ममीफिकेशन'' कविताएँ यही इंगित करती हैं। दूसरे पड़ाव की कविताएँ कश्मकश से भरी कविताएँ हैं जो मुक्त हृदय से निसृत शब्द की तरह हैं। जिनमें यायावरी की असुरक्षा दर्ज है, जिन्हें मातृत्व का बंधन निरंतर चट्टान में बदल रहा है। ये कविताएँ उच्चाट मन को स्थिर करने के प्रयास में जूझने की कविताएँ हैं।

तीसरे पड़ाव में उनकी 2003 से 2013 तक लिखी गई कविताएँ शामिल है। ये कविताएँ अनुभूति की ऐसी कविताएँ हैं जिसमें वे समग्रता से स्त्रियों की बात करते हुए वे उनका प्रतिनिधित्व करती हैं। 'मैं स्त्री' कविता में वे कहती हैं - ''मैं स्त्री हूँ / सृष्टि के आरम्भ से ही जानती हूँ / अकेले होकर भी / प्रेम का उत्सव मनाना हो तो / इसे कला में ढाल दो।'' उनकी भाषा के पास अटूट शब्द भंडार है। विचारों की अनवरत बहती हुई नदी है जिसमें वे असीमित श्रद्धा के फूल प्रवाहित करते हुए कविताएँ रचती हैं।

उनकी कविताओं में प्रेम अकेला भी है, द्वेत भी और त्रिकोण पर हतप्रभ करता पीड़ादाई प्रेम भी। बेबाकी से कहती हैं कि अपने प्रेम में स्त्री सार्वजनिकता की परवाह नहीं करती, इसका भान पुरुष का भय उसे कराता है। उनकी कविता की अंतिम पंक्तियाँ हैं ''तुम ही हो / जो बार-बार भूल जाती हो / की भई प्रेम अपनी जगह है / और सामाजिक दायरे .....।''

छिन्नमस्ता, अग्निपुष्प, घाव, काली आदि कविताएँ गहन विचार, दर्शन और आध्यात्म मिश्रित नितांत जीवंत कविताएँ हैं। इनकी व्याख्या इसलिए आसान नहीं क्योंकि इनमें शब्द से अधिक अर्थ प्रस्फुटित होते हैं। प्रवास पर लिखी चारों कविताएँ उनकी सच्चाई और साहस की कविताएँ हैं, करुणा से भरी इन कविताओं की अनेक ध्वनियाँ हैं।

प्रेम का चौथा पड़ाव मध्यवय का अनुसंधान है जिसमें सार्थकता के अर्थ बदल चुके होते हैं। मनीषा जी कहती हैं 'इस उम्र में ज़िंदगी के बचे हुए निवालों को खूब चबाकर खाने का मन करता है।' अंतिम पड़ाव की कविताओं में 'फ्रीडा', 'क्लियोपेट्रा', 'सोनचंपा', जैसी पूर्ण परिपक्व कविताएँ हैं जो अंतस से उठी पुकार से संवेदनाओं को छूती हैं और दार्शनिकता से प्रस्तुत होती हैं। 'भगोरिया' शीर्षक से लिखी गईं सात कविताओं में नितांत निष्कपट प्रेम की निश्छल गुहार है। भगोरिया पर बहुत लिखा गया है किंतु ऐसा भोला, सलोना दस्तावेज़ कम ही मिलता है। 'कमल ताल' एक गूढ़ और मस्तिष्क को रौंदती एक तल्ख कविता है। 'चुप्पे दुख' कविता प्रथम और अंतिम सत्य की तरह है।

अंतिम पड़ाव की कविताएँ प्रेम से वैराग्य की ओर जाती कविताएँ हैं जिनमें निर्लिप्त और तटस्थ भाव से प्रेम को देखा गया है। इन कविताओं में कैलाश पर्वत का स्वर्गिक आनंद और मानसरोवर के जल के आचमन का भाव है। 'राग' और 'विराग' कविताएँ उपसंहार की तरह हैं। लगता ही नहीं कि ये कविताएँ किसी श्रेष्ठ कथाकार की कविताएँ हैं। शाश्वत प्रेम की कविताएँ मांसलता से परे होती हैं। इन कविताओं में न प्रेम कवियों की कविताओं सा अतिसालोनपन है और न ही किसी अन्य शीर्ष कवि की कविताओं जैसी मांसलता। मनीषा जी की कविताओं को परिभाषित करना दुरूह कार्य है। अछूते संदर्भ, बिम्ब और प्रतीकों से भरी इन कविताओं को पढ़कर ही भोगा जा सकता है। ये कविताएँ न तो स्वप्न हैं और न ही कटु यथार्थ। ये कविताएँ स्वप्न और यथार्थ के बीच का ऐसा सच है जिसे अनुभूत करना सुखद है। अंत में यही कहा जा सकता है कि मनीषा जी की कविताएँ, प्रेम को पीछे छोड़तीं, प्रेम में रची-बसी, प्रेमानुभूति की अद्भुत कविताएँ हैं जो आँखों की कोर पर बूँद बनकर ठहरती तो हैं किंतु ढलकने नहीं पातीं।

000

स्त्री मन के विभिन्न अनुभव
(नीलिमा शर्मा)

प्यार ढाई अक्षर का शब्द हैं लेकिन इसकी अनुभूति सबको भिन्न-भिन्न होती हैं। सुबह की ओस का चुम्बन करती किशोर उम्र जब इस छुवन को महसूस करती है तो अलग भाव प्रस्फुटित होते हैं। कमसिन उम्र के सूरज का ताप जब चढ़ता जाता है, प्रेम का पड़ाव और सोच का अहसास भी बदलता जाता है। प्रेम के इस पड़ाव पर उम्र ओस से तृप्त नहीं होती बल्कि घूँट भर प्रेम चाहिए होता है। अपने भीतर पर प्रेम को महसूस करती मन की तरंगें समुन्दर के ज्वार-भाटा सी ज़िद्दी भावों के उतार-चढ़ाव को महसूस करती हैं। फिर मन इस प्रेम समंदर को अंदर उतार कर डूब जाना चाहता है और तब अगले चरम पड़ाव को पा जाता है। इन्हीं प्रेम लहरों पर उतरते-डूबते मन के कोने उस स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ प्रेम एक अनुभूति बन जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति भी सम्भव नही होती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ आज साहित्य जगत् का प्रतिष्ठित नाम हैं। उनके सात कहानी संग्रह कठपुतलियाँ, कुछ भी तो रूमानी नहीं, बौनी होती परछाँई, केयर ऑफ़ स्वात घाटी, गंधर्वगाथा, अनामा, रंगरूप-रसगंध तथा पाँच उपन्यास शिगाफ़, शालभंजिका, पंचकन्या, स्वप्नपॉश, मल्लिका आ चुके हैं। उन्होंने माया एंजलू की आत्मकथा वाय केज्ड बर्ड, लातिन अमरिकी लेखक मामाडे के उपन्यास हाउस मेड ऑफ़ डॉन तथा बोर्हेस की कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। कला में भी उनकी एक पुस्तक बिरजू लय प्रकाशित हो चुकी है। मनीषा शब्दों और भावों की जादूगर हैं। जिस भी विषय का चुनाव लेखन के लिए करती हैं, खुद तो उसमें डूब कर लिखती ही हैं अपने पाठको को भी दुनिया की सुध-बुध भुलाकर उसी दुनिया का हिस्सा बना देती हैं।

इस बरस मनीषा की कविताओं की एक किताब 'प्रेम की उम्र के चार पड़ाव' शिवना प्रकाशन से आई है। प्रेम में गुलाबी होना आपने सुना ही होगा, यहाँ तो किताब भी गुलाबी है और उस पर अंकित मनीषा की छवि भी गुलाबी और कविताओं को पढ़ते

पढ़ते कोई भी पाठक भावों की अनुभूति से सराबोर हो उठेगा। इस संग्रह का नाम 'प्रेम की उम्र के चार पड़ाव' है, यह स्त्री के जीवन में उम्र के चार अलग-अलग पड़ावों पर आने वाले प्रेम की कविताएँ हैं। संग्रह में भी चारों पड़ावों की कविताओं को चार अलग-अलग खंडों में रखा गया है। इस तरह का प्रयोग संभवत: हिन्दी कविता में पहली बार किया गया प्रतीत होता है।

मनीषा ने इस पुस्तक को उस भाव को समर्पित किया जिसके साथ वो एक उम्र नहीं अनेक उम्र गुज़ारना चाहती हैं। प्रेम को आशान्वित करती हैं कि मैं न रहूँ तो भी फिर से तुम्हारे लिए जन्म लूँगी। पुस्तक की पहली ही कविता, जो उनके किशोर मन से लिखी कविता है बताती है कि उनका मन कितना मासूम हैं। उनकी उम्र गोल्ड फिश की तरह मरीचिका से चकाचौंध होती है। यह कच्ची उम्र की कविताएँ हैं जो परिपक्वता से अपनी बात कहती हैं।

एन फ्रैंक डायरी पढ़ती लड़की खुद को उसी अवतार में खोया हुआ पाती है और लिख देती है एक कविता। कभी अँधेरी रातों को ड्रैगन से बतियाती और कभी नदी से रू-ब-रू संवाद करती कवियत्री अपने मन को जब तन्हाई में देखती है तो कह उठती है-

कल हम / जुड़े थे / तो हमारे साथ जुड़ा था / एक पूरा मेला / आज हम अलग हुए हैं तो / दर्द का एक पूरा रेगिस्तान सुलगता है/ कोई परिंदा भी पर नहीं मारता हैं

मन की ज़िद्दी लड़की कविता में चिहुँक उठती है कि हम नींद की नदी पार करके सपनों के जंगल में भाग जाएँगे /

लेकिन अपनी कच्ची उम्र की तरह डरती भी है.. न जाने कौन सी अनहोनी बात होनी है / जिसके लिए मेरा हृदय बुरी तरह धडक रहा है /

अपने घर के अकेले कोने में कच्ची उम्र की लड़की जब दीवारों की तरफ देखती है तो हर कोने हिस्से में एक कहानी बुन देती है। अपने कमरे से अलविदा कहने से पहले वो अपनी दीवानगी को भीतर समेट लेना भी चाहती है। हर कविता प्रेम की कच्ची, सौंधी ख़ुशबू लिए किसी अनजाने से बात करती नज़र आती है। उस उम्र की कहानी ही ऐसी होती है कि कोई नहीं होता फिर भी ख़्याल भरे रहते हैं किसी की अनजानी आहट से।

मनीषा की कविताओं में वही आहट नज़र आती हैं जो एक षोडशी की धड़कनों में संगीत की तरह गुंजित होती हैं। किताबी कीड़ा सी वो लड़की कभी प्रेम को तिकोना होने से बचाना चाहती है तो कभी अमलतास के नीचे बैठ पीले सुनहरे सपने बुनती है। प्रेम का स्वाद न जानते हुए भी उसको चखने को आतुर वो लड़की पहले प्यार के तिलिस्म को जानना चाहती है और चुपके, चोरी-छिपे के स्कूटर राइड से ही आह्लादित हो उठती है।

इस पहले पड़ाव की कविताओं से आज की उम्र की लड़की शायद खुद जोड़ न सके। लेकिन परिपक्व उम्र को जब इन कविताओं से गुज़रना होगा तब उसको अपना समय अवश्य याद आएगा जब प्रेम एक वर्जित फल होता था और चुपके-चुपके उस फल को खाने की कोशिश भरी दोपहर में अमलतास गुलमोहर के तले की हवा सी महसूस होती है..। आज के एयर कंडीशन वाले इस अमलतास की हवा को भी महसूस कर सकेंगे, यह इन कविताओं की शक्ति है।

मनीषा को तस्वीरों में षोडशी से जब युवा उम्र की तरफ़ देखा तो कविताओं में भी उनका वो एक ज़िद्दी अक्स अब मुलायम सा, मासूम सा बन गया। जिसके सामने एक खुला बुग्याल है जहाँ वो मन की उमंगों तरंगों के साथ लुकाछिपी खेलती है, तो कहीं-कहीं बुग्याल थार से नज़र आने लगते हैं। गुलाबी सी लड़की तब चुपके से आँसू बहाती है, लेकिन जो आँसू पलकों की झालर पर अटके ही रहते हैं, उनको गालों पर लुढ़का कर कमज़ोर नहीं बनती है। अपने स्वप्निल प्यार का चेहरा सपनों में देखती लड़की अपने मन के कच्चे आँगन में जब सपने सँजोती, बोती है, तो वो आँगन कभी-कभी पथरीला भी हो जाता है। पहले बाहुपाश का अलौकिक भाव कच्चे आँगन में ऐसे उतरता है कि जैसे सामने ही घटित हो रहा है और खुल रहा है गुलाबी लड़की का मन। उस आलिंगन को कितने प्यारे शब्दों में बयाँ करती है वो लड़की .....

पकते हुए गेहूँ के खेतों से/गुज़र कर आई हूँ मैं/ कच्ची-पक्की सी महक/ बस गई हैं देह में / रात जब समेटा था तुमने / बिखरी सुनहरी रेत सा /

सिर्फ अपने मन की नहीं उस काल्पनिक राजकुमार की भी मन की बात कहती है..

रात तुम उफनी थी उस मुहाने पर आ / जहाँ प्रकृति मिलाती है तुम्हें मुझसे /मैं हत्प्रभ सा समेटता रहा तुम्हें / नदी हो तुम

नदी है यह कविताओं वाली गुलाबी लड़की जो समय के साथ लगातार बह रही है। मंज़िल नहीं मालूम लेकिन लगातार प्रवाहमयी, किनारों को बाँहों में थामने को आतुर, प्रतीक्षारत सी स्त्री बन जाती है, जो जानती है स्त्री यक़ीनों का क्या है- / पुरुष चाह कर भी कई बार/ उन यक़ीनो को बचा नहीं पता / क्योंकि उसको खुद को /मर्द साबित करना होता है / इस यक़ीन को साबुत बचाते-बचाते /कभी-कभी टूट जाते हैं दोनों के यक़ीं

शक/ अबोला/ गणित /पतंग /डाह / अनेक ऐसे छोटी छोटी कविताओं से गुज़रते महसूस होता हैं कि स्त्री का मन एक सुरंग है, उसकी थाह पाना बहुत मुश्किल है। कितने भाव भरे होते हैं उसके भीतर और हर बार अपने भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए अलग तरह की उपमाओं और बिंबों का प्रयोग एक सिद्धहस्त कलम ही कर सकती है।

दूसरे पड़ाव की एक प्रेम कविता माँ और पत्नी होने के बीच पढ़कर हृदय ने एक आह भरी तो अगले ही पन्ने पर माँ कविता ने गागर में सागर सी बात कह दी

यूँ तो माँ का जीवन एक किताब थी / पन्ना दर पन्ना /मैं उन पन्नों की क्रम संख्या सी /उनके साथ / फिर क्यूँ उसे पलटने से पहले / बहुत पहले /मन दर्द से पक जाता है / उँगलियाँ अशक्त ../

हर स्त्री का मन सुनहरी फ़र्न का जीवाश्म कविता से अनायास ही जुड़ाव महसूस करने लगेगा। इस पड़ाव की कविताओं में मनीषा के मन की स्त्री कहीं बेचैनी से भरी है, तो कहीं दार्शनिकता का पुट लिए हुए है। परिपक्वता को कदम बढ़ाता उम्र का यह पड़ाव कहीं आतुर दिखता, तो कहीं खुद को समेटता हुआ। इस उम्र में सभी के साथ यही भावोनुभूति रहती है।

हर स्त्री इन कविताओं के भाव से खुद

को जोड़ सकेगी। इन कविताओं से मनीषा का अलग रूप देखने को मिलता है। कहाँ कठपुतली वाली मनीषा , कहाँ लापता पीली तितली वाली मनीषा, तो कहाँ मल्लिका मनीषा। यहाँ कहीं ज़िद्दी भावुक सी मनीषा.. मनीषा की ख़ासियत ही है कि जब वो खुद चरित्र में उतर जाती है तब उस चरित्र को जीती हैं... मनीषा इन कविताओं में हर आम स्त्री सी दिखती हैं। कहीं उनका मनीषा दि मल्लिका होना परिलक्षित नहीं होता दिखता हैं।

समाज की साँकलों से एक स्त्री का बँधा मन उम्र के तीसरे पड़ाव तक आकर आत्मविश्वासी हो उठता है। अपने भावों को संयमित रखना, अपने फ़ैसलों पर गर्व करना उसको बखूबी आ जाता है। इस उम्र की स्त्री के लिए प्रेम का उजास एक अलग ही सुनहरा रंग लिए आता है। अब वो ओस का चुम्बन लेकर तृप्त नहीं होती प्रेम के समंदर में तरंगों के साथ गाती रोती स्त्री को देख अलग ही अनुभूति होती है।

बहुत कुछ ... छोड़ गयी थी वो / अतरंग कविता से गुज़रते हुए जब देह भाषा और सुर्खरू कविता पढ़ते हैं तो बिम्बों की जादुई दुनिया से परिचय होता है / इतनी सुंदर भाषा से ज्यामिति कविता के माध्यम से रिश्तों को परिभाषित करती स्त्री छिन्नमस्ता बन जाती है।

घाव कविता दर्द को परिभाषित करती है तो लम्बी कविता काली एक स्त्री के होने की यात्रा को बयान करती है। देवी काली कैसे एक लड़की को उसके भयों से विजयी बनाती हैं। सुंदर भाषा और अलंकारों से सजी कविता मेरी प्रिय कविता बन गई है / प्रवास चाहे वेनिस का रहा या फ्रंकफ़र्ट का या फ्लोरेंस का एक स्त्रीमन की कलम की खूबसूरत बयानी है।

कविताओं के विभिन्न भावों की बारिश में भीगती जब मैं अंतिम पड़ाव की कविताओं तक पहुँची तो मनीषा के भाषा कौशल का लोहा मान चुकी थी ... मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी गो कार्ट पर सवार हूँ जिसमें मुझे अलग लेवल तक जाना है। चाहे तो किसी भी एक पड़ाव के बाद वापिस लौटा जा सकता है। लेकिन भावों की बरसात कभी बूँद-बूँद बरसती है तो कभी मूसलाधार भिगोती है फिर रिम झिम झड़ी लग जाती और मन उदासी और सोचने की अवस्था में खुद ही विचरण करने लगता है..। पीछे पलट कर देखने की भी एक उम्र होती है। यह तो सामने दिखते रास्तों का निरीक्षण करती मन की कश्ती अपने मन पर एक रंगीन छतरी थामे भावों के गहरे समंदर में उतरने को खुद को तैयार कर लेती है।

उम्र के इस पड़ाव की पहली कविता कैलेंडर जीवन के शाश्वत सत्य को बताती है, तो अतीत के जंगल बार-बार पुकारते हैं। मुग्ध कर जाती कविता स्मृति वन बहुत प्रभावशाली बन उठी है /बेचैन स्त्री मन कभी फरीदा तो कभी क्लियोपैट्रा बन कर प्रेमातुर हो उठता है, तो कभी आदिवासी सोनचम्पा से उठती एक आदिम गंध मदमस्त करती है।

मेले जीवन का उत्सव हैं भगोरिया मेले में कविता को भीतर तक अपनी कोख में पोषित कर उन कविताओं को जब जन्म दिया तो जैसे मेला सामने जीवंत हो उठा।

कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी कविताओं का हिस्सा हैं जो मुख़्तसर सी हो उठती हैं-

तुम्हारी देह वह एकमात्र सभ्यता है जिसे मैंने जाना और जिया है क्या?

चुप्पियाँ कविता वास्तव में मन के कोलाहल को शांत करने का प्रयास करती प्रतीत होती है -चुप्पियों के साथ बहुत कुछ खत्म हो जाता है, तो चुप्पियों के साथ बहुत कुछ शुरू भी होता है।

झूठ न बोल पाने पर कौशल है / सच की किरचों सी पैर में बिंध जाती हैं चुप्पियाँ /उम्र जी ली अल्हड़ सच बोलते-बोलते तुमने / अब धार लो व्यवहारिकता के / नफे नुक्सान की चुप्पियाँ /

चाय के मग से बात करती कविता हो या कमल ताल पर विचरण करती कविता / चुप्पे दु:ख हो या आराध्य, इनकी भाषा अपना ऐसा गहन प्रभाव छोड़ती है कि मन बिंधा रह जाता है। कैलाश यात्रा की कविताएँ मन्त्र मुग्ध करती हैं।

नदी, सागर, अमलतास ,सूर्य और पतंग पर लिखी कविताएँ हैं तो साथ-साथ इन कविताओं में कच्चा आँगन भी है, पहली स्कूटर राइड भी, नींद की नदी के पार भी है तो डाह भी / अग्निपुष्प भी है और शतुरमुर्ग भी है, यहाँ चाय का दिन भी है और आदिवासी लडकियाँ भी हैं तो फुसफुसाती हुई चुप्पियाँ हैं और पुलकित रोमांचित करती मानसरोवर की यात्राएँ और इन सबके बीच प्रेम करता हुआ एक मन तपते ज्येष्ठ में प्रेम को दो रंग राग / विराग भी है। सबसे बड़ी बात यह कि इन कविताओं में उम्र के अलग-अलग मौसम का एक रंग भी है, उन रंगों की आभा से बने इन्दरधनुष से जो आलोकिक दृश्य बनता है, वो विस्मित करता है।

संग्रह की कविताओं में एक स्त्री मन के विभिन्न अनुभवों के साथ-साथ प्राकृतिक दुनिया के अलग-अलग रंगों के बिंब हैं। कहीं विद्रोह करने को आतुर और कहीं सच को सँवारते बिंब कविता में धीरे-धीरे रिमझिम बरसात से बरसते हैं और फिर तेज़ बरस कर हुई एक काव्यात्मक अनुभूति से तृप्त करते हैं। कविताओं में निहित प्रश्न, संवाद, आश्चर्य-विस्मय और भावों का सूक्ष्म वर्णन उन्हें बार-बार पढ़ने और सोचने पर मजबूर करता है। भाषा का सौन्दर्य, प्रकृति का चित्रण, सामाजिक परिवेश, उम्र का कौतुहल आत्मसंवाद, प्रकृति से आत्मालाप, सामाजिक परिवेश का चित्रण समन्वित हैं। संवेदनाओं से भरपूर यह कविताएँ मनीषा के अलग ही रूप का बोध कराती हैं।

अभी तक मनीषा के लिखे को पढ़ते आए पाठक इस संग्रह के बाद जान सकेंगे कि मनीषा इतना काव्यात्मक गद्य कैसे गढ़ लेती हैं। विषयों का गहनता से चुनाव और उस पर सूक्ष्मता से खोजकर अपनी कलम से शब्दचित्र सा उपस्थित करना हर किसी के बूते में नहीं। मनीषा जी को कविताओं के लिए बधाई। इस पुस्तक में छोटी-बड़ी कुल 80 कविताओं का समावेश है। आप निरी रूमानी कविताएँ पढ़ना चाहते हैं, तो यह किताब आपके लिए नहीं है; लेकिन अगर आप प्रेम के अलग-अलग स्वरूपों को पढ़ना चाहते हैं, तो यह पुस्तक आपको पसंद आएगी। अलग मन स्थिति में और समय में लिखी यह कविताएँ अलग-अलग रंग की कविताएँ हैं और इन कविताओं को मुक्त छंद विधा में लिखा गया हैं। शिवना प्रकाशन से आई इस कॉफ़ी टेबल बुक का आवरण पृष्ठ और आकार बहुत सुंदर और आकर्षक है।

000

केन्द्र में पुस्तक

प्रवास में आसपास

(कहानी संग्रह)

समीक्षक :
नीलोत्पल रमेश
दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. हंसा दीप
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी - ए,
जिला-हजारीबाग, झारखण्ड- 829108,
मोबाइल : 9931117537, 8709791120
ईमेल : neelotpalramesh@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल : 9425067036
ईमेल: deepakgirkar2016@gmail.com

मानवीय सरोकारों की कहानियाँ
(नीलोत्पल रमेश)

''प्रवास में आसपास'' डॉ. हंसा दीप का दूसरा कहानी संग्रह है। इसके पहले एक कहानी संग्रह ''चश्मे अपने-अपने'' तथा दो उपन्यास ''कुबेर'' व ''बंद मुट्ठी'' प्रकाशित हो चुके हैं। इन रचनाओं में कथा-लेखिका हंसा दीप प्रवास में रहते हुए भी अपनी ज़मीन से जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि हंसा दीप की कहानियाँ छोटी होते हुए भी पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। पाठकों को कथा-रस का भरपूर आनंद मिल जाता है इनकी कहानियों से।

डॉ. हंसा दीप प्रवासी भारतीय लेखिका हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में भारतीय परिवेश और प्रवासी जीवन का ताना-बाना बहुत ही बारीकी से बुना है। लेखिका के सामने एक ओर अपना देश है, यहाँ की आबोहवा है, रहन-सहन है और यहाँ के लोग हैं तो दूसरी तरफ जहाँ वे रह रही हैं वहाँ का वातावरण, परिवेश, कार्यस्थल और वहाँ की दैनिक-चर्या भी है जो इनकी कहानियों में इस प्रकार रच बस गए हैं कि भेद कर पाना मुश्किल हो जाता है। रचनाकार जब रचना की प्रक्रिया में होता है तो वह अपने परिवेश को ही जीता है। उसने जो कुछ अनुभव किया है, जो कुछ देखा है, जो कुछ एहसास किया है उसे ही अपनी रचना का विषय बनाता है, तब जाकर रचना तैयार होती है।

प्रवास में आसपास में पंद्रह कहानियाँ हैं। इन कहानियों के माध्यम से लेखिका ने अपने जीवानुभव को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। डॉ. हंसा दीप ने अपनी बात में स्वीकार किया है कि ये कहानियाँ हमने कहाँ से ली हैं। किन परिस्थितियों ने इन्हें लिखने के लिए विवश किया। वे लिखती हैं - ''अपने ही देश भारत में अब मैं प्रवासी हूँ। घर छोड़ देने से घर तो बदल जाता है लेकिन दिल तो बस दिल है, वह कहाँ बदल पाता है! कहाँ समझता है वासी और प्रवासी का अंतर! पोहे और जलेबी से हुई सुबह की शुरूआत असली मायने में जो तृप्ति दे जाती है वह किसी कॉन्टीनेंटल ब्रेकफास्ट का मुकाबला नहीं कर पाती। पास्ता बनाकर भी देसी तड़का न दें तो फिर हमें खाने का मज़ा ही न आए।

बस यही होता है कलम के साथ भी जो इतनी ज़िद्दी हो जाती है कि बार-बार अपने देश के चक्कर लगा कर आती है। इसीलिए विदेशी धरती पर लिखी गई ये कहानियाँ देसी महक से सराबोर हैं। लिखते हुए मन की उड़ान वहीं तक चली जाती है जहाँ से वह पहली उड़ान भरी थी, एक प्रवासी पक्षी की तरह जो लौटकर अपने घर ज़रूर आता है। काग़ज़ पर उतरते शब्द अपनी जड़ों की स्याही लिए हुए ही रहते हैं। शायद यही वजह है कि प्रवासी जनजीवन की प्रवृत्तियों में एकमेक होकर भी इन कहानियों के अधिकांश पात्रों में भारतीयता यत्र-तत्र बसी हुई है।''

''हरा पत्ता पीला पत्ता'' कहानी एक प्रसिद्ध कॉर्डियोलॉजिस्ट डॉ. एडम मिलर की है

जिसमें लेखिका ने उनके वैभव के दिनों को याद किया है। जिनके पास मरीज़ पहुँच जाने भर से अपने को नए जीवन पा लेने का अनुभव कर लेता। समय की गति ने उन्हें बुढ़ापे की दहलीज़ पर ला दिया। तब उनकी बेबसी, लाचारी और एकाकीपन खलने लगते हैं। वे अपनों के साथ समय बिताने के लिए तरस जाते हैं। उनका शरीर, शरीर न रह गया है बल्कि एक कंकाल का रूप ले लिया है। ऐसी परिस्थिति में उनका एक-एक पल गुज़ारना मुश्किल हो गया था कि उन्हें पड़ोस से एक बच्चे की माँ ने अपने बच्चे को उनके पास छोड़ने का प्रस्ताव दिया। बच्चा किसी को आसपास पाकर रोता नहीं था। वह सिर्फ अकेलेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाता था। अब दोनों को एक दूसरे के साथ ने नया जीवन दे दिया। इस प्रकार लेखिका ने लिखा है - ''हरे पत्ते और पीले पत्ते की जुगलबंदी ने एक नए रंग को जन्म दे दिया था जो सिर्फ खुशियों का रंग था, एक अपनी हरीतिमा पर खुश और एक अपनी पीलिमा पर।'' यह कहानी पीढ़ियों के अंतराल को भी अभिव्यक्त करने में सफल हुई है।

''एक मर्द एक औरत'' कहानी समाज के कुचक्रों का पर्दाफाश करती है। एक खुशहाल परिवार को पड़ोसियों की कानाफूसी ने ज्वालामुखी के मुहाने पर ला दिया था। एक पिता ने अपने बेटे यश को पालने में, पढ़ाने-लिखाने में, उसे इस मुकाम पर लाने में, माँ-बाप दोनों का प्यार दिया था। बेटे की शादी के बाद ऐसी खुशहाली आई कि पिता की सारी दुश्चिंताएँ दूर हो गईं। पिता और बहू की दिनचर्या हँसी-खुशी गुज़र रही थी कि यश ने ऑफिस से आकर घर में भूचाल ला दिया था, सुनी-सुनाई बातों के आधार पर। तब पिता और उसकी पत्नी सिया दोनों सकते में आ गए थे। अंततः बेटे की सूझबूझ ने इस टूटते परिवार को बचा लिया। यह कहानी पड़ोसियों की जलन को बेनकाब करती है। एक जगह लेखिका ने लिखा है - ''शायद लोग अपनी दबी हवस को यहाँ निकाल रहे थे। अपनी कामुकता को किसी और पर थोप रहे थे। अपनी दमित वासनाओं को उजागर करने का माध्यम उन्हें बनाया गया था। उनकी ग़लती सिर्फ इतनी थी कि वे एक मर्द थे और सिया की ग़लती यह थी कि वह एक औरत थी।''

''बड़ों की दुनिया'' कहानी के माध्यम से लेखिका ने माता-पिता के द्वारा बच्चों पर थोपे जा रहे काम की ओर ध्यान दिलाया है। बच्चे अपने मन माफ़िक काम चुनना चाहते हैं पर माता-पिता उन्हें कुछ और ही बनाना चाहते हैं। इस कहानी में परी अपनी पसंद के कई कामों को चुनती है पर उसके परिजन उसे करने की स्वीकृति नहीं देते। बच्चों के अंदर कुछ करने की भावना जब जन्म लेने लगे, तो उसे सहारे की आवश्यकता पड़ती है। नहीं तो बच्चा कहीं का नहीं रह जाता है। उसके अंदर की क्रियाशीलता मर जाएगी फिर ये मिट्टी के खिलौने ही बन कर रह जाएँगे। हंसा दीप ने इस कहानी में बड़ों की दुनिया से अलग बच्चों की दुनिया की ओर ध्यान दिलाया है। उन्होंने परिवार के सदस्यों को सहयोग करने की आवश्यकता पर बल दिया है। ताकि बच्चे आत्मनिर्भर हो सकें तभी बचपन में पड़े बीज बड़े होने पर विशाल पेड़ का रूप ले सकेंगे।

''भिड़त'' कहानी में कैंसर से जंग लड़ रही एक माँ की मार्मिक कहानी को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। यह भिड़ंत एक बेटी का भी है जो डॉक्टर होते हुए भी लोगों की परवाह किए बिना अपने मिशन में लगी रहती है और अंततः उसे इसमें सफलता भी मिलती है। जीवन में पग-पग पर भिड़ंत है। समस्याओं से जूझना ही जीवन है। ये जीवन में आगे बढ़ने में सहयोग करते हैं।

''वह सुबह कुछ और थी'' के माध्यम से लेखिका ने ऑफिस की कार्यशैली को बारीकी से उजागर किया है जहाँ एक-दूसरे के रिश्ते को लेकर टीका-टिप्पणी का बाज़ार गर्म रहता है। उसमें भी एक महिला शामिल हो जाए तो ऑफ़िस की चर्चा उसी के आसपास घूमने लगती है। फिर बॉस का स्नेह और कृपा दृष्टि मिल जाए तो कहना ही क्या!

अगली कहानी ''उसकी औक़ात'' विश्वविद्यालयों में विभागों की स्थिति को लेकर लिखी गई है। इसमें किसी विभाग के विभागाध्यक्ष के लिए चल रहे कुचक्रों का वर्णन किया गया है। मिस्टर कार्लोस और मिस हैली के बीच सब कुछ ठीक-ठाक नहीं चल रहा है। यही कारण है कि विश्वविद्यालयीन कार्यशैली हमेशा से संदेह के घेरे में रही है। यह कहानी इसी को व्याख्यायित करती है।

''रुतबा'' कहानी के द्वारा बच्चों की छुट्टी के दिनों की कार्य पद्धति को लेखिका ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इशु और मनु छुट्टी का उपयोग करना बेहतर ढंग से जानते हैं। छुट्टी का होना बच्चों के माता-पिता के लिए आफ़त लेकर आता है। यही कारण है कि माता-पिता को नौकरी पेशा होने के कारण बच्चों की देखभाल के लिए दोनों में से एक को रुकना पड़ता है। इसमें बड़े बच्चे द्वारा छोटे पर अपना रुतबा जमाने को लेकर बाल-मनोविज्ञान बहुत अच्छी तरह से उभर कर आता है। इस कहानी में बदलते पारिवारिक माहौल को चित्रित करने में लेखिका को पूरी सफलता मिली है।

''ऊँचाइयाँ'' कहानी में लेखिका ने डॉ. आशी अस्थाना के बहाने नारी की स्थिति का वर्णन किया है। आशी अपनी कार्यशैली से घर में और घर के बाहर जो स्थिति उत्पन्न करती है उससे उसे ऊँचाइयाँ तो प्राप्त हो जाती हैं लेकिन अपने बेटे अलंकार के एक कथन ने उन्हें झकझोर कर रख दिया कि वह किसी लड़की से शादी नहीं करेगा बल्कि किसी लड़के से करेगा। क्योंकि वह बचपन से अपने घर का माहौल देख रहा था, इसी का परिणाम था कि आशी दबंग होते हुए भी अपने ही जाल में उलझ कर रह जाती है। आशी एक नेता और नारी दोनों रूपों में ऊँचाइयाँ प्राप्त कर लेती हैं लेकिन घर का माहौल सब कुछ ठीकठाक नहीं था। इन सारी स्थितियों को अलंकार बचपन से युवा होने तक देखता आ रहा था। यही कारण है कि आशी को जो ऊँचाइयाँ प्राप्त होती हैं वे मकड़ी के जाले की तरह हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने ही जाले में उलझकर रह जाती है, उसी प्रकार आशी भी अपने पारिवारिक जाले में उलझकर रह जाती है। उसकी सारी ऊँचाइयाँ एकाएक धराशायी हो जाती हैं। कहानी में लेखिका को आशी के चरित्र के सभी पहलुओं को उजागर करने में पूरी सफलता मिली है।

''मधुमक्खी'' कहानी बेबीसिटर हेज़ल की कहानी है। हेज़ल का स्वभाव मधुमक्खी की तरह है जो अपने छत्ते से

जीवनभर मधु लेकर मिठास का अनुभव करती हैं। वह उस मिठास से दूर रहना नहीं चाहती है। उसी प्रकार हेज़ल भी बेबी सिटर का काम करते हुए दूसरे घर की बुराई करके वर्तमान घर में पूरी सहानुभूति पाना सीख गई है। उसमें बेबी सिटर के सारे गुण विद्यमान हैं। इसी गुण के सहारे वह एक के बाद एक घर में काम करते हुए दूसरे घर की शिकायत करके वर्तमान घर में सहानुभूति पा लेती है। सोमी जब हेज़ल की कहानी जान लेती है तो उसकी मधुमक्खी से तुलना करती है। बेबी सिटर का काम बच्चे की देखभाल करना है। यह काम वह महिला करती है जो इस काम में निपुण होती है। मधुमक्खी के सहारे लेखिका ने बच्चों की देखभाल करने वाली महिलाओं की चालाकियों को बताया है कि वह सहानुभूति पाने के लिए पूर्व के घरों की शिकायत करती है।

''फालतू कोना'' में लेखिका ने पारिवारिक रिश्तों के भयानक चेहरे को उजागर किया है। छोटी-सी ग़लती सब कुछ तहस-नहस कर देती है। मानवीय सरोकारों को बहुत मार्मिक ढंग से यह कहानी पाठकों के सामने रखती है। इसके अतिरिक्त ''मुझसे कहकर तो जाते'', ''अपने मोर्चे पर'', ''एक खेल अटकलों का'', ''अंततोगत्वा'' और ''रोपित होता पल'' कहानियाँ हैं जो अपने उद्देश्य में सफल हैं। हंसा दीप ने इन कहानियों के माध्यम से समाज को जो संदेश देना चाहा है, उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। हमारे आसपास की छोटी-छोटी चीज़ों को लेकर लेखिका ने इन कहानियों की रचना की है। ये कहानियाँ पाठकों को पूरी तरह संतुष्ट करने में सफल हैं।

हंसा दीप की कहानियाँ मानवीय सरोकारों की कहानियाँ हैं जिसमें प्रवासी वातावरण और भारतीयता अच्छी तरह वर्णित हुई हैं। ये छोटी-छोटी कहानियाँ पाठकों को अंत तक आते-आते झकझोर कर रख देती हैं। पाठक इन कहानियों को पढ़ने के बाद एक प्रकार की आत्मसंतुष्टि पाता है। प्रुफ की ग़लतियाँ नहीं हैं। छपाई साफ-सुथरी और आकर्षक है। लेखिका हंसा दीप से ऐसी ही बेहतरीन कहानियों की अपेक्षा रहेगी।

000

पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी
(दीपक गिरकर)

''प्रवास में आसपास'' सुपरिचित प्रवासी कथाकार डॉ. हंसा दीप का दूसरा कहानी संग्रह है। डॉ. हंसा दीप टोरंटो में कई वर्षों से रह रही हैं। वे अमेरिकी-कनाडा संस्कृति से अच्छी तरह से परिचित होने के बावजूद अपनी भारतीय संस्कृति तथा भारतीय रीति-रिवाज़ों को नहीं भूली हैं। भारत के मेघनगर (जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश) में जन्मीं डॉ. हंसा दीप भारत में भोपाल विश्वविद्यालय और विक्रम विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक, न्यूयार्क, अमेरिका की कुछ संस्थाओं में हिंदी शिक्षण, यॉर्क विश्वविद्यालय टोरंटो में हिंदी कोर्स डायरेक्टर का कार्य करने के पश्चात वर्तमान में यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत हैं। हंसा जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। हंसा जी की प्रमुख रचनाओं में बंद मुट्ठी, कुबेर (उपन्यास), चश्मे अपने-अपने (कहानी संग्रह), बारह चर्चित कहानियाँ (साझा संग्रह), बंद मुट्ठी उपन्यास गुजराती भाषा में और कुछ कहानियाँ मराठी में अनुदित, कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिन्दी छात्रों के लिए अंग्रेज़ी-हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों के कई संस्करण शामिल हैं। हंसा जी की कहानियों में आधुनिकता का बोध है। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। इस कहानी संग्रह की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से सुप्रसिद्ध कथाकार व कथाबिंब की सम्पादक मंजुश्री ने लिखी है। मंजुश्री ने भूमिका में लिखा है ''अलग-अलग विषयों को लेकर लिखी गईं संग्रह की पंद्रह कहानियों में सामाजिक सरोकारों का दायरा काफी विस्तृत हुआ है। उनके पात्र आसपास की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से संबंध रखते हैं और कथानक का ताना-बाना बुनते समय उसे स्वयं जीते हैं। वे निरे अपने लगते हैं और कहानी पढ़ते समय पाठक उनमें अपने आप को देखने लगता है।''

लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती हैं। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। डॉ. हंसा दीप एक ऐसी कथाकार हैं जो मानवीय स्थितियों और संबंधों को यथार्थ की कलम से उकेरती हैं और वे भावनाओं को गढ़ना जानती हैं। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी 15 कहानियाँ हैं। ये जीवन के 15 रंग हैं। हंसा जी की कहानियों में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है। इस कहानी संग्रह की कहानियों में महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, अकेलेपन से उबरते वृद्ध, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, रिश्तेदारों की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, मालिक को चूसने की नायाब तरकीब, बाल मनोविज्ञान, समयानुसार बदलते सामाजिक रंग, माँ की कोमल भावनाओं, पूजा-पाठ का व्यावसायीकरण आदि का चित्रण मिलता है। इस संकलन की कुछ कहानियों हरा पत्ता पीला पत्ता, वह सुबह कुछ और थी, उसकी औक़ात, रुतबा, बड़ों की दुनिया में, मुझसे कहकर जाते, अंततोगत्वा, भिड़ंत, एक खेल अटकलों का, मधुमखी व रोपित होता पल में विदेशी झलक दिखती हैं, लेकिन इस पुस्तक की सभी कहानियाँ देसी महक से सरोबार हैं। लेखिका ने अपने आत्मकथ्य में लिखा है ''घर छोड़ देने से घर तो बदल जाता है लेकिन दिल तो बस दिल है, वह कहाँ बदल पाता है ! कहाँ समझता है वासी और प्रवासी का अंतर ! पोहे और जलेबी से हुई सुबह की शुरूआत असली मायने में जो तृप्ति दे जाती है वह किसी कॉन्टीनेंटल ब्रेकफास्ट का मुकाबला नहीं कर पाती। पास्ता बनाकर भी देसी तड़का न दें तो फिर हमें खाने का मज़ा ही न आए।''

संग्रह की पहली रचना हरा पत्ता पीला पत्ता मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। हर व्यक्ति को वृद्धावस्था से गुज़रना होता है। डॉ. मिलर भी अपनी बढ़ती उम्र को रोक नहीं पाए और हर रात वे सोते समय विचार करते थे कि शायद आज की रात आख़िरी रात हो। लेकिन नियति को कुछ और ही मंज़ूर था। एक दिन एक साल का बच्चा उनके संपर्क में आता है तो डॉ. मिलर की

ज़िंदगी बदल जाती है। डॉ. मिलर की ज़िंदगी में बहार आ जाती है। दोनों एक दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं। छोटे बच्चे के संपर्क में आने से डॉ. मिलर अकेलेपन से उबर जाते हैं और उनकी उम्र बढ़ जाती है। एक मर्द एक औरत पारिवारिक रिश्तों के बीच के ताने-बाने को चित्रित करती भावुक कहानी है जो समाज को सीधे-सीधे आईना दिखाती है। थोड़ी सी पारिवारिक समझ से घर किस प्रकार खुशियों से भर जाता है, इसे लेखिका ने बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है। कहानी को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। वह सुबह कुछ और थी संस्मरणात्मक शैली में लिखी एक खुशनुमा दिन की रोचक दास्ताँ प्रस्तुत करती है। लेखिका ने एक महत्त्वपूर्ण विषय को उठाया है कहानी उसकी औक़ात में। समाज में या किसी संस्था में जब निचले पायदान पर खड़ा व्यक्ति आगे बढ़ने या अपना अस्तित्व बनाने की कोशिश करता है तो समाज या संस्था के ठेकेदारों को अपनी स्थापित प्रतिष्ठा डगमगाती दिखाई देने लगती है और फिर वे ठेकेदार उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। उसकी औक़ात कहानी में कथाकार ने इसी संघर्ष को बहुत प्रभावी रूप से उजागर किया है। यह कहानी मिस हैली की सच्चाई, ईमानदारी और उसके खरेपन को दर्शाती है। रुतबा कहानी बच्चों के बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। रुतबा कहानी में अपने पापा की मनोवृत्ति से बालक इशु के मन में बॉस बनने के बीज अंकुरित होने का वर्णन है। मुझसे कहकर जाते में एक माँ की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इस कहानी का हर किरदार अपनी विशेषता लिए हुए है और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आता है। इस कहानी में लेखिका ने माँ की ममता को अत्यन्त आत्मीयता एवं कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। महिला सशक्तिकरण और नारी चेतना जागृत करने के आंदोलन पर बहुत ही स्वाभाविक रूप से सवाल खड़े करती है। इस संकलन की एक दिलचस्प और रोचक कहानी अपने मोर्चे पर। अपनी माँ को कैंसर की बीमारी का पता चलने पर मुश्किल हालात से गुज़रती, तथाकथित उसूलों से सामना करती एक नवयुवती डॉक्टर स्वाति के संघर्ष की बेहद सच्ची, भावुक और मर्मस्पर्शी कहानी है भिड़ंत। कथाकार ने इस कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। भिड़ंत कहानी की नायिका डॉ. स्वाति त्याग और संयम की मूर्ति है। वह अपने पारिवारिक दायित्वों को बखूबी निर्वहन करती है और सामाजिक परंपरा, नियमों की पाखंडी तस्वीर को तोड़ती है। अपनों के बीच सभी चुनौतियों का सामना करते हुए साहसी नारी के रूप में डॉ. स्वाति का चरित्र हमारे सामने प्रखर हो उठता है। इस कथा में डॉ. स्वाति का किरदार प्रभावशाली है। रिश्तेदारों की संवेदनहीनता और माँ-बेटी के संघर्ष पर लिखी गई सशक्त कहानी है जिसमें कथ्य का निर्वाह कुशलतापूर्वक किया गया है। ऊँचाइयाँ कहानी में डॉ. आशी अस्थाना के जवान होते बेटे अलंकार की व्यथा को कहानीकार ने मार्मिक ढंग से कलमबद्ध किया है। इस कथा में कथाकार ने कहानी की नायिका डॉक्टर आशी अस्थाना की व्यस्त एवं आत्मकेंद्रित ज़िंदगी का सजीव चित्रण किया है और उसे आधुनिक विचार वाली, स्वतंत्र नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। निर्मम फ़ैसले से गुज़रते हुई यह रचना बहस को जन्म देती है।

एक मर्द एक औरत, अपने मोर्चे पर, भिड़ंत, ऊँचाइयाँ जैसी कहानियाँ स्त्री विमर्श के फ़लक को आवश्यक विस्तार देती हैं। अपने मोर्चे पर और ऊँचाइयाँ कहानियाँ स्त्री केंद्रित दुनिया के इर्द-गिर्द घूमती हैं जिसमें पुरुषों की उपस्थिति एक शोषित के रूप में है। मधुमक्खी कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। बेबी सिटर हेजल अपनी मालकिन सोमी की चापलूसी करके अपना मतलब साधती और मतलब निकलने के बाद किस प्रकार डंक मारती है, स्तब्ध कर देने वाले शातिर खेल के वृत्तान्त को कथाकार ने सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए किस तरह किसी की भावनाओं से खेल सकता है, इसकी प्रभावी अभिव्यक्ति है कहानी मधुमक्खी। लेखिका ने बहुत गहराई से पूर्ण शोध करने के बाद इस कहानी का ताना-बाना बुना है। एक खेल अटकलों का इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी का कैनवास बेहतरीन है, जिसे पढ़ते हुए आप के मन में भी बिल्डिंग के सिक्योरिटी गार्ड पश्तो की तरह जिज्ञासा बनी रहती हैं कि आखिर मीशा काम क्या करती है? मीशा प्रतिदिन सुबह समय पर अपने घर से निकल जाती है और शाम को समय पर घर लौट आती है। जब पाठक को मालूम पड़ता है कि मीशा एक रिटायर्ड महिला है और उसके चार बच्चे है। वह चार बच्चों के बावजूद भी अकेले रहने को मजबूर है। रिटायरमेंट के बाद उसे अकेलापन महसूस न हो इसलिए वह प्रतिदिन सुबह अपने हमेशा के समय पर घर से बाहर निकल जाती है और बाज़ार में इधर-उधर समय व्यतीत करके शाम को वापस घर आती है। वह एकाकीपन के जीवन से मुक्त होकर स्वयं को बहलाने का प्रयास करती है। आज के दौर में मानवीय संबंधों का अवमूल्यन हुआ है। प्रस्तुत कहानी वर्तमान सामाजिक परिदृश्य को रेखांकित करती है। फालतू कोना कहानी के केन्द्र में सुहास है। इस कहानी में पत्थर होते जाते परिवार के सदस्यों का हृदयस्पर्शी चित्र है। यह एक ज़िम्मेदार पति और स्नेहिल पिता सुहास की मार्मिक कथा है जिसमें सुहास का पत्ता धीरे-धीरे कटता जाता है और वह अपने ही परिवार के सदस्यों से दूर होता चला जाता है। सारी अच्छाइयों की पोटली बुराइयों के गट्ठर में बदल जाती है। सुहास एक शराबी बन चुका था और दिन-रात गालियाँ बकता रहता था। ज़्यादा शराब पीने से उस पर बीमारियाँ हावी हो गईं। घर में वह एक कोने में पड़ा रहता था। अब जबकि वह मर चुका है और उसका दाह संस्कार भी हो चुका है। इस कहानी की अंतिम पंक्ति काफी प्रभावी है। घर वालों के लिए घर के फालतू कोने के दिन पूरे हो गए थे। आज की नारी व्यावहारिक धरातल पर सोचने लगी है। अब वह पति को परमेश्वर मानकर हर समय उसकी पूजा नहीं करती है बल्कि शराबी पति, जो ढेर सारी बीमारियों से ग्रसित है, की मृत्यु का इंतज़ार करती है। यह बदलते समय की आहट है। अंततोगत्वा कहानी में मंदिर के पंडितों के ढोंग, पूजा-पाठ का व्यावसायीकरण, खोखलेपन और भक्तों के दिखावटीपन को दर्शाया है। धर्म के नाम पर बाह्य आडम्बरों को लेखिका ने दर्शाया है। इस कथा में मंदिर में आए भक्तों

के आपसी संवादों के माध्यम से तथा उनके विचारों पर कथाकार ने उम्दा व्यंग्य किया है। उसकी औक़ात, भिड़ंत, ऊँचाइयाँ, अंततोगत्वा जैसी कहानियों में लेखिका जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिठ्ठों को उद्घाटित करने में सफल हुई है। करुणा, मानवीय चेतना, परोपकार के वैचारिक अंतर्द्वंद्व के भँवर में डूबती-उतरती एक शिक्षिका के पश्चाताप की कहानी है रोपित होता पल। पेरेंट्स का बच्चों पर डॉक्टर, प्रोफ़ेसर या बड़ा सफल व्यवसायी बनने का दबाव इतना अधिक है कि बड़ों की दुनिया में कथा की नायिका आठ साल की परी सोचती है कि वह छोटी ही ठीक है, उसे बड़ी नहीं होना है। इस कहानी में समाज की मानसिकता के स्पष्ट दर्शन है। कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक कथानक के अनुसार हैं और शीर्षक कलात्मक भी हैं।

डॉ. हंसा दीप एक ऐसी कथाकार हैं जो सामाजिक परिवर्तन को सबसे अहम समझती हैं। वस्तु चयन में लेखिका ने सामाजिक यथार्थ पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखी है। लेखिका के इस संग्रह की कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं और यथार्थ की भावभूमि पर खरी उतरती हैं। डॉ. हंसा दीप की कहानियों के स्त्री चरित्र स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं। सहज और स्पष्ट संवाद, घटनाओं का सजीव चित्रण इस संकलन की कहानियों में दिखाई देता हैं। कहानियों में जीवन की चेतना है, प्रेम-संबंधों की नई परिभाषाएँ हैं। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। इन कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। कहानियों के कथ्यों में विविधता हैं। जीवन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन कथाओं में उद्भासित हुए हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह कहानी संग्रह सफल है। लेखिका ने इन कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन, आम आदमी का आत्मसंघर्ष, स्त्री संवेगों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। हंसा जी की कहानियों का सामाजिक परिवेश बड़ा विस्तृत है। इनकी कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। इस संकलन की कहानियों में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हंसा जी ने कहानियों में घटनाक्रम से अधिक वहाँ पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त किया है। लेखिका इस संग्रह की कथाओं में पात्रों का चित्रण इस तरह करती हैं कि पाठकों की सहानुभूति उन्हें सहज ही प्राप्त हो जाती है।

हंसा जी की नारी पात्र भावुक, स्नेहमयी, संयमी, श्रद्धा-त्याग की मूर्ति, उदार एवं चुनौतियों का सामना करनेवाली आधुनिक रूप में दिखाई देती हैं। संग्रह की सभी कहानियाँ शिल्प और कथानक में बेजोड़ हैं और पाठकों को सोचने को मजबूर करती हैं। कहानियाँ लिखते समय लेखिका स्वयं उस दुनिया में रच-बस जाती हैं और वे कहानी का अंत बहुत ही स्वाभाविक रूप से करती हैं, यही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। इस संग्रह की कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है। संग्रह की कहानियाँ काफी रोचक हैं जो पाठक को बाँधे रखती हैं। देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से इस संग्रह की कहानियाँ सफल हैं और अपने उद्देश्य का पोषण करने में सक्षम रही हैं। कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है।

एक के बाद एक दो सफल और बेहतरीन उपन्यास देने के बाद सामने आए इस कहानी संग्रह से पाठकों को बहुत उम्मीदें होंगी, लेकिन वह उम्मीदें इस उपन्यास को पढ़ने के बाद पूरी होती हैं। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आए इस संग्रह का कलेवर बहुत ही सुंदर है। छपाई बहुत अच्छी है और सबसे अच्छी बात है कि प्रूफ़ की ग़लतियाँ बिलकुल नहीं हैं।आशा है कि कथाकार डॉ. हंसा दीप के इस नवीन कहानी संग्रह प्रवास में आसपास का हिन्दी साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

000

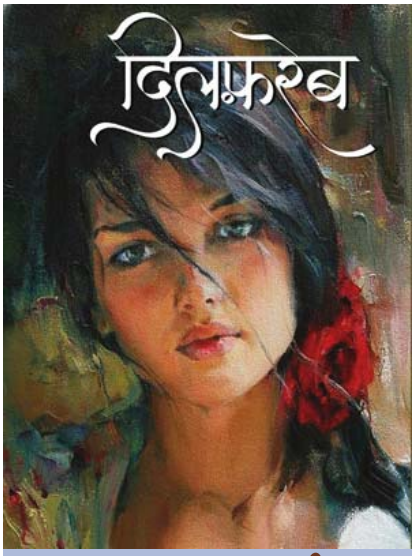

पुस्तक चर्चा

दिलफ़रेब

लेखक : राजकुमार कोरी 'राज़'

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

राजकुमार कोरी 'राज़' की ग़ज़लों का एक संग्रह पिछले बरस शिवना प्रकाशन से ही ''मुन्तज़िर'' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है और ख़ूब चर्चित रहा। यह उनका दूसरा ग़ज़ल संग्रह है जिसका नाम ''दिलफ़रेब'' है। राज़ एक ज़मीनी शायर हैं और उनके सारे रंग अपने आसपास की घटनाओं, सूक्ष्म ऑब्जरवेशन और उनकी सोच के विस्तृत दायरे से छिटककर उनकी शायरी के कैनवास में उभर आते हैं और एक अद्भुत औरा क्रिएट करते हैं कि शायरी साँस लेती है और ताज़ा हो जाती है। राज़ की ग़ज़लों में बड़ा पैनापन है। इस संग्रह में एक से बढ़कर एक अशआर हैं जो आपसे सवाल करेंगे, आपको सोचने पर मजबूर करेंगे आपको चौंका देंगे, जिनके बारे में ढेर सारा लिखा जा सकता है। यूँ तो शायरी शायरी होती है वह अच्छी या बुरी नहीं होती है। बस एक सलीक़ा होता है कहन का, अपनी बात रखने का जो उसे एक विशिष्टता प्रदान करता है। एक अंदाज़ होता है जो उसे सबसे अलग कर देता है। राज़ जिस संजीदगी से जिस फ़िक्र से शायरी करते हैं वह उनकी ग़ज़लों में साफ-साफ दिखाई देता है।

000

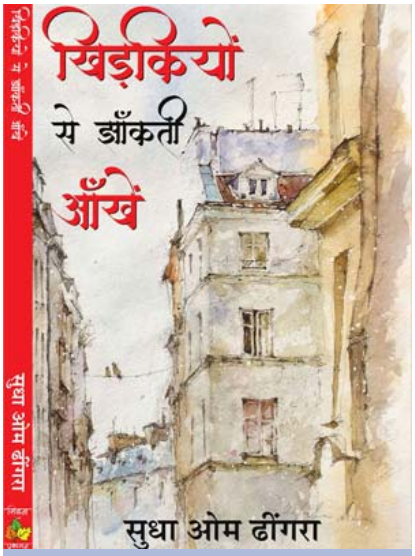

केन्द्र में पुस्तक

खिड़कियों से झाँकती आँखें

(कहानी संग्रह)

समीक्षक :
दीपक गिरकर
रेनू यादव

लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल : 9425067036
ईमेल: deepakgirkar2016@gmail.com

रेनू यादव
रिसर्च / फेकल्टी असोसिएट,भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा 201312 (उ.प्र.)
मोबाइल : 9810703368
ईमेल : renuyada10584@gmail.com

कहानियाँ शिल्प और कथानक में बेजोड़
(दीपक गिरकर)

''खिड़कियों से झाँकती आँखें'' सुपरिचित प्रवासी कथाकार सुधा ओम ढींगरा का सातवाँ कहानी संग्रह है। भारत के जालन्धर (पंजाब) में जन्मी सुधा ओम ढींगरा अमेरिका में कई वर्षों से रह रही हैं। सुधा ओम ढींगरा अमेरिकी संस्कृति से अच्छी तरह से परिचित होने के बावजूद अपनी भारतीय संस्कृति तथा भारतीय रीति-रिवाज़ों को नहीं भूली हैं। सुधा जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। सुधा जी की प्रमुख रचनाओं में नक़्क़ाशीदार केबिनेट (उपन्यास), सच कुछ और था, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कमरा नंबर 103, कौनसी ज़मीन अपनी, वसूली (कहानी संग्रह), सरकती परछाइयाँ, धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफ़र यादों का (कविता संग्रह), विमर्श - अकाल में उत्सव (आलोचना पुस्तक) और सार्थक व्यंग्य का यात्री : प्रेम जनमेजय सहित नौ पुस्तकों का संपादन, साठ से अधिक संग्रहों में भागीदारी शामिल हैं। सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में सामाजिक सरोकारों का दायरा काफी विस्तृत है। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। इस संग्रह की कहानियों में कई कोण, कई आयाम और कई रंग हैं। कहानियों में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है। इस कहानी संग्रह पर सुप्रसिद्ध कथाकार, व्यंग्यकार सूर्यबाला ने अपनी सारगर्भित टिप्पणी में लिखा है ''सुधा ओम ढींगरा की कहानियों से गुज़रते समय सबसे अच्छा यह लगा कि वे तथाकथित कहानियों से बहुत ज़्यादा विश्वसनीय और प्रामाणिक सचों की बानगी पेश करती हैं। उनके पात्र आसपास की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से संबंध रखते हैं और कथानक का ताना-बाना बुनते समय उसे स्वयं जीते हैं। वे निरे अपने लगते हैं और कहानी पढ़ते समय पाठक उनमें अपने आप को देखने लगता है।''

लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती हैं। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। सुधा जी की सभी कहानियों का संवेदनात्मक धरातल मुखर और सशक्त है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इस कहानी संग्रह में 8 कहानियाँ हैं। इस कहानी संग्रह की कहानियाँ युवाओं का क़स्बों से महानगरों में पलायन, बुज़ुर्गों की उपेक्षा, महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, अकेलेपन से उबरते वृद्ध, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, रिश्तेदारों की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, समयानुसार बदलते सामाजिक रंग, छुआछूत, जातीयता, सवर्ण मानसिकता, नस्लीय भेदभाव, माँ की कोमल भावनाओं इत्यादि बुनियादी सवालों से साक्षात्कार करती नज़र आती हैं।

संग्रह की पहली रचना खिड़कियों से झाँकती आँखें बड़ी कड़वी हक़ीक़त से रू-ब-रू कराती आज के समय की सार्वभौमिक कहानी है। यह कहानी अपनों से विस्थापित होने के दर्द को बयाँ करती, मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, प्रतीकात्मक भावुक कहानी है। इस कहानी के पात्र अपनी सांकेतिकता में हमारे समय के बुज़ुर्गों की व्यथा, त्रासदी को रेखांकित करते हैं। खिड़कियों से झाँकती आँखें कहानी के परिवेश का कथानक अमेरिका के एक क़स्बे का है लेकिन इस कहानी को पढ़कर ऐसा लगता है यह तो हमारे ही देश के एक क़स्बे की कहानी है। इस कहानी में सशक्त भावनाओं का संवेग देखिए, जिसमें बुज़ुर्ग प्रवासी भारतीयों की विवशताओं और विडंबनाओं को कथाकार ने स्वाभाविक रूप से शब्दबद्ध किया है - ''डॉ. मलिक देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़ कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार कर लिया।'' ''जब वह पौधा वृक्ष बन गया तो हम उसे उखाड़ कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड-मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया आकर हमने विदेशी धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया।'' खिड़कियों से झाँकती आँखें कहानी को सुधा जी प्रतीकात्मकता के साथ ही ख़त्म करती है, ''सहारे को तलाशती मेरी आँखें भी एक दिन इस देश की किसी खिड़की से झाँकती हुई, किसी की पीठ से चिपक जाएँगीं...।

व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता है, इसकी प्रभावी अभिव्यक्ति है कहानी वसूली। यह पारिवारिक रिश्तों के बीच के ताने-बाने को चित्रित करती एक भावुक कहानी है जो समाज को सीधे-सीधे आईना दिखाती है। इसे लेखिका ने बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है। परिवार के बड़े बेटे शंकर के स्तब्ध कर देने वाले शातिर खेल के वृत्तान्त को कथाकार ने सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। ''किसी रियल एस्टेट एजेंट के पास ले चलो, माँ-बाबा के लिए घर लेना है। नया घर सिर्फ माँ-बाबा का होगा। उस पर किसी बच्चे का कोई हक़ नहीं होगा। उनके बाद उस घर में वे माँ-बाप रहेंगे.....जिनके सिर पर से छत उनके बच्चे छीन लेते हैं.....।'' हरि का यह कथन उसके मनोभावों और उसके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त करता है।

विदेशों में भी रिश्तों में ताज़गी है, अपनापन है, नि:स्वार्थ प्रेम है, इसकी रोचक दास्ताँ प्रस्तुत करती है इस संग्रह की कहानी एक ग़लत कदम। अमेरिका और यूरोप में भी संयुक्त परिवार होते हैं और वहाँ भी परिवार में अपनापन होता है, ऐसे नए विषय पर लिखी गई यह एक सशक्त कहानी है जिसमें कथ्य का निर्वाह कुशलतापूर्वक किया गया है। कहानी एक ग़लत कदम के माध्यम से कथाकार ने दयानंद शुक्ला के दो बेटों, जिनकी शादियाँ उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार भारतीय परिवारों में की थीं, के गिरते जीवन मूल्य, स्वार्थपरता और उत्तरदायित्व हीन दृष्टिकोण पर गहरी चोट की है। दयानंद जी के बड़े बेटे शरद ने विदेशी लड़की जैनेट से शादी की थी और दयानंद जी ने इस शादी का विरोध सिर्फ इसलिए किया था क्योंकि बेटा विदेशी लड़की से शादी कर रहा था। इस कहानी का यह संवाद दृष्टव्य है - ''बाबूजी आपने मुझे समय कब दिया था कुछ बताने के लिए। आपको अच्छे खानदान की बहू चाहिए थी, जैनेट बहुत बड़े परिवार की बेटी है। बटरिक बहुत नामी खानदान है। जैनेट के मम्मी-डैडी, दादा-दादी, नाना-नानी, बुआ-फूफा, कज़न, घर में बीस के करीब डॉक्टर हैं। बाबूजी यहाँ के लोग भी सब हमारी तरह रहते हैं। अपवाद तो देश-विदेश सब जगह होते हैं। आप आज तक अपवाद ही देखते रहे हैं। बाबूजी, आप कभी यहाँ के लोगों के करीब नहीं गए। उन्हें जानने की कोशिश नहीं की। बस यहाँ के लोगों के लिए जो पूर्वाधारणाएँ आप लेकर आए थे, उन्हें ही पकड़ कर बैठे रहे।'' ''सही कहा बेटा तुमने। बहुत देर से और कटु अनुभवों से बात समझ आई।'' सुधा जी की यह कहानी पूरी शिद्दत से यह हक़ीक़त उद्घाटित करती है कि अच्छे-बुरे लोग सिर्फ हमारे देश में ही नहीं हैं बल्कि विदेशों में भी सभी तरह के लोग हैं। इसलिए किसी भी देश या वर्ग विशेष के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए। लेखिका ने बहुत गहराई से पूर्ण शोध करने के बाद इस कहानी का ताना-बाना बुना है।

लेखिका ने एक महत्त्वपूर्ण विषय को उठाया है समीक्ष्य कृति की तीसरी कहानी ऐसा भी होता है में। इस कहानी को पढ़ते हुए सुधा जी के कहानी संग्रह कौन सी ज़मीन अपनी की कहानी टॉरनेडो की याद आती है। लेखिका ने इस कहानी में माता-पिता और भाइयों के स्वार्थी चेहरों को बड़ी कुशलता से उकेरा है। कहानी में कथाकार ने एक स्त्री के संघर्ष को बहुत प्रभावी रूप से उजागर किया है। एक स्त्री का अपने मायके के लोगों के प्रति विद्रोह का भाव और अंत में निर्मम फ़ैसले से गुज़रते हुई यह रचना बहस को जन्म देती है। दलजीत कौर की सास बीजी दलजीत कौर का सबसे बड़ा संबल बनती है। बीजी का यह कथन कितना यथार्थपूर्ण व सजग है - ''ऐसे क्यों देख रही हो, अपने अनुभवों से कह रही हूँ। मैं जब इस देश में आई थी, मैं भी तुम्हारी तरह अपने परिवार को लेकर भावुक थी। खूब पैसा भेजा उन्हें। जब अपनी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ीं और मायके की डिमांड्स को पूरा नहीं कर पाई, बस रिश्ते टूट गए। बेटी, जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है, उनके लिए रिश्तों की कोई क़ीमत नहीं होती।'' सधे और सीधे अंदाज़ में प्रवासी जीवन का एक बड़ा सच हमारे सामने उभरकर आ जाता है। इस कहानी में पंजाबी भाषा की सौंधी महक भी है। कहानी की यह अभिव्यक्ति ग़ौरतलब है - ''आपके साथ पिंड (गाँव) में रहते हुए अक्सर महसूस करती थी, हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस एवईं पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यार, दुलार और सारी सुख-सुविधाएँ तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं।'' लेखिका ने दलजीत कौर की पीड़ा, व्यथा और संवेदना को बख़ूबी व्यक्त किया है। इस रचना को पढ़ने के पश्चात् दलजीत कौर का सशक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ और संघर्षशील व्यक्तित्व मन-मस्तिष्क पर छा जाता है। इस कहानी में पुरुष सत्तात्मक समाज के शोषण के प्रति

दलजीत कौर का विद्रोही स्वर सुनाई पड़ता है। उसमें पुरुष प्रधान समाज के दोहरे मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। वह प्रवासी स्त्रियों के लिए एक प्रेरक मिसाल है। दलजीत कौर का चरित्र ही ऐसा उत्कृष्ट और महान् है, जिसने अपने नाम को सार्थक कर दिखाया है। कहानी को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है।

कॉस्मिक की कस्टडी इस संग्रह की एक सशक्त रचना है। इस कहानी में एक माँ की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इस कहानी का हर किरदार अपनी विशेषता लिए हुए है और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आता है। इस कहानी में लेखिका ने माँ की ममता और उसके अकेलेपन को अत्यन्त आत्मीयता एवं कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। इस कहानी के अंत तक कॉस्मिक के प्रति सस्पेंस बना रहता है और कहानी के अंत में मालूम पड़ता है कि कॉस्मिक एक कुत्ता है। कहानी की यह अभिव्यक्ति ग़ौरतलब है – ''मेरे उठाने से पहले ही ग्रेग उठा और थोड़ी दूर पड़ी मेज़ के पास चला गया, जहाँ पानी, कॉफ़ी और कुछ हल्का नाश्ता पड़ा है। उसने पानी का गिलास भरा और अपनी माँ के पास ले आया। पहले उसे बाँहों में भरा, माँ के आँसू पोंछे और फिर उसे पानी पिलाया।'' यह दृश्य ही गवाही दे रहा था कि दोनों की समस्या गंभीर नहीं है सिर्फ दोनों में संवाद लुप्त हो गया है, माँ और बेटे में एक दूसरे के प्रति भावनाओं और संवेगों में कमी नहीं आई है और अब कोर्ट जाने की नौबत नहीं आएगी।

सुधा जी ने यह पत्र उस तक पहुँचा देना कहानी का प्रारंभ अमेरिका के सेंट लुइस शहर के बर्फ़ीले तूफानों से किया है। यह कहानी एक अमेरिकन लड़की जैनेट गोल्डस्मिथ और एक भारतीय लड़के विजय मराठा के प्रेम संबंधों और संवेदनाओं की संस्मरणात्मक कहानी है। इस कहानी में दीपाली का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है – ''गंदी राजनीति जीत गई और सच्चा प्यार हार गया। पॉलिटिशियन किसी भी देश के हों, सब एक जैसे हैं।''

अँधेरा-उजाला ऊँचे खानदान के लोगों की संवेदनशीलता पर एक जलता हुआ प्रश्न है, जो हमें भीतर तक हिला देता है। इस कहानी की लाक्षणिकता समाज की रूढ़ि और परम्परागत संकीर्णताओं को व्यंजित करती है। इस कहानी के माध्यम से कथाकार ने दलित जीवन के वे चित्र उकेरे हैं जिनमें बदलते सामाजिक-आर्थिक-संस्कृति का विरोधाभास स्पष्ट होता है। कहानी का समूचा परिदृश्य बड़ा मार्मिक है जो पाठकों को देर तक उद्वेलित करता रहता है। इस कहानी का ताना-बाना ऊँचे खानदान की इला और दलित परिवार के मनोज के चारों तरफ बुना गया है। इस कथा में इला की व्यथा, उसके पापा व ताऊजी की दोहरी मानसिकता तथा दोगलेपन को कहानीकार ने मार्मिक ढंग से कलमबद्ध किया है। अभिव्यंजना शैली से भरपूर यह कहानी पाठकों को झकझोर कर रख देती है। इला का अपने पापा के साथ यह संवाद दृष्टव्य है – ''क्यों पापा! यह दोहरी मानसिकता क्यों? जब तक मनोज कुछ नहीं था तो बाहरी आँगन में बैठता था, जो बस आने-जाने का रास्ता है... अब जब वह कुछ बन गया तो सही वाले आँगन में बैठाया, पर दहलीज़ के भीतर फिर भी नहीं! जिसे आपने इंसान समझकर पढ़ाया, जिसकी माँ को सेल्फ़ सपोर्टेड बनाया, वे लोग घर के भीतर आने के लिए इंसान नहीं? यह दोगलापन है...।''

इस संकलन की एक दिलचस्प और रोचक कहानी है एक नई दिशा। कथाकार ने इस कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। एक नई दिशा कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। इस कहानी का कैनवास बेहतरीन है, जिसे पढ़ते हुए आप के मन में भी जिज्ञासा बनी रहती हैं कि इस कथा की नायिका मौली अपनी सुरक्षा कैसे करती है? रियल एस्टेट एजेंट मौली का किरदार प्रभावशाली है। नौकरी हो या व्यवसाय हो, एक स्त्री किस प्रकार अपनी सुरक्षा करती है, कथाकार ने मौली के कथन को बड़े ही स्पष्ट तरीके से शब्दबद्ध किया है – ''मिसेज भास्कर, आप लोगों से मेरा कॉन्ट्रेक्ट घर दिखाने और खरीदवाने का है। मेरी निजता उस कॉन्ट्रेक्ट में नहीं आती। मानती हूँ, एजेंट और क्लाइंट का एक रिश्ता बन जाता है। पर दोनों में एक अदृश्य रेखा भी होती है, जिसके आर-पार दोनों खड़े रहते हैं; जिसे पार करने का अधिकार मैं किसी क्लाइंट को नहीं देती। मैं क्या पहनती हूँ, कितनी बार कपड़े बदलती हूँ, इस पर टिप्पणी या तंज़ की इजाज़त नहीं दूँगी।'' वह अपने बेशक़ीमती गहनों को बेचकर ग़रीब प्रतिभाशाली बच्चों को शिक्षा दिलवाना चाहती है। मौली के इस निर्णय से उसके पति परेश को अपनी पत्नी के प्रति गर्व का अनुभव होता है। परोपकार करने के निर्णय से ही मौली के चेहरे पर नूर उतर आता है और उसकी आँखों में चमक आ जाती है जिसे उसका पति परेश प्रत्यक्ष अनुभव करता है। इस कहानी को पढ़ने के पश्चात् मौली का सशक्त, आकर्षक और विलक्षण व्यक्तित्व मन-मस्तिष्क पर छा जाता है।

कहानियों के पात्रों के नाम उनकी पृष्ठभूमि के साथ न्याय करते हैं। पात्रों का प्रभावशाली किरदार आपको समय और समाज के यथार्थ से परिचिति करवाने के साथ सकारात्मक सन्देश भी देते हैं। कहानियों के संघर्षरत पात्र मानवीय मूल्यों को बचाने की जद्दोजहद करते हैं और साथ ही करुणा, मानवीय चेतना, परोपकार के वैचारिक अंतर्द्वंद्व के भँवर में डूबते-उतरते दिखते हैं। सुधा जी की वसूली, एक ग़लत कदम, ऐसा भी होता है, कॉस्मिक की कस्टडी, यह पत्र उस तक पहुँचा देना, अँधेरा-उजाला, एक नई दिशा जैसी कहानियों के स्त्री पात्र अपनी विशिष्टता के साथ उपस्थित हैं और साथ ही इन कहानियाँ में स्त्रियों के संघर्ष, साहस और आत्मविश्वास को बहुत बारीकी के साथ उठाया है। ऐसा भी होता है, अँधेरा-उजाला जैसी कहानियों में स्त्री चेतना का स्वर पूरी तरह से मुखर हुआ है और ये कहानियाँ स्त्री विमर्श के फलक को आवश्यक विस्तार देती हैं। कथाकार ने दलजीत कौर (ऐसा भी होता है), इला (अँधेरा-उजाला) जैसी पात्रों के माध्यम से स्थापित जड़ पारम्परिक मूल्यों को चुनौती दी है। इस संग्रह की कहानियों में लेखिका संवेदना के तारों को बार-बार झंकृत करने में कामयाब रहती हैं। वसूली, ऐसा भी होता है, अँधेरा-उजाला

जैसी कहानियों में लेखिका जीवन की विसंगतियों, जीवन के कच्चे चिट्ठों और भारतीय समाज की सच्चाई को अंतरंगता से उद्घाटित करने में सफल हुई हैं। कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक स्पष्ट, विषयानुकुल, अर्थपूर्ण और प्रतीकात्मक हैं।

सुधा जी की कहानियाँ सरल और सहज भाषा में आगे बढ़ती हैं और पहले शब्द से ही पाठक को अपने गिरफ़्त में ले लेती हैं। संग्रह की हर कहानी में एक तरह की क़िस्सागोई है, जो रचना को पठनीय बनाती है। इस संग्रह की कहानियों में लेखिका मनुष्य मन के अनगिनत चेहरों की शिनाख़्त करती है। इस संग्रह की कहानियों में विविधता, गहरे मानवीय सरोकार तथा परिवेश के यथार्थ चित्र मिलते हैं। वस्तु चयन में लेखिका ने सामाजिक यथार्थ पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखी है। इस संग्रह की कहानियाँ जीवन और समाज की नकारात्मक प्रवृत्तियों के विरूद्ध सकारात्मक संघर्ष का उद्घोष करती दिखती हैं। लेखिका प्रवासी और भारतीय परिवेश को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करती हैं। सुधाजी अपने समय और समाज की तमाम तरह की विसंगतियों, विडम्बनाओं और विद्रूपताओं से पर्दा हटाते चलती हैं। उनमें वक़्त के सच को लिखने का साहस है। वे पीड़ित-शोषित नारी की समस्याओं को मार्मिकता से उकेरने के बाद उन्हें अँधेरों से निकालने के लिए जूझती हुई दिखती हैं। इनकी कहानियों के पात्र, पाठकों के साथ सहज ही जुड़ जाते हैं। सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के स्त्री चरित्र स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं। सहज और स्पष्ट संवाद, घटनाओं का सजीव चित्रण इस संकलन की कहानियों में दिखाई देता है। कहानियों में जीवन की चेतना है, प्रेम-संबंधों की नई परिभाषाएँ हैं। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। इन कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। कहानियों के कथ्यों में विविधता है। जीवन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन कथाओं में उद्भासित हुए हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह कहानी संग्रह सफल है। लेखिका ने इन कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन, आम आदमी का आत्मसंघर्ष, स्त्री संवेगों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। इनकी कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। इस संकलन की कहानियों में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कथाकार ने इन कहानियों में भारतीय और अमेरिकी संस्कृति की ख़ामियों को उजागर किया है और साथ ही वे सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना भी करते हुए दिखती हैं। सुधा जी ने कहानियों में घटनाक्रम से अधिक वहाँ पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त किया है।

सुधा जी की नायिकाएँ भावुक, स्नेहमयी, संयमी, श्रद्धा-त्याग की मूर्ति, उदार एवं चुनौतियों का सामना करनेवाली आधुनिक रूप में दिखाई देती हैं। सुधा जी कहानियों में शिल्पगत आडम्बर नहीं है। संग्रह की सभी कहानियाँ शिल्प और कथानक में बेजोड़ हैं और पाठकों को सोचने को मजबूर करती हैं। कहानियाँ लिखते समय लेखिका स्वयं उस दुनिया में रच-बस जाती हैं, यही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। इस संग्रह की कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है। कथाकार ने शब्द चयन पात्र एवं परिवेश के अनुकूल किया है। संग्रह की कहानियाँ काफी रोचक हैं जो पाठक को बाँधे रखती हैं। देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से इस संग्रह की कहानियाँ सफल हैं और अपने उद्देश्य का पोषण करने में सक्षम रही हैं। सुधा ओम ढींगरा स्याह होती संवेदनाओं को उभार कर उनमें फिर से रंग भर देती है। आठ रोचक कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, बल्कि संग्रहणीय भी है। निश्चय ही प्रवासी कथाकार सुधा ओम ढींगरा बधाई की पात्र हैं, उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा प्रवासी और भारतीय साहित्य को एक नई दिशा दी है। पुस्तक बहुत सुंदर है तथा प्रूफ़ आदि की त्रुटियाँ भी बिलकुल नहीं हैं।

000

कई-कई अंतर्ध्वनियों के साथ
(रेनू यादव)

''सब लोग यही सोचते हैं कि विदेशों में डॉलर वृक्षों पर उगते हैं और वहाँ से उन्हें तोड़ कर भेज देंगे'' (खिड़कियों से झाँकती आँखें, पृ. 39) सचमुच यह एक ऐसा पूर्वाग्रही मकड़जाल है जो भारतीयों सहित लगभग विकासशील देशों के मस्तिष्क पर फैला हुआ है । यह सोच सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों के लिए ही नहीं बल्कि अपने ही देश यानी अंतरदेशीय प्रवासियों के लिए भी है। दोनों में फ़र्क़ बस इतना है कि अपने देश में कमाने वाला व्यक्ति रुपया मुद्रा में खर्च करता है, इसलिए आमदनी रुपये में गिनी जाती है और विदेश में कमाने वाला व्यक्ति डॉलर या उस देश की मुद्रा में कमाता है, तो उन मुद्राओं को रुपये में बदल कर गिनती की जाती है । आश्चर्य की बात यह है कि उस व्यक्ति की आमदनी अर्थात् हर महीने आने वाली आय पर नज़र तो होती है लेकिन महीने के खर्च पर ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि वह अपने फ़ायदे में नहीं होता ।

नि:स्वार्थ रिश्तों के बीच कुछ ऐसे स्वार्थपरक रिश्तों को भी कहना पड़ता है - अपने लोग, अपने रिश्ते । ये अलग बात है कि हम कितने अपने होते हैं ? यह समय, ज़रूरत और मुद्राओं पर आकर समाप्त हो जाता है। लेखिका सुधा ओम ढींगरा इन अपने रिश्तों की गहराई को बखूबी न सिर्फ जानती हैं बल्कि भोक्ता भी हैं। कदाचित् इसीलिए इनकी कहानियों में रिश्तों की नब्ज़ पकड़ने की क्षमता होती है। इनकी कहानियों से यह साबित भी होता है कि परिवार में शोषक और शोषित की भूमिका प्रेम, विवाह, लाचारी, असमर्थता, बेरोज़गारी के नाम पर मार्क्स के सिद्धांतों के विपरीत भी चला जाता है। जो कि इस कहानी-संग्रह में 'एक नई दिशा' कहानी को छोड़कर लगभग सभी कहानियों में दिखाई देता है।

इस संग्रह की विशेषता है कि कहानियों के मुद्दे अलग-अलग होते हुए भी भारत और अमेरिका की परिवेशगत संस्कृति के धरातल पर एकाकार हो जाते हैं। तुलना और व्यतिरेक साथ-साथ चलकर पाठक को बार-बार अपने संस्कार, संस्कृति और परंपरा

की खिड़की में झाँकने के लिए विवश करते हैं। दूसरी बात कि हथेली में खिंची रेखाओं की तरह खींच जाती हैं इन कहानियों में कई रेखाएँ और समा जाती है हर व्यक्ति की अलग-अलग व्यथाएँ। घुटती-सिमटती चाहतों के बीच यूँ ही आ जाते हैं उम्मीदों के पंख और उन पंखों के साथ-साथ हवा में हौले-हौले उड़ने लगती हैं वे व्यथाएँ ।

ऐसे ही पंख लेकर आते हैं डॉ. सागर मलिक 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' कहानी में, जिनकी पीठ पर चिपकी रहती हैं अनेकों उम्मीदों भरी आँखें। वे आँखें अपनेपन की चाह में विदेशी भूमि पर अपने ही बच्चों द्वारा परित्यक्त होने के कारण टिक जाती हैं हर आने-जाने वालों की पीठ पर। उन्हें उम्मीद होती है कि शायद एक न एक दिन उनके अपने बच्चे लौट आएँगे, या फिर वे किसी अजनबी में अपने बच्चों को तलाश कर पाएँगे। उन्हें पता है, ''जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह।'' (खिड़कियों से झाँकती आँखें, पृ.21) फिर भी मोह तो प्रेम का एकतरफ़ा मारक तीर है, जो सामने वाले की अनेक उपेक्षाओं के बावजूद भी चुभ-चुभ कर याद रहती हैं। जो माँ-बाप मरते दम तक अपनी संतान से निःस्वार्थ प्रेम करना नहीं भूलते, उन्हीं माँ-बाप की ज़िम्मेदारी जब सँभालनी पड़ती है तब वे माँ-बाप ज़िम्मेदारियों में अतिरिक्त बोझ (कुछेक को छोड़कर) लगने लगते हैं। यह कटु सत्य है कि हर बेटा श्रवण नहीं हो सकता, जो जीवन-पर्यन्त अपने माँ-बाप को कंधों पर उठा कर घूमता रहे। कुछ बेटे शंकर देव जैसे भी हो सकते है। 'वसूली' कहानी इस कटु सत्य का उदाहरण है। इस कहानी के दो पक्ष हैं - पहला, संस्कार, आदर्श और सेवाभाव की दुहाई देने वाले तथा श्रवण और राम को आदर्श बेटा मानने वाले भारत देश में शंकर जैसा बेटा, जो स्वार्थ की आँधी में डूब कर अपने माँ-बाप के सिर से छत छीन लेना चाहता है। और विदेश में रहने वाले लोगों के लिए संस्कारहीन जैसे पूर्वाग्रहों को खंडित करते हुए बेटा हरि मोहन अपने माँ-बाप को आश्रय देता है ।

दूसरा, बेरोज़गारी, लाचारी और भारत में रह कर कम पैसा कमाना तथा विदेश में जाकर पेड़ से पैसे तोड़ने जैसे अवधारणाओं को खारिज करता है और स्वार्थान्धिता के तहत प्रेम, विश्वास और पढ़ाने लिखाने के नाम पर भाई ही भाई से पैसे की वसूली करता है। ऐसी वसूली सिर्फ लड़कों के साथ ही नहीं बल्कि लड़कियों के साथ भी होती है, जिसका प्रमाण है कहानी 'ऐसा भी होता है'। जिन लड़कियों को जन्म देने और पालने में हीनता का बोध होता है उसी लड़की को धन की अपेक्षा में विदेश में ब्याह देना और पैसों की माँग पूरे न होने पर रिश्तों का टूट जाना वह सच्चाई है जिससे स्वीकार करते हुए हम भारतीय सदैव डरते हैं और निःस्वार्थता की चादर ओढ़े जीवन भर यह साबित करते रहते हैं कि हम आदर्शवादी हैं। लेखिका ने सच ही लिखा है - ''जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है, उनके लिए रिश्तों की कोई क़ीमत नहीं होती''। (ऐसा भी होता है, पृ. 67)

प्रायः हम अपनी जाति, परंपरा और संस्कृति के प्रति इतने रूढ़ होते हैं कि बिना ज़मीनी सच्चाई जाने विदेशी संस्कृति के प्रति नकारात्मक अवधारणाएँ मन में पाल लेते हैं। ऐसी ही अवधारणाओं के परिणाम की कहानी है 'एक ग़लत कदम'। शकुंतला और उसके पति दयानंद शुक्ला अपने सभी बच्चों को विदेशी धरती पर भारतीय संस्कारों से संस्कारित करते हैं। लेकिन जब बड़ा बेटा अमेरिकन ईसाई लड़की जैनेट से विवाह कर लेता है तब वे उसे घर से निकाल देते हैं। कुछ समय बाद उनके दूसरे दो बेटे और उनकी भारतीय पत्नियाँ जिनके संस्कारों पर उन्हें गर्व होता है, वे उन्हें वृद्ध आश्रम में छोड़ आते हैं। ऐसी स्थिति में सभी अवधारणों के विपरीत विदेशी बहू जैनेट और उसके पति ही उन्हें वापस घर ले जाते हैं और पूर्वाग्रही माँ-बाप को अपने द्वारा लिए गए ग़लत फ़ैसले पर पछताना पड़ता है।

संवेदनाएँ सिर्फ मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी और वस्तुओं के लिए भी हो सकती हैं। 'कॉस्मिक की कस्टडी' कहानी में मिसेज़ राबर्ट कॉस्मिक (कुत्ते का नाम) को उसके जन्म के पहले दिन से उसे पाल रही थीं, लेकिन जब वह बड़ा हो गया तो उसे उनका बेटा ग्रेग अपने साथ लेकर चला गया। कॉस्मिक के जाने के बाद मिसेज़ राबर्ट बिल्कुल ही अकेली हो जाती है और डिप्रेशन का शिकार भी। कई बार अपने बेटे ग्रेग से कहने के बाद भी वह उसे उन्हें नहीं देता इसलिए दोनों यानी माँ और बेटा काऊंसलर के सामने आमने-सामने होते हैं। जब ग्रेग को यह समझ में आता है कि भावनात्मक संबल ज़रूरी नहीं कि किसी पुरुष या स्त्री साथी से ही मिले, वह एक पशु से भी मिल सकता है, तब वह अपनी माँ को कॉस्मिक की कस्टडी सौंप देता है।

भावनात्मक संबल के प्रगाढ़ रूप की परिणति प्रेम में हो जाये तो प्रेम हवाओं में, नदियों में, आसमान पर धरती पर फैल जाता है। सच कहा जाए तो हमारे विश्वास में फैला होता है प्रेम। नस्लभेद के कारण अत्याचार के शिकार हुए भारतीय और अमेरिकन प्रेमी के विश्वास और तड़प की कहानी है - 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना'। इस कहानी में भारत में जातिवाद की भाँति अमेरिका में नस्लवाद के कारण ऑनर-किलिंग होता है। यह कहानी है हमारे अंदर छिपी मानसिक रूढ़िवादिता की, और खोखली इज़्ज़त की, जो समाज में अनेक विकास होने के बावजूद भी अब तक नहीं बदल सकी।

भारत में जातिवाद सिर्फ प्रेम का ही विरोध नहीं करता बल्कि जन्म से लेकर मृत्यु तक अलग-अलग स्तर पर समाज में फैला हुआ है। भारत के विकास में बाधाओं में से एक सबसे बड़ा कारण जातिवाद भी है, जो समाज के बड़े हिस्से के मनुष्य को मनुष्य का दर्जा न देकर उन्हें हाशिये पर खड़ा कर देता है। जिनके जीवन में हमेशा अँधेरा ही रहा लेकिन जब-जब उन्होंने अपने जीवन में उजाला ले आने का प्रयास किया तब-तब मनुष्य समझे जाने वाले उच्चवर्गियों द्वारा अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर उनके जीवन में फिर से अँधेरा भर दिया जाता है। गायक मनोज पंजाबी के माध्यम से इसी दास्तान को अभिव्यक्त करती है कहानी - 'अँधेरा-उजाला'।

जीवन में भौतिक वस्तुएँ जितनी सुखमय होती हैं उतनी ही ख़तरों से भरी भी हो सकती हैं। 'एक नई दिशा' कहानी में भौतिक सुख 'हीरे की नेकलेस' उदाहरण के रूप में लिया गया है । जिसके प्रति दूसरों

(घर खरीदने के लिए क्लाइंट) का आकर्षण मौली के लिए ख़तरा उत्पन्न कर देता है । मौली की सर्तकता के माध्यम से भौतिक सुखों का लगाव, विरक्ति और उनकी उपयोगिता तथा जीवन जीने की एक नई दिशा दिखाती यह कहानी है ।

उपरोक्त आठ कहानियों के माध्यम से लेखिका रिश्तों में आये विचलन, प्रेम, छल, छद्म को बहुत ही ख़ूबसूरती से व्यक्त करते हुए भारत और अमेरिका दोनों ही देशों के संस्कार, संस्कृति और परंपरा की तुलना सामान्य रूप से कर जाती हैं। हालाँकि उन्होंने कथानक और कथ्य की संरचना में सहज ही परिवेशगत वर्णन किया है किंतु ये कहानियाँ कई-कई अंतर्ध्वनियों के साथ विदेशी धरती के प्रति पूर्वाग्रहों और रूढ़ अवधारणों को सहज ही ख़ारिज कर देती हैं।

लेखक जब अपनी रचनाएँ पाठकों के सामने रखता है तब हर पाठक उन कहानियों को पढ़ते हुए कई-कई बार पुनर्पाठ भी करता है। हर पाठक का अपना अलग-अलग पाठ और पक्ष भी हो सकता है । 'खिड़कियों से झाँकती आँखें', 'वसूली' (कहानी का एक पक्ष), 'एक ग़लत कदम', 'कॉस्मिक की कस्टडी' में वृद्धों की अलग-अलग रूप में संवेदनाएँ और समस्याएँ हैं। 'वसूली' और 'ऐसा भी होता है' कहानियों में भावनात्मक प्रवाह और रिश्तों में स्वार्थ दिखायी देता है। 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' नस्लवाद और 'अँधेरा-उजाला' जातिवाद पर आधारित है। 'एक नई दिशा' समाज में सर्तकता को अभिव्यक्त करती है। किंतु लगभग सभी कहानियाँ अपने मन की खिड़की में झाँकने पर विवश करती हैं कि कहीं हम भी अपनेपन के नाम पर किसी षड्यंत्र में फँसे तो नहीं ? पैसे कमाने या फिर रिश्तों को समेटने के चक्कर में कहीं हम भी अकेलेपन, अवसाद, खिन्नता, भग्नाशा के शिकार तो नहीं ? लेखकीय ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए पाठकों को बार-बार सतर्क करते हुए लेखिका का यह स्पष्ट अंदाज़ मुझे पसन्द आया, ''यहाँ डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, कड़ी मेहनत से।'' (ऐसा भी होता है, पृ. 65)

000

पुस्तक समीक्षा

विचार और समय

(निबंध)

समीक्षक : पंकज सुबीर
लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

'विचार और समय' शिवना प्रकाशन की नई पुस्तक है, जो नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित होकर आई है। यह पुस्तक विचार पर आधारित पुस्तक है। इस पुस्तक में एक संपादक के रूप में डॉ. सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिखे गए लेखों को सम्मिलित किया गया है। किसी भी लेखक का एक रूप उसका संपादक रूप होता है। संपादक रूप में किसी पत्र या पत्रिका की सामग्री का संपादन करने के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है संपादकीय लिखना, जहाँ वो अपने विचारों को सामने रखता है। संपादकीय में लेखक के अपने विचार पूरी तरह से उभर कर सामने आते हैं। संपादकीय असल में निबंध ही तो होते हैं। किसी एक विषय या एक से अधिक विषयों पर संपादक अपने विचारों को व्यक्त करता है। हिन्दी पत्रिकाओं के संपादकीय पढ़े भी ख़ूब जाते हैं, चर्चित भी होते हैं; लेकिन बाद में भुला दिए जाते हैं। कितना ही विचारोत्तेजक संपादकीय हो, वह कुछ दिनों बाद विस्मृत हो जाता है। अंग्रेज़ी में तो किसी संपादक द्वारा लिखे गए संपादकीय लेखों को पुस्तक रूप में लाने का चलन ख़ूब है। क्योंकि; यह संपादकीय लेख किसी समय विशेष या किसी घटना विशेष के बारे में न केवल विस्तार से जानकारी प्रदान करते हैं; बल्कि पीछे के सच को भी सामने लाते हैं। हिन्दी में यह चलन अभी उतना नहीं है। सुधा ओम ढींगरा जी ने पहले 'हिन्दी चेतना' और फिर 'विभोम-स्वर' के संपादकीय पृष्ठों पर जो लेख लिखे हैं, वह लेख वैश्विक चेतना से समृद्ध लेख हैं। इन सारे संपादकीय लेखों में उन समस्याओं की बात की गई है, जिनसे विश्व जूझ रहा है। वे समस्याएँ, जो सारी दुनिया में एक ही तरह से सामने आ रही हैं। इसलिए यह सारे लेख बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सुधा जी ने लम्बे समय तक भारत में रह कर सक्रिय पत्रकारिता की है तथा अमेरिका जाने के बाद भी पत्रकारिता से जुड़ी रही हैं। उनके संपादकीय लेखों में अक्सर ऐसे विषय आते हैं, जो भारत तथा पश्चिमी देशों में समान रूप से प्रभावी होते हैं। कई बार किसी एक विषय को लेकर उन्होंने पूर्व तथा पश्चिम के बीच तुलना भी ख़ूब की है। इसीलिए इन लेखों का एक पुस्तक के रूप में आना ज़रूरी था। हर लेखक अपने तरीक़े से इतिहास का भी लेखन करता है। अपनी कहानियों, अपनी कविताओं में; और विशेषकर इस प्रकार के निबंधों में, संपादकीय लेखों में। इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशन वास्तव में इतिहास का ही प्रकाशन है। इस संग्रह में कुल पैंतीस निबंधों को सम्मिलित किया गया है। इन निबंधों को पढ़ते समय भारतीय साहित्य और साथ में प्रवासी साहित्य की बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं, साथ ही समसामयिक घटनाक्रम की भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। निबंध विधा इन दिनों एक बिसरा दी गई विधा के रूप में ही जानी जा रही है, लेकिन यह भी सच है कि निबंध विधा का अपना बड़ा पाठक वर्ग होता है। अभी भी लोग सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए निबंधों की ही तरफ़ देखते हैं। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक एकदम सही समय पर आई है। यह पुस्तक निबंध पढ़ने के शौकीन पाठकों के लिए एक उपहार की तरह है।

000

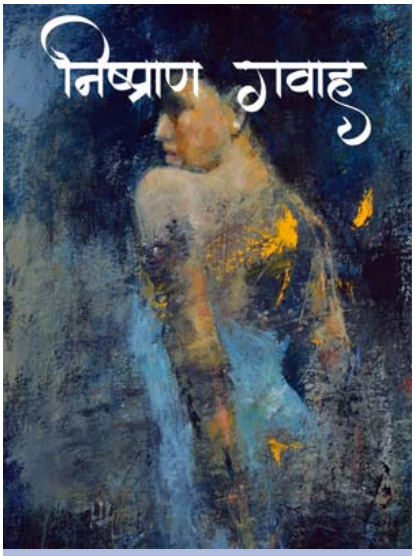

केन्द्र में पुस्तक

निष्प्राण गवाह

(उपन्यास)

समीक्षक :
शन्नो अग्रवाल
डॉ. मधु संधु

लेखक : कादम्बरी मेहरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

Shanno Aggarwal
8 Mabel Crout Court
20 Lingfield Crescent
London, UK
SE9 2RW

डॉ. मधु संधु
13 प्रीत विहार, आर एस मिल,
जीटी रोड, अमृतसर 143104 पंजाब
मोबाइल: 8427004610
ईमेल: madhu_sd19@yahoo.co.in

आम आदमी की ज़मीनी हकीकत
(शन्नो अग्रवाल)

किसी भी देश में अन्य देशों से आकर बसने वाले लोग, उस देश के लोगों की सामाजिक परिस्थितयों, संस्कृति, मानसिकता और जीवन जीवन शैली से जल्दी ही परिचित हो जाते हैं। पश्चिमी देशों में बसे हिंदी भाषा के लेखकों की रचनाओं में इसका रेखांकन अच्छी तरह देखने को मिलता है। उनके प्रति लेखक की संवेदनशीलता,तो कभी किसी बात को लेकर आक्रोश की झलक लेखन में स्पष्ट रूप से चित्रित होती रहती है। यू के में रहने वाली लेखिका कादम्बरी मेहरा की रचनाएँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। यहाँ के जीवन पर वह अच्छी पकड़ रखती हैं। कादम्बरी जी मुख्यत: कहानीकार हैं। आज हम उनके पहले उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं।

कहानी एक रहस्यात्मक हत्या का विवेचन करती है। मार्टिन नाम के एक आदमी ने अपने भविष्य को शांतिपूर्वक जीने के लिए एकांत में समुद्र के किनारे घर खरीदा। घर जर्जर व पुराना है। प्रकृति के सान्निध्य में पक्षियों की चहक सुनते हुए वह उस घर की मरम्मत करता है। जल्दी ही वह अपने आस-पास के पड़ोसियों से हिल-मिल जाता है। और एक सुहाने दिन वह मित्र मंडली के संग पार्टी रखता है। समुन्दर के किनारे अलाव जलाकर बार-बे- क्यू करता है। मगर पार्टी के थोड़ा पहले रेत में ठोकर खाकर गिर जाता है। जिस भारी वस्तु से टकराता है वह कार्पेट में लिपटी एक स्त्री की लाश है जिसका अब केवल कंकाल ही बचा है। मार्टिन के सपनों की दुनिया का यहीं पर अंत हो जाता है और शुरू होती है एक अनछुई रहस्य कथा। दक्षिण लंदन के शांत वातावरण में एक सुन्दर बीच हाउस की तस्वीर बिखरकर चूर-चूर हो जाती है और अपराध की भयानक दुनिया में बदल जाती है। मार्टिन के स्वर्ग पर पुलिस का ताला जड़ दिया जाता है और वह वापिस लंदन की शोर भरी ज़िंदगी में लौट जाता है।

हम प्रवासी साहित्य इसलिए भी पढ़ते हैं ताकि विदेशी संस्कृति व समाज का सही

चित्रण देख सकें। इस उपन्यास में लेखिका ने इंग्लैंड के समाज में आम आदमी की ज़मीनी हक़ीक़त को बख़ूबी उभारा है। दस-बारह वर्ष पूर्व हुई इस हत्या को सुलझाने का कार्यभार वरिष्ठ जासूस जिमी डंकन को सौंप दिया जाता है। मृतका का कोई पहचान करनेवाला नहीं आता है। ऐसे में हत्यारे को ढूँढ़ निकालना असंभव कार्य है। फिर भी वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर जिमी डंकन अनेक सूत्रों की जुगाड़ कर ही लेता है। उसकी तहकीकात में अनेकों किरदार जुड़ते जाते हैं। उनकी विविधता और मृतका से जुड़ाव आदि इस कथा को और भी रोचक बनाते चलते हैं।

कहानी में कुछ विशेष मुद्दे उठाए गए हैं। नवयुवाओं का धन और विलासिता के प्रति आकर्षण अक्सर उनको अनजाने ही अपराध व पतन की ओर ले जाता है। सही मार्ग दर्शन से वह बच भी जाते हैं मगर सहपाठियों के संग तुलना व स्पर्धा, आपसी यौन आकर्षण आदि ग़लत राह के इंगित बन जाते हैं और कहीं कोई सामाजिक दरिंदा उनको अपराध के चक्रव्यूह में फाँस लेता है जिससे निकलना मुश्किल होता है। इसके विपरीत लेखिका भारतीय सादा जीवन उच्च विचार को महत्त्व देती हैं। पुरातनपंथी सिख परिवार काले और सफ़ेद के बीच सीधा फासला रखता है। उसमे ग़लत को माफ़ करने की कोई गुंजाइश नहीं है। नवयुवाओं की निर्भीकता, माँ-बाप की उपेक्षा, टूटे हुए दाम्पत्य जीवन आदि कुछ ऐसे कठोर तथ्य हैं जिनसे ऊबकर बच्चे ड्रग के शिकार हो जाते हैं। स्वतंत्रता की चाह में छोटी-मोटी नौकरी करके मज़े लूटने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे पकती जाती है जिसका कई बार घातक अंत होता है जिसका कोई निदान नहीं। युवतियों में वेश्यावृत्ति, धन के कारण पति बदलना आदि कुरीतियाँ बच्चों को सुरक्षा व प्रेम से वंचित कर देती हैं। समाज के भूखे भेड़िये कैसे किसी की ग़रीबी और मजबूरी का फ़ायदा उनको अपने चंगुल में फँसाकर उठाते हैं, यह सब खुलकर लेखिका ने दर्शाया है।

पाठक के औत्सुक्य का पूरा ध्यान रखते हुए लेखिका ने कथानक को ऐसे बनाया है कि अपराध साबित होने से पहले कोई अपराधी नहीं लगता। यद्यपि यह दुनिया गुनाहों के देवताओं से भरी हुई है। भले और भोले लोगों के लिए कदम-कदम पर ख़तरों के जाल बिछे हुए हैं। अपराधी कितना निर्मम हो सकता है इसका अनुमान इस उपन्यास के कथानक से साबित होता है। दस वर्ष पुराने केस की तहकीकात करना बेहद कठिन कार्य है इंस्पेक्टर डंकन के लिए। जैसे-जैसे एक-एक सूत्र मिलता जाता है, मृतका से जुड़े लोगों की संख्या बढ़ती जाती है मगर जिमी डंकन ऊबता नहीं है। बहुत बार लोग अपना मुँह खोलने से डरते हैं। किरदारों के सामाजिक मूल्य भी अपने अपने व्यवसाय और आर्थिक स्तर के कारण भिन्न-भिन्न हैं। उनको एक ही मापदंड से नहीं तौला जा सकता। सभी का संक्षिप्त आकलन उपन्यास को अत्यंत रोचक बनाता है। लेखिका निर्लिप्त भाव से उनको स्वीकारात्मक बनाती हैं। उनके अपराध उनकी मजबूरियों से उपजे हैं और इसलिए क्षमा कर दिए जाते हैं। रोज़मरी की माँ ग़रीबी के चलते बार-बार अपना जीवन साथी बदलती है। बेहद स्वार्थी हो चुकी है मगर फिर भी पाठक उसको खलनायिका नहीं मानता। जब उसकी ममता को ठेस लगती है तो वह शेरनी बन जाती है और माल्कम को निकाल फेंकती है। माँ का लाडला माल्कम अनेक बार हिंसक हो जाता है मगर उस पर ग़ुस्सा नहीं आता। वह तो एक कागज़ का शेर है, एकदम हास्यास्पद। गपोड़ी स्टुअर्ट हो या आगज़नी करनेवाला सैमी, गुरुशरण का सामान बाहर फेंकनेवाली मामी हो या मुँह फेर लेनेवाली जेनिफर, सबकी परिस्थितियाँ उनको प्रेरित कर रही हैं उनके व्यवहार के लिए।

कहानी के कई प्रसंग हृदयग्राही हैं। नायिका तो मर चुकी है मगर इस कहानी की प्रमुख पात्र या कहें सहनायिका अभी अपनी व्यथा से जूझ रही है। जिमी डंकन एक मूल प्रश्न उससे पूछता है।

''जिस पुरुष ने तुमको इतना त्रास दिया, उसकी निशानी को तुमने सीने से लगाकर पाला, छोड़ क्यों ना दिया ?''

''मत भूलो इंस्पेक्टर, मैं भी एक त्याज्या औलाद थी।''

वह आगे कहती है,''दो अनुभव शब्दों से परे हैं और वह दोनों पुरुष जनित हैं। एक धोखे का दंश और दूसरा नवजात का मोह।''

इस उपन्यास में यह संवाद पूरे स्त्री विमर्श का सारांश है। प्रेम का उदय और अंत दोनों को परिभाषित करता है। पुरुष के धोखे को सहना सबसे मुश्किल काम पर ममता का उदय जानो प्रेम की पराकाष्ठा, स्त्री की सम्पूर्णता।

प्रश्न आता है तो क्या सभी पुरुष मूल रूप से पाशविक हैं। स्त्रियों के दुश्मन हैं ?

इसी किताब में उसका उत्तर मिल जाता है। प्रेम में पागल सैमी जो वियोग नहीं सह पाता, उसके प्रेम पगे माँ-बाप। अल्फ्रेड टर्नर, बार का मैनेजर जो रोज़मरी को अपनी सुरक्षा देता है, डॉ. नारायण, और स्वयं जिमी डंकन आदि लोग पौरुष की महानता को उसके विभिन्न रूपों में दर्शाते हैं। उदारता, परिश्रम, महत्त्वाकांक्षा, लक्ष्य प्राप्ति के लिए एकनिष्ठ उद्यम, प्रेम, सौजन्य, सहानुभूति आदि सब पुरुष के गुण हैं जो अपने पूरे निखार पर इस कहानी में दर्शाए गए हैं।

अपराध से संबंधित मामला कितना भी जटिल हो लेकिन जिमी जैसे लोग अपनी कार्यक्षमता, लगन और चातुर्य से अपराध की जड़ खोदने में सक्षम हो ही जाते हैं। और जब तक केस सुलझा नहीं लेते, तब तक चैन की साँस नहीं लेते। शुरू-शुरू में तमाम प्रयासों के आधार पर सूत्र भी मिल जाते हैं मगर कहानी उलझती जाती है। कई बार कड़ियाँ जुड़ते-जुड़ते टूट जाती हैं और मामला वैसा का वैसा ही रह जाता है। ऐसे में पुलिस अधिक दिलचस्पी नहीं दिखलाती और हताश होकर केस को बंद कर देती है। मगर डंकन को तब तक चैन की नींद नहीं आती जब तक वह हत्या की तह तक नहीं पहुँच जाता।

कहानी लिखते समय अंत की गोपनीयता बनाए रखना बहुत ज़रूरी है लेखिका ने इसे बखूबी निभाया है। यही नहीं अंत भी पाठक की कल्पना और अनुमान के बहुत विपरीत और चौंकाने वाला है। जिमी का अथक परिश्रम अंततोगत्वा अपराधी को कटघरे में लाकर खड़ा कर देता है। उपन्यास का समापन बड़े कौशल से किया गया है। इसकी लेखिका कादम्बरी मेहरा की कल्पना शक्ति को नमन। लेखन के प्रति इसी तरह आपकी प्रतिबद्धता बानी रहे।

०००

रहस्य रोमांचकारी अपराधकथा
(डॉ. मधु संधु)

कथाकार कादम्बरी मेहरा का प्रथम उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' अपराध कथा है,जासूसी कथा है। रहस्य रोमांच से भरे इस उपन्यास 'निष्प्राण गवाह' की कहानी इस प्रकार आरंभ होती है कि अपनी स्कूली नौकरी से अवकाश लेकर मार्टिन गिल्बर्ग इंग्लैंड के दक्षिणी छोर पर, बॉर्नमथ शहर से पाँच-सात मील दूर, सागर तट के एकांत और प्राकृतिक स्थल पर एक बीच हाउस खरीद लेता है। इसकी मालकिन स्टैला एक बयानवे वर्ष की वृद्धा है जो दूर कहीं नर्सिंग होम में पड़ी है। घर मज़बूत मगर ख़स्ताहाल में है। यहाँ "उखड़े पलस्तर, भुतहले भदरंग परदे, पीलाये वॉलपेपर, गले हुए चौखटे, सीलन की बदबू, ग़ायब कार्पेट" आदि उसे पर्याप्त सक्रिय कर देते हैं और वह इनकी मरम्मत और साफ़-सफाई में जुट जाता है। जून महीने की 21 तारीख को, वर्ष के सबसे लम्बे दिन वह केल्टिक संस्कृति का त्यौहार अपने मित्रों के संग पार्टी करके बिताना चाहता है। बीच पर कुर्सियाँ आदि ले जाते समय उसका पाँव किसी सख़्त वस्तु से टकराता है। मित्र डेविड उसकी मदद करता है तो उनको एक कार्पेट में लिपटा हुआ कंकाल मिलता है। हतप्रभ होकर वह पुलिस को बुला लेते हैं।

हत्या का मामला जान मार्टिन का घर पुलिस बंद कर देती है और इसकी तहकीकात का कार्यभार इंस्पेक्टर जिमि डंकन को सौंप दिया जाता है। कंकाल बहुत पुराना है और उसकी पहचान का कोई सूत्र नहीं है। पूरा उपन्यास इस हत्या को सुलझाने के उपक्रम पर आधारित है। 96 पृष्ठ के उपन्यास में अनेकों पात्र आए हैं। अध्यापक मार्टिन गिल्बर्ग, उसकी प्रेमिका डिनीस, उसका पड़ोसी डेविड, घर की मालकिन स्टैला आदि तो भूमिका में ही रह जाते हैं। मुख्य तहकीकात में वरिष्ठ इंस्पेक्टर जिमि डंकन, जूनियर ऑफिसर अतिया, डॉ. अल्बर्ट, स्पेन का पुलिस इंस्पेक्टर यूजीन मरिओस आदि अपराध जगत् की परतें खोलने वाले पात्र हैं।

अनेकों पात्र वह आम लोग हैं जो मृतका से जीवन में जुड़े रहे थे। गुरुशरण और उसकी गर्लफ्रेंड जेनिफर, गुरुशरण के माँ बाप, मामा किरपाल सिंह, रोज़मरी, रोज़मरी की माँ आयरीन, भाई कैलम, पिता जैक, मौसी लीसा, आयरीन का तीसरा संगी माल्कम जोंस, माल्कम की अगली स्त्री मेविस, पीड़िता और अपराध की तह तक जाने में सहायक होते हैं। इसी क्रम में जिमि डंकन की पत्नी रेचेल, उसका छात्र सैमी, रेचेल का निजी परिवार आदि भी यहाँ मौजूद हैं। कहानी के मूल में अपराध का स्थान टू स्टैग्स पब है। उससे जुड़े हुए पात्र जैसे पुराना मालिक हैरी लेटन, वर्तमान मालिक आंद्रे, बॉब, पुराना शेफ और उसकी पत्नी, ट्रैवल एजेंट टॉम, ओवरसियर निक, बाउंसर बॉय अल्फ्रेड टर्नर, उसकी प्रेमिका और कहानी की सहनायिका हेलेन भी इस खोज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहते हैं। किसी न किसी मोड़ पर यह जिमि से जुड़ जाते हैं, कथानक को गतिशील रखते हैं।

हत्या की पड़ताल करने में लेखिका ने कई तकनीकी हथकंडों का पुलिस को सफल उपयोग करते हुए दर्शाया है। तब मोबाइल फ़ोन नहीं होते थे और न ही उनके डाटा को तोड़ा जा सकता था। पोस्टमार्टम, हड्डियों का परीक्षण, दाँतों की पहचान, संबंधित स्थल की फोरेंसिक जाँच, पिछले अपराधों एवं दुर्घटनाओं की सूची, विशेषज्ञों द्वारा संभावित चेहरे का अनुमानित निर्माण, उसका अख़बारों, रजतपटों आदि पर विज्ञापन, जनता से सहायता की मानवीय अपील, फ़ोन टैप करना, पीछा करना, प्यार और विश्वास में लेकर बातें उगलवाना, रहस्य खोलना, सरकारी फाइलें खँगालना, झूठ पकड़नेवाली मशीन से कनेक्ट करना, व्यक्ति की प्रत्येक गतिविधि को ताड़ने के लिए इलेक्ट्रॉनिक टैग उसकी पीठ पर लगाना, कलाई पर मीटर बाँध देना, हाउस अरेस्ट करना,आदि सब साधन इस्तेमाल किए गए हैं। इंस्पेक्टर डंकन की पारखी दृष्टि अपने गवाह और मुजरिम के अंदर का हर तार खोलने में सफल हो जाती है।

इंस्पेक्टर डंकन का चरित्र, कार्य कुशलता एवं निष्ठा इस कहानी को अनेक उलझी हुई परिस्थितियों से सफलता पूर्वक निकाल लाती है। अपने उद्देश्य की पूर्ती के लिए वह जगह-जगह भटकता है। इसमें इंग्लैंड के दक्षिण में मेयरहैम जैसा छोटा सा क़स्बा, बोर्नमथ का बीच टाउन, पोर्टस्मथ का बंदरगाह, सॉउथम्पटन का बीच रिसोर्ट, और लिटिल डाल्टन आता है तो मिडलैंड (मध्य प्रान्त) का लिवरपूल, मेनचेस्टर और उत्तरी इंग्लैंड का यॉर्क शहर आता है। स्वयं वह पोर्टस्मथ के पास लिचेस्टर में रहता है जो एक सभ्रांत समाज का प्रतिष्ठित शहर है। इनके अलावा उसको स्पेन के 5000 मील लम्बे तट की भी जाँच करनी पड़ती है जब तक कि उसकी खोज मलागा नामक शहर में नहीं सिमट जाती। यहीं उसको मिलता है अपना तथाकथित अपराधी जो अपनी पूर्वसंगिणी को धोखा देकर एक अमीर स्त्री के पैसे पर ऐश कर रहा है। परन्तु क्या वह सचमुच उसका लक्ष्य साबित होता है।

इस कहानी को अधिक रोचक बनाती है इंग्लैंड के समाज की तस्वीर। इसमें बहुत सामान्य परिवार आए हैं, मुख्यत: निम्न और निम्न मध्यवर्गीय। आर्थिक विषमताओं से जूझते परिवारों का दाम्पत्य जीवन भिन्न-भिन्न है, जिसे सभ्य मान्यताओं के अनुसार सामान्य नहीं कहा जा सकता। एक से अधिक शादियाँ और नौ-नौ बच्चों का ज़िक्र भी है। गुरुशरण सामान ढोनेवाला ड्राइवर है तो उसका पिता मेकैनिक और माँ भारतीय रेस्टॉरेंट में काम करती है। गुरुशरण की संगिनी मित्र जेनिफर कंपनी के मॉल की चेकिंग करती है। उसका पिता पानी के जहाज़ की रख रखाव की टीम में है और माँ स्कूल में सफाई का काम करती है। परन्तु इस देश में जातिवाद न होने के कारण यह सभी अपनी साख रखते हैं और समाज को स्वस्थ योगदान देते हैं। उनकी जीवन गाथा यहाँ के समाज की संरचना को दर्शाती है। पाठक उसको अत्यंत निकट से देख, सुन समझकर उनकी व्यथाओं एवं दृष्टिकोण को आत्मसात् करता है। आयरीन की कहानी ब्रिटेन के इतिहास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके कारण आयरलैंड से लाखों लोग ब्रिटेन में आ बसे। कहीं भी भारतीय पाठक इन पात्रों की सामाजिक परिस्थिति को पाप-पुण्य की तुला पर नहीं तोल सकता। वह उसको स्वाभाविक सत्य के रूप में मान्य है। जिमि डंकन को अलबत्ता हम उच्च मध्यवर्ग का कह सकते हैं। परन्तु यह भी कार्यकर्ता समाज से हैं। उसकी पत्नी

पढ़ाती है तो ससुर डॉक्टर हैं। एक अति धनाढ्य स्त्री भी इस कहानी में अपनी निश्चित पहचान बनाती है और कथानक को गति प्रदान करती है, वह है निकोल। भारतीय इज़्ज़तदार नारियों की तरह अनेक गरल पीकर भी अपने परिवार की शांति और सुरक्षा कायम रखती है।

प्रेम के विभिन्न रूप यहाँ लेखिका ने कुशलता से चित्रित किए हैं। मार्टिन की पत्नी अपने अध्यापक पति को छोड़कर उस बिल्डर की संग रहने लगाती है जिसके पास पत्नी को देने के लिए धन और समय दोनों अधिक हैं। कहानी की सहनायिका और अल्फ्रेड का प्रेम / रोमांस,उसका असफल अंत, हेलेन का टूटा विश्वास आदि कहानी के विचलित करने वाले प्रसंग हैं। इसी तरह सैमी और सेरा का टीनएज रोमांस जो असफल रहा, गुरुशरण और रोज़मेरी का एकतरफा प्रेम भी है। हाँ मार्टिन और उसकी प्रेमिका डिनीस सफल रिश्ते में दीखते हैं पर उसमे भी एक औपचारिक दूरी है। तुम भी खुश हम भी खुश, किसी का किसी पर ज़ोर नहीं।

विभिन्न देशों और धर्मों के लोग यहाँ मिल जाते हैं। जेनिफर के माँ बाप गोआ से थे और अपने कैथोलिक धर्म के पक्के थे। गुरुशरण के माँ बाप गुरुद्वारे जाते थे और पक्के सिख धर्मानुयायी थे। धर्म के नाम पर ही दोनों माएँ उनके रिश्ते के ख़िलाफ़ थीं। रोज़मरी के माँ बाप, खानसामा बॉब की बेटी डीलिया, हेलेन का प्रेमी और उसके बच्चे का पिता अल्फ्रेड आदि कैथोलिक हैं अत: जब उसकी बेटी पैदा होती है तो उसे भी कैथोलिक लिखवा दिया जाता है।

कई पात्र विविध देशों से आए हैं। गुरुशरण भारत से, आयरीन आयरलैंड से, पब का वर्तमान मालिक आंद्रे ऑस्ट्रिया से, माइक और निकोल और मारियोज़ स्पेन से, तो डॉक्टर नारायण भारतीय हैं। अल्फ्रेड की दादी और माँ अंग्रेज़ थीं पर पिता अफ्रीकी नस्ल के थे। यही आधुनिक इंग्लैंड के समाज का स्वरूप है। राजनैतिक उथल पुथल का भी सजीव चित्रण है। अस्सी के दशक में जैसे ही इंग्लैंड ने युरोपियन यूनियन से गठबंधन किया, लोगों ने धड़ाधड़ उधर से सस्ती शराब लाकर इधर बेचनी और पीनी शुरू कर दी जिससे इंग्लिश पबों का धंधा बैठने लगा। परन्तु सरकार ने इस ओर ध्यान दिया और यूरोप से शराब की तस्करी पर रोक लगाने के लिए सभी युरोपियन यूनियन के सदस्य देशों में सामान दाम करने का निर्णय लिया। तभी स्थिति सामान्य हो पाई। तो भी सुपर मार्केट्स के आ जाने से सस्ती शराब के ऑफर आम हो गए। उधर घरों में टेलीविज़न व वीडियो आ जाने व सेंटर हीटिंग की सुविधा हो जाने से लोग शाम को घरों में ही अधिकतर रहने लगे और पबों का धंधा मंदा हो गया।

इस उपन्यास में अंग्रेज़ी के शब्द तो आए ही हैं,पंजाबी पात्र होने के कारण कहीं-कहीं गूढ़ पंजाबी के शब्द और वाक्य भी मिलते हैं। जैसे पंजाबी - अद्धी -पिचहद्धि (पृष्ठ 16), या फिर,''देख भैन मुंडा तेरा साड्डे कार पुल्स बाढ़ बैठा वे। सो तू ऐनु अपने कोल रख। अस्सी बाल बच्चे वाले हैंगे। (पृष्ठ 19)

निष्कर्षत: यह कहानी एक शालीन, सुसभ्य, सुसंस्कृत, शर्मीली, संकोचशील, परिश्रमी, महत्त्वाकांक्षी, स्वाभिमानी, ग़रीब, सुन्दर और ऊँची लम्बी लड़की की है जो एक हत्यारे की कुत्सित दृष्टि की शिकार बन जाती है। वह उसको समुद्र में डूबो कर निश्चिन्त हो जाता है मगर निर्दोष आत्माएँ अपना बदला अवश्य लेती हैं। लाश फूलकर उसी स्थान पर आ लगती है जहाँ उसको जल समाधि दी गई थी। जैसे ही वहाँ कोई रहने आता है वह प्रकट हो जाती है, मानों यह निष्प्राण देह स्वयं ही अपनी गवाह बनकर क़ातिलों की खोज का आमंत्रण दे रही हो। इंस्पेक्टर जिमि डंकन के कुशल हाथों में यह केस एक बहुत ही भयानक अपराधी को उजागर करता है। कैसे ? यह उपन्यास ही बताएगा। औत्सुक्य और प्रवाह उपन्यास में आदि से अंत तक बना रहता है। रहस्य एक-एक कर खुलते जाते हैं ताकि कहीं भी कथानक लचर न हो। आम आदमी के जीवन संघर्ष से जुड़ा होने के कारण लेखिका इस अपराध कथा को जनवाद और नारीवाद से भी सफलता पूर्वक जोड़ती हैं। प्रवासी हिंदी महिला उपन्यासकारों में कादम्बरी मेहरा अकेली रहस्य रोमांचकारी अपराधकथा लेखिका के रूप में उभरती हैं।

000

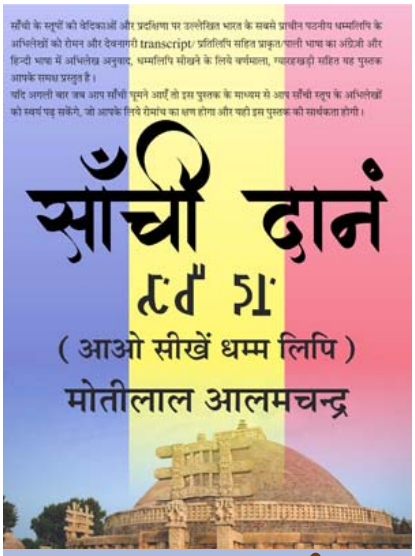

पुस्तक चर्चा

सांची दानं

लेखक : मोतीलाल आलमचन्द्र

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

धम्म लिपि सीखने-सिखाने के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण किताब शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आई है। 'सांची दानं' नाम से आई इस पुस्तक के लेखक धम्म लिपि के जानकार, कवि, उपन्यासकार मोतीलाल आलमचन्द्र हैं। यदि आप धम्मलिपि सीखने के इच्छुक हैं तो आप कुछ ही दिन में इस पुस्तक की मदद से धम्मलिपि की वर्णमाला सीखकर धम्मलिपि पढ़ सकते हैं। धम्मलिपि बहुत ही सहज और सरल है। यदि अगली बार जब आप साँची घूमने आएँ तो इस पुस्तक के माध्यम से आप साँची स्तूप के अभिलेखों को स्वयं पढ़ सकेंगे, जो आपके लिये रोमांच का क्षण होगा और यही इस पुस्तक की सार्थकता होगी। धम्मलिपि लिखते समय बहुत सी बातों का ख़्याल रखा जाता है। जो व्यक्ति हिंदी भाषा जानते हैं उन्हें धम्मलिपि सीखने में ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। धम्मलिपि बहुत ही वैज्ञानिक लिपि है। धम्मलिपि ही भारतीय मूल की सभी भाषाओं की मातृलिपि है। दक्षिण भारत की चारों भाषाओं की लिपि तथा भारोपीय भाषाओं की लिपियों की जननी भी धम्मलिपि ही है।

000

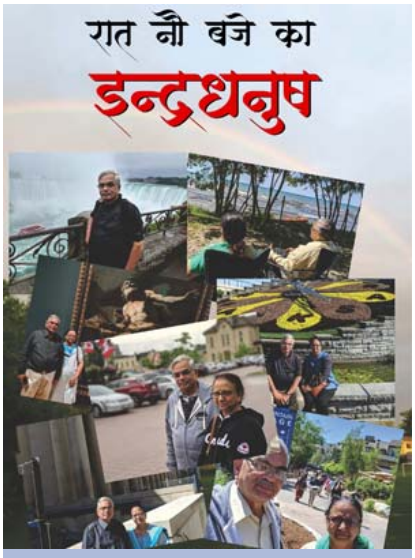

केन्द्र में पुस्तक

रात नौ बजे का इन्द्रधनुष

(यात्रा संस्मरण)

समीक्षक :
धर्मपाल महेंद्र जैन
दीपक गिरकर

लेखक : ब्रजेश कानूनगो
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

धर्मपाल महेंद्र जैन
1512-17
Anndale Drive, Toronto
MwNwW7, Canada,
ईमेल : dharmtoronto@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल : 9425067036
ईमेल: deepakgirkar2016@gmail.com

काव्यात्मक आत्मा का प्रकृति के साथ संवाद
(धर्मपाल महेंद्र जैन)

'रात नौ बजे का इंद्रधनुष' सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार और प्रयोगधर्मी कवि श्री ब्रजेश कानूनगो के द्वारा उनकी पहली कनाडा यात्रा के जीवंत अनुभवों से बुनी गई किताब है। मैं कनाडा में रहता हूँ तो मेरे लिए हिन्दी में आने वाली ऐसी किताबें ख़ास है। आम यात्रा वर्णनों से भिन्न यह किताब एक काव्यात्मक आत्मा की प्रकृति के साथ संवाद की कथा है। इसमें कनाडा की विभिन्न जगहों को शब्दों में रूपांतरित करते हुए छत्तीस आलेख हैं। ब्रजेश को अपने पाठकों को चौंकाना ख़ूब आता है, वे आम पाठकीय भाषा को इस तरह बाँधते हैं कि एक के बाद एक मुहावरे घड़ते जाते हैं। जब तक पाठक आलेखों के शीर्षकों से शुरू हुए भाषा के मायावी सौंदर्य का जादू समझ पाता है ब्रजेश अपने पाठक को अपने साथ बहा ले जाते हैं उस पर्यटन स्थल पर जहाँ वे अपने परिवार के साथ हैं। यह सामान्य यात्रा विवरण से अलग ऐसा रूपांकन है जिसे ब्रजेश जैसे समर्थ रचनाकार ने कहीं चित्रकार जैसे उकेरा है, कहीं कथाकार जैसे क़िस्सों में ढाला है और कहीं व्यंग्य की मार में भी गुदगुदाया है। निश्चित ही पाठक इस किताब के साथ कनाडा की नई ताज़ी हवा का भरपूर आनंद उठाएँगे।

लंबे शीतकाल के बाद जब मई महीने में कनाडा में धूप लगने लगती है, यहाँ के निवासियों के लिए यह अप्रतिम सुख होता है, ब्रजेश इसे 'आसमान से सुख बरस रहा है' शीर्षक में बाँधते हैं। 'घर में जलपरियाँ', 'कनाडा की पब्लिक लायब्रेरी में विष्णु नागर', 'मन के भीतर मुस्कुराईं इंद्रधनुषी मछलियाँ', 'लड्डू के बीच इलायची का दाना' जैसे शीर्षकों में आकार पाता कनाडा जब अपने वैभव नियाग्रा प्रपात से लेखक को मिलवाता है तो ब्रजेश इसे 'पर्यटन का राग भैरवी' कह उठते हैं। इन आलेखों के जरिए ब्रजेश कनाडा की प्रकृति, यहाँ की सांस्कृतिक विविधताएँ, प्रशासनिक ख़ूबियों, नागरिकों के सरोकार और उनके संस्कारों की छोटी-छोटी ख़ूबियाँ पकड़ते हैं। कभी ऐसा लगता है कि चित्रकार, उपन्यासकार और मनोवैज्ञानिकों का कोई दल अपने-अपने तरीके से जुटाए गए अनुभवों को समवेत स्वर में आरेखित कर रहा हो। इस असामान्य पकड़ में पारंगत होने के लिए आप ब्रजेश को वाह-वाह कह उठेंगे।

पश्चिमी देशों के बड़े शहरों जैसे लंदन, न्यूयॉर्क, टोरंटो आदि का डाउनटाउन या केंद्रीय भाग तो लगभग एक जैसा लगता है, पर जब आप शहर से दूर अंचलों में घूमते हैं तो आप वास्तविक देश देख रहे होते हैं। टोरंटो से दूर गाँव की 'कॉटेज कंट्री' में ब्रजेश आप को ले जाते हैं तो वे आपको 'फैरी लेक में पोहे' और 'बारबेक्यू के बहाने दाल बाफलों की याद' दिला कर मध्य भारत की अपनी धरती की याद दिला देते हैं। अपनी यात्राओं को किस तरह रोचक, मनोरंजक और यादगार बनाया जाए यह किताब आपको इस कला में दक्ष बनाती चलती है। कनाडा में आमतौर पर बच्चे चलने के साथ-साथ तैरना भी सीख लेते हैं। 'लाइफ सेविंग स्किल तैराकी' अध्याय में ब्रजेश इस पर लिखते हैं - ''प्रशिक्षकों द्वारा स्नेहपूर्ण और मनोवैज्ञानिक तरीकों से बहुत छोटे बच्चों को तैराकी के प्रति उत्साहित करते देखा तो दंग रह गए। थोड़ी ही देर में उनका पानी में उतरने का डर ग़ायब हो गया था और वे पूल में उतरने के प्रति लालायित होते नज़र आए। यह और भी चौंकाने वाला अनुभव था कि कुछ दृष्टिबाधित बच्चे भी यहाँ उत्साह से तैराकी सीखते दिखे।''

कनाडा में दिव्यांगों को अपने बलबूते पर सामान्य जीवन जी सकने के लिए उपलब्ध कराई गई सुविधाएँ और तैयारियों, गो ट्रेन, कचरा संग्रहण और सड़कों की सफाई जैसी बुनियादी सुविधाओं के बारे में चर्चा करके ब्रजेश, सरकारी प्रवास पर आने वाले भारतीय

अधिकारियों के लिए भी संदेश छोड़ जाते हैं कि यहाँ की किन-किन आधारभूत सुविधाओं को वे भारत में लाने का संज्ञान ले सकते हैं। रेल यात्रा से आप भारत को समझ सकते हैं। इसलिए गो-ट्रेन से टोरंटो की यात्रा करते हुए वे लिखते हैं ''प्राकृतिक सौंदर्य, शिष्टाचार और नागरिक दायित्व और नियमों को पालन होते देखना है तो कनाडा में गो ट्रांज़िट से यात्रा कीजिए।''

जीवन के किसी भी पड़ाव में जो हमेशा यादगार रहती हैं वे हैं प्रियजनों के साथ की गई यात्राएँ। इस किताब के हर पन्ने पर उनका अपना परिवार है, परिवार के साथ बीते क्षण, मस्ती और इन सबके नेपथ्य में भारत की अपनी धरती की यादें। हास-परिहास सहज ही इन यात्राओं का हिस्सा बन जाते हैं। टोरंटो यात्रा का एक दृश्य - ''सुगम अंडरग्राउंड पाथ से होते हुए हम ऊपर आए जहाँ एक बड़े 'स्काय वे' से होते हुए थोड़ी ही देर में हम लोग पैदल ही चल कर विश्व प्रसिद्ध सीएन टॉवर की तलहटी में उस स्थान के समक्ष खड़े थे, जहाँ से टॉवर के शिखर की ओर देखने पर हमारी टोपी नीचे गिर सकती है।''

घर में जलपरियाँ रखने के शौकीन बेटे के साथ ख़रीदारी पर वे लिखते हैं - ''इस बहाने हमें बहुत व्यवस्थित और बड़ा एक्वेरियम माल और सुंदर मछलियों के स्टोर का आनंद लेने का अवसर मिला। यहाँ मछली घर में प्रयुक्त होने वाली सभी सामग्री मिलती थी। कोई पाँच सौ से अधिक प्रजातियों की खूबसूरत मछलियाँ इतने ही छोटे-छोटे एक्वेरियम में मद्धम रोशनी वाले शोरूम में सजीव पेंटिंग की तरह अद्भुत आभा बिखेर रही थीं।''

भाषा, कहन और अपनी स्मृति में यकायक गूँजती कविताओं से गुँथी यह किताब कनाडा को समझने और यहाँ की प्राकृतिक एवं आधुनिक छटा से परिचय कराती हुई उनकी पहली किताब है। इस विशाल भूभाग के एक राज्य ओंटेरियो के भ्रमण से जन्मी यह किताब ब्रजेश की आगामी कनाडा यात्राओं से कई और किताबें पाठकों के सम्मुख लाए और इस धरती को देखने और हमसे यहाँ मिलने के लिए ललचाए।

000

कनाडा का जीवन्त चल चित्र
(दीपक गिरकर)

सुपरिचित कवि, व्यंग्यकार, कथाकार श्री ब्रजेश कानूनगो की पुस्तक ''रात नौ बजे का इन्द्रधनुष'' उनके कनाडा प्रवास पर लिखी गई है। यह यात्रा संस्मरण शिवना प्रकाशन, सीहोर से पिछले वर्ष ही प्रकाशित होकर आया है। ब्रजेश यायावर प्रकृति के लेखक हैं, वे जहाँ जाते हैं, वहाँ के मौसम, प्राकृतिक दृश्यों, स्थानों, लोगों के जीवन, संस्कृति, शिष्टाचार, धार्मिक रीती-रिवाजों को एक कैमरे की तरह क़ैद कर लेते हैं। साहित्यकार ब्रजेश अपने जीवन साथी के साथ अपने बेटे के पास टोरंटो गए थे। लेखक की यह विदेश की पहली यात्रा थी। ब्रजेश जिज्ञासु वृत्ति के हैं। उनकी यात्राएँ केवल तफ़रीह के लिए नहीं होती है। कनाडा की यात्रा ब्रजेश के लिए महज पर्यटकों की सैर नहीं रही। कनाडा में लेखक ने प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का लुत्फ़ उठाया। उन्होंने वहाँ रहते हुए सैर-सपाटों के साथ वहाँ के दर्शनीय स्थलों के विवरण के साथ कनाडा की संस्कृति, अनुशासन, परिवहन व्यवस्था, खानपान, प्रशासनिक व्यवस्था, प्राकृतिक सौंदर्य और समृद्धि को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया है। पुस्तक संस्मरण शैली में है। वहाँ अनुभव किए भावों को रचनात्मक रूप दिया है।

ब्रजेश सहृदय नज़र से टोरंटो के नागरिक, दुकानें, प्रकृति, पुस्तकालय, प्रशासन, आवागमन के साधन सबको निहारते जाते हैं। कनाडा में लेखक अपने परिवार के साथ सप्ताहांत की सैर में प्राकृतिक झील ''सिब्बल पॉइंट'', कम्युनिटी सेंटर, पब्लिक लायब्रेरी, न्यू मार्केट, यूनियन स्टेशन, रिचमण्ड हिल्स शहर में कनाडा हिन्दू टेम्पल, सीएन टॉवर, हार्बर फ्रंट सेंटर, रिप्लीज फिश एक्वेरियम, ओंटारियो लेक, जॉर्ज रिचर्डसन पार्क, ब्लू माउंटेन विलेज, वसागा बीच, राइस लेक, बेलमेर विंड्स गोल्फ रिसोर्ट, सीमोर लेक, वुडलैंड्स एस्टेट्स कॉटेज कंट्री, कवाराथा कॉटेज कंट्री, रॉयल ओंटेरियो म्यूज़ियम, आर्ट गैलरी ऑफ ओंटेरियो, नियाग्रा जल प्रपात, लैगून सिटी और ओरिलिया का तुधुप पार्क इत्यादि पर्यटक स्थलों का भ्रमण किया, आनंद लिया और वहाँ के दृश्य और वातावरण को सहज रूप से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया। किताब में स्किल डेवलपमेंट, कॅरियर चुनने की भूमिका, स्वच्छता, स्वास्थ्य और प्रारंभिक शिक्षा में सरकारी सेवाओं की गुणवत्ता, पब्लिक लायब्रेरी, दिव्यांगों के प्रति सहयोग और संवेदनाएँ, कॉटेज जीवन, सप्ताहांत की सैर, जीवन संघर्ष, आधुनिक चित्रकला और शिल्प के नए प्रयोग आदि विषयों पर बड़ी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ हैं। कनाडा के लोग सप्ताहांत की सैर परिवार के साथ करते हैं और आशा, उमंग और उत्साह से भर जाते हैं।

उनके इस संस्मरण से पता चलता है कि कनाडा की असली संपदा वहाँ का अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य है, सरकारी कल्याण योजनाओं और सेवाओं में वहाँ की जनता का विश्वास कायम है, सूनी सड़कों पर भी वहाँ के नागरिक ट्रैफिक के नियमों का पालन करते हैं। कनाडा के लोग मेहनती हैं और छोटे-बड़े काम स्वयं ही करते हैं। इस पुस्तक से पता चलता है कि कनाडा में हिन्दी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का भी बहुत सम्मान है। यह सत्य है कि किसी देश की समृद्धि, सौंदर्य और सुरक्षा वनों पर निर्भर करती है। प्रकृति की गोद में जीवन की आँखें खुलती हैं। ब्रजेश की यह किताब कनाडा के जीवन और वहाँ की संस्कृति को समझने के लिए एक अनूठी कृति है। लेखक ने अपनी कनाडा यात्रा का संस्मरण रचनात्मक तरीके से लिखा है, इसमें कथातत्व भी है।

लेखक इस पुस्तक में सिर्फ सूचनाएँ या जानकारियाँ नहीं देते। लेखक कनाडा में रहने के दौरान अपने देश को नहीं भूले थे और इस पुस्तक में भारत देश का ज़िक्र भी उतना ही आया है जितना कनाडा का। रचनाकार ने यात्रा संस्मरण इतने बेहतरीन तरीके से लिखा है कि कनाडा का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है जिससे पाठक को यात्रा की अनुभूति होती है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए मुझे उनके सहयात्री होने की अनुभूति हुई और साथ ही मैंने वहाँ की आबोहवा को अपने अन्दर गहराई तक महसूस किया। रात नौ बजे का इन्द्रधनुष यात्रा-संस्मरण की एक अनूठी कृति है।

000

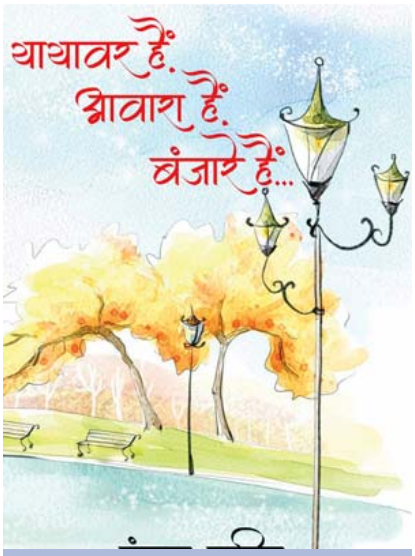

केन्द्र में पुस्तक

यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं

(यात्रा संस्मरण)

समीक्षक :
अशोक प्रियदर्शी
धर्मपाल महेंद्र जैन

लेखक : पंकज सुबीर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

अशोक प्रियदर्शी
एम. आई. जी. 82, सहजानन्द चौक
हरमू हाउसिंग कॉलोनी
राँची, झारखण्ड 834002
मोबाइल: 9430145930

धर्मपाल महेंद्र जैन
1512-17
Anndale Drive, Toronto
MwNwW7, Canada,
ईमेल : dharmtoronto@gmail.com

ऐसे सहज यात्रा-विवरण कम मिलते हैं
(अशोक प्रियदर्शी)

कम यात्रा-विवरण ऐसे बन पड़ते हैं जिनमें कसावट भी हो, पठनीयता भी हो और विवरण ऐसे हों कि पाठक भी लेखक के साथ-साथ यायावरी, आवारगी और बंजारा होने का आनंद उठा रहा हो। यह विवरण इतना आत्मीय और रोचक बन पड़ा है कि क्रमशः इंग्लैंड, कैनेडा और अमेरिका में से किस यात्रा-संस्मरण को बेहतर कहें, यह निर्णय करना मुश्किल है। विदेशों में रह रहे अपनों की गर्मजोशी मन को छूती है। इंग्लैंड में स्वयं तेजेन्द्र जी और फिर ललिता जी, ज़किया ज़ुबैरी जी और नीना पाल जी, कैलाश बुधवार और उनकी 'बानो बेगम' और फिर बदनाम इंग्लिस्तानियों की सहजता, सरलता और आत्मीयता। वहाँ का काला कव्वा, सेंट एंस शॉपिंग सेंटर, प्राइमार्क- यहाँ मानकर चला जाता है कि आप ईमानदार हैं, वर्ना अपने यहाँ तो मरियल से मॉल के दरवाज़े पर भी आपका थैला टटोला जाता और पेमेंट स्लिप देखी जाती है। और इंग्लैंड की बरसात! बचपन में पढ़ी वह अंग्रेज़ी कहावत याद आ जाती है, 'रेन रेन गो अवे'। साउथ हॉल का बाज़ार, हमारे भारतीय बाज़ारों जैसा कार की टक्कर हो जाने पर भी कोई अफरा-तफरी नहीं। टॉवर ब्रिज पर फ़ोटोग्राफी, मार्क ऐंड स्पेंसर, ट्यूब ट्रेन की सैर। ज़किया जी का लेखक की बेटियों के लिए सामान यों खरीदना जैसे वे खुद के लिए खरीदारी कर रही हों, वहीं अपनापा और लेखक के लिए उपहार। पढ़कर मन भींगता है। दुहराऊँ, इंग्लैंड इतना प्यारा तो कभी नहीं लगा था। और फिर मुंबई से हीथ्रो तक की उड़ान और वापसी! अत्यंत हृदयग्राही। इस यात्रा में स्वयं लेखक को इंदु शर्मा सम्मान पाना था।

और जब कैनेडा में आवारगी। कैनेडा, जिसे हम लोग प्रायः कनाडा कहते हैं। महेश कटारे जी को यहाँ पुरस्कृत-सम्मानित होना है, सो उन्हें लेखक ने कई बार दूल्हा कहा है, उनके साथ-सहयोग के लिए गए हैं लेखक। मुझको एक दूसरा उपाय सूझ रहा है। थोड़े से पुराने दिनों में जब दुल्हनें वैसी तेज़-तर्रार, पढ़ी-लिखी नहीं होती थीं, तो हमारी तरफ़ दुल्हन के साथ एक सहायिका लगा देते थे। ससुराल में दुल्हन अपनी इस सहायिका को अपनी ज़रूरतें बता सकेगी। इस सहायिका को हमारी तरफ़ 'लोकनी' कहते थे। सो इस

यात्रा में कमोवेश लेखक की भूमिका मुझको 'लोकनी' वाली लगती है। बहरहाल, भारतीय मूल के कैनेडा वासियों का प्यार यहाँ भी मन को भिगोता है- धर्मपाल महेन्द्र जैन जी, हिन्दी चेतना के प्रमुख संपादक श्याम त्रिपाठी जी, ढींगरा फ़ाउण्डेशन की डॉ. सुधा जी, कैनेडा में श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी जी, ओम जी आदि। परदेश में महेश जी का योग, मेपल के पत्ते। डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी (काफी पहले धर्मयुग में इनकी रचनाओं पर ख़ास ध्यान गया था, सरनेम मिलता-जुलता होने के कारण)। और कैनेडा में रेस्तराँ का नाम मिष्ठान्न! वाह!

मुख्य कार्यक्रम स्कारबरो सिविक सेंटर के सभागार में। शैली गिल यदि कैनेडा के राष्ट्रगान में शामिल हैं तो एक श्वेत विदेशी महिला भारतीय राष्ट्रगान को शुद्ध-शुद्ध गुनगुना रही हैं। अमेरिका और कैनेडा की साझी भूमि पर हिन्दी का एक यज्ञ। रचनाकार से अधिक रचना की चर्चा। तीन साहित्य सेवियों का अंतर्राष्ट्रीय सम्मान! फिर कवि-सम्मेलन। बाद में नियाग्रा की सैर, रेनबो पुल, पुल की दूसरी तरफ़ अमेरिका का बफैलो शहर, दोनों तरफ़ के कई-कई फॉल! ज़्यादा ख़बसूरत कैनेडा वाले। और कैनेडा की तूफ़ानी बरसात। टी.वी. स्टूडियो में साक्षात्कार। समोसे! कैनेडा की आवारगी को कुछ अधिक अंक देने पड़ेंगे, श्याम जी के घर में सुरेखा जी की व्यवस्था और सुधा जी का लेखक को राखी बाँधना! ये बहनें परदेस में देस को जी रही हैं, जीवित रखे हुए हैं। और वहाँ भी चर्च की गुम्बद पर सोना चढ़ा है।... और वापसी। लेखक का कौशल यह कि कैनेडा का ज़र्रा-ज़र्रा जीवंत हो उठता है।

और तीतर की तीसरी उड़ान, अमेरिका में बंजारापन। एक तरह से अमेरिका की यह यात्रा एक वर्ष पूर्व की कैनेडा यात्रा का अगला संस्करण था। ढींगरा फ़ाउण्डेशन इस बार चित्रा मुद्गल और डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को अमेरिका में सम्मानित करने वाला था, इस पूरे कार्यक्रम के संयोजक के रूप में लेखक साथ थे। एक बात ध्यातव्य है। विदेशी दूतावास उनके वीज़ा आदि को झट निपटाते हैं जिन्हें उनके देश में सम्मानित किया जाना है। सम्मान के प्रति इस सम्मान की प्रशंसा की जानी चाहिए। नॉर्थ कैरोलाइना के मोर्रिस्विल्ल में पहुँचना था तीनों को। लेखक ने यह बताकर हमारी जानकारी बढ़ाई है कि किसी अमेरिकी स्थान के नाम के अंत में 'विल्ल' जुड़े होने का अर्थ है कि यह स्थान कभी 'विलेज' याने गाँव था। गाँव के शहरीकरण के बाद भी उसकी याद जुगाए रहना स्तुत्य है। अमेरिकी जहाज़ में चिप्स और जूस कॉम्प्लीमेंटरी है। चित्रा जी भी ले आईं और फिर डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी जी और सुबह-सुबह नाश्ते में पोहा! मालवी लेखक का तो दिन बन गया। न्यूयार्क के बाद राले-डरहम विमानपत्तन। और अब चीड़ के ऊँचे पेड़ों से घिरे घर में सुधा जी का आतिथ्य! अमेरिका में कचौरियाँ और गप्प!

हाँ, अमेरिकी बंजारेपन को एक नंबर और ज़्यादा, रक्षाबंधन का दिन और अपने मुँह बोले भाई (लेखक) की कलाई पर रक्षा सूत्र बाँधती सुधा जी, पूरे विधि-विधान के साथ। और प्रवासी भारतीयों की गर्मजोशी- सुरेखा जी, श्याम त्रिपाठी, उषा प्रियंवदा (जिन्हें हम 'वापसी' के कारण भूल नहीं सकते), शशि पाधा-श्रीमान् पाधा, रेखा जी, कुबेरिनी जी, और भारत से आए प्रमोद जी, शिकागो से पधारे डॉ. श्रीवास्तव (डॉ. ज्ञान के सखा)। ज्ञान जी की 'नरक-यात्रा और हम न मरब को कौन भूल सकता है भला!'

रेखा भाटिया जी का किचेन का दायित्व सँभालना। और अब मुख्य कार्यक्रम। अमेरिकी और भारत के राष्ट्रगान। स्वाति गिरगिलानी जी का कुशल द्विभाषी संचालन। मंच पर मेयर और अन्य प्रमुख सभासद। लेखक ने उचित ही यह सवाल उठाया है कि वहाँ अमेरिका के साहित्यिक समारोह में तमाम विशिष्ट अधिकारी शिरकत कर रहे हैं। हम यह तमीज़ कब सीखेंगे? अगले खंड का संचालन लेखक के द्वारा। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, चित्रा जी और स्वयं लेखक का सम्मान।

ओम जी का पर्यटन-स्थलों पर घुमाना। सागर-तट। डॉलर ट्री से सामानों की ख़रीद। सुधा जी का, याद कर-कर के, हर एक के घर के लिए गिफ़्ट। यह नेह-छोह भिगोता है। और फिर वापसी।

दोहराता हूँ, ऐसे रुचिकर सहज यात्रा-विवरण कम मिलते हैं जिन्हें एक साँस में कोई पढ़ जाए।

000

किस्सागोई का भरपूर उपयोग
(धर्मपाल महेंद्र जैन)

सांख्यिकी के हिसाब से सबसे ज़्यादा लोग घर में मरते हैं और सबसे कम लोग यात्रा करते हुए। अंग्रेज़ी की इस उक्ति का निष्कर्ष है आप जीवन का आनंद लेना चाहें तो यात्राएँ करते रहें और जब यात्रा नहीं कर पा रहे हों तो यात्रा संस्मरणों और छायाचित्रों से गुज़रने का सुकून लें। तो चलिए, आज हम सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज सुबीर के साथ ब्रिटेन, कनाडा और अमेरिका की यात्रा पर चलते हैं, उनकी हाल ही में आई किताब 'यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं' के साथ। कहानी-ग़ज़ल संग्रहों, 'अकाल में उत्सव' जैसे चर्चित उपन्यास और पटकथा लेखन से समृद्ध पंकज ने यहाँ अभिनव शैली घड़ी है, यह किताब जीवंत कमेंट्री शैली में है।

'यायावर हैं', इस किताब के पहले अध्याय में पंकज अपनी पहली हवाई यात्रा पर लंदन जा रहे हैं, विमान आगे भाग रहा है और मन पीछे। वे विमान में चालीस हज़ार फीट की ऊँचाई पर पाँव फैला कर लंबी तान सोने का आनंद उठाते हैं और वहाँ सपने देखते हैं। टेम्स नदी के ऊपर से गुज़रते हुए उनका व्यंग्यकार जाग जाता है और कहता है 'यदि नदियाँ इतिहास बोल कर सुना सकतीं तो शायद कई सारे झूठ आज सच की कुर्सी पर बैठे हुए नहीं होते।' पंकज यहाँ कथा यूके का इंदु शर्मा कथा सम्मान लेने आए हैं पर श्रोताओं में उनकी ग़ज़लें गूँजती हैं। ब्रिटेन के जनजीवन का चित्रण करते हुए वहाँ मेपल ट्री के पास लगी उदास बेंच उन्हें बुलाती है और लंदन की शॉपिंग मॉल उन्हें लुभाती है। डायरी शैली में लिखी गई दिनचर्या में खानपान और मुलाकातों के बीच लंदन के भिखारी, घरों की ढालदार छतें और चिमनियाँ, हाउस ऑफ कॉमंस की भव्यता सब उनके साथ होती हैं। भोपाली आदमी लंदन में भी भोपाल ढूँढ़ने लगता है और ऐसे घरेलू माहौल में पंकज आपको सारा लंदन घुमा लाते हैं। हमारी पीढ़ी के चर्चित कथाकार तेजेंद्र शर्मा और ब्रिटेन स्थित कई हिंदी साहित्यकार इस यात्रा में जुड़कर इसे रोचक बनाते रहते हैं।

किताब के दूसरे अध्याय 'आवारा हैं' में आपको पंकज से यही उम्मीद करना

चाहिए। सच कनाडा यात्रा ऐसी ही है। सवेरे से भारत से चलकर वे लंदन और टोरंटों में भी दिन ही देख रहे हैं, 24 घंटे का दिन। दरअसल, आप भारत से चलें तो अक्षांश-दक्षांश बदलते रहते हैं और उस हिसाब से भारतीय समय के सापेक्ष विदेश में समय भी। विलोपित होते समय की गणना करते हुए पंकज कहते हैं 'भूगोल, गणित पर भारी पड़ रहा है।' इस यात्रा में उन्हें टोरंटों आने के लिए लंदन से दूसरा विमान पकड़ना है। विमान की खिड़की से वे टोरंटो शहर का विस्तार नाप लेते हैं। यहाँ बिजली के सॉकेट, गाड़ीचालन आदि अमेरिकन पद्धति के हैं, ब्रिटिश या भारतीय पद्धति के नहीं। यहाँ की गिलहरियाँ उतनी डरपोक नहीं है जितनी भारतीय। गर्मियों में यहाँ सूरज साढ़े पाँच बजे आ धमकता है और रात नौ बजे बाद तक रहता है, दिन का रात में या रात में दिन का होना पंकज को विस्मित करता है। ऐसी सूक्ष्म अनुभूतियाँ इस किताब को विशिष्ट बनाती हैं। पंकज यहाँ ढींगरा फ़ाउण्डेशन - हिंदी चेतना सम्मान कार्यक्रम का संचालन कर रहे हैं जिसमें महाकवि प्रो. हरिशंकर आदेश, कथाकार महेश कटारे और कवयित्री सुदर्शन प्रियदर्शिनी को सम्मानित किया जाना है। टोरंटों ऐसा शहर है जिसमें दुनिया के सभी धर्मों, खानपान, संस्कृति और सभी भाषाओं के लोग कैनेडियन कानून को अंगीकार करते हुए सौहार्द्र के साथ रहते हैं। यहाँ की सरकार इस बहुलतावादी संस्कृति की पोषक है, उनकी ओर से भी रचनाकारों की प्रशस्ति के लिए प्रतिनिधि आए हैं। यह सरकारी विनम्रता पंकज को भाती है। समयबद्ध और अनुशासित श्रोताओं के उत्साह को याद करना पंकज नहीं भूलते। टोरंटों से नायाग्रा जलप्रपात की यात्रा में वे यहाँ के मकान निर्माण, सड़क यातायात, अंगूर के खेतों, घने जंगल और यहाँ की ठंड से रू-ब-रू करवाते हैं। उनके सहयात्री महेश कटारे और स्थानीय मेज़बान हिंदी सेवी श्यामजी-सुरेखाजी त्रिपाठी के साथ कनाडा अपना अध्याय लिखवा जाता है।

तीसरा अध्याय 'बंजारे हैं' में पंकज की अमेरिकी यात्रा के सहयात्री हैं चित्राजी मुद्गल और ज्ञानजी चतुर्वेदी, विश्वस्तरीय रचनाकार। अमेरिकी दूतावास में वीज़ा की लाइन हेतु कड़ी सुरक्षा जाँच से गुज़रते हुए ज्ञानजी कहते हैं 'पंकज इनको बता दो कि हमारे पास दाँत और नाखून भी हैं।' अमेरिकी टर्मिनल पर एयरट्रेन के रोचक सफ़र, छोटे से विमान पर अधेड़ से भी अधिक उम्र की परिचारिका के साथ राले-डरहम एयरपोर्ट के सफ़र से लेकर सुधाजी-ओमजी ढींगरा के घर पहुँचने की यात्रा का पहला चरण ख़त्म होता है तो वे अपने सूटकेस में अमेरिकी सुरक्षा विभाग का पत्र पाते हैं जिसमें लिखा है कि 'जाँच हेतु आपके लगेज का ताला तोड़कर देखा गया है, इसके लिए क्षमा।' अमेरिका में आम सरकारी व्यवहार ऐसा ही है, पहले दादागिरी और बाद में सॉरी। हिरण, बीमार पेड़, रामलीला, कार की मशीनी धुलाई, भारतीय परिधान पहने स्थानीय मेयर, शास्त्रीय नृत्य, ज्ञानजी का व्यंग्य पाठ, उषा प्रियंवदाजी से मुलाकात ऐसे छोटे-बड़े प्रसंग ढींगरा फ़ाउण्डेशन के अंतर्राष्ट्रीय सम्मान आयोजन में शामिल हो जाते हैं। ट्राली पर जाते मोबाइल घर, नेटिव लोगों की बस्तियाँ, अटलांटिक महासागर, डॉलर स्टोर, अमेरिका में जन्माष्टमी आदि पंकज की खोजी निगाहें ढूँढ़ लेती हैं। पृष्ठों के ऊपर यथास्थान लगे लगभग अस्सी छायाचित्र इस किताब के कहन को प्रामाणिक बनाते हैं।

पंकज अपनी क़िस्सागोई का भरपूर उपयोग करते हुए इन यात्रा संस्मरणों को लंबी कहानी की तरह सुनाते जाते हैं। कहीं इनके सहयात्री इन कहानियों के पात्र बनते हैं तो कहीं मेज़बान। पर इस बहाने ब्रिटेन, कनाडा और अमेरिका के आम जनजीवन को पंकज ने ख़ूबसूरती से अपने अंदाज़ में बयान किया है। चुहल और ठिठोली से भरी पंकज की शैली पर मुस्कुराता पाठक, भाषा की प्रवाही ताज़गी को निरंतर अनुभव करता है। एक बहुत अच्छी बात, सभी स्थलों के नाम अपने उच्चारण के अनुरूप ठीक तरह से हिंदी में लिखे गए हैं। पहली बार इन देशों की यात्रा करने वालों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण किताब है। पंकज बहुत सारे देशों की यात्रा करें और अपने संस्मरणों से हिंदी के मौलिक यात्रा साहित्य को समृद्ध करें, शुभकामनाएँ।

000

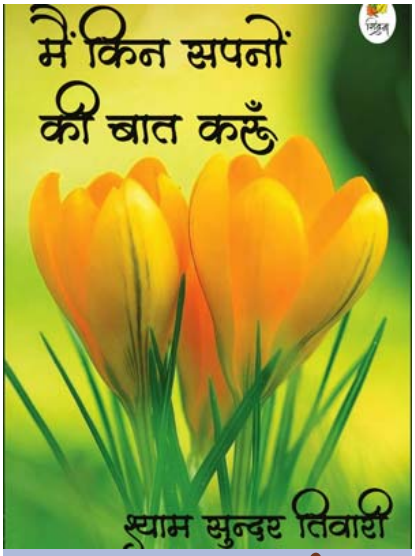

पुस्तक चर्चा

मैं किन सपनों की बात करूँ

लेखक : श्याम सुन्दर तिवारी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

नवगीतकार श्याम सुन्दर तिवारी का नवगीत संग्रह 'मैं किन सपनों की बात करूँ' नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित होकर आया है। श्याम सुंदर तिवारी के गीत नये संदर्भ लेकर उपस्थित होते हैं और वर्तमान समाज की दुखती रग पर उँगली रखते हैं, जिसमें जीवन की जद्दोजहद में वह एक युग से उलझा हुआ है। उनके गीतों में व्यक्त व्यथा अभिव्यक्ति में साधारण होते हुए भी असाधारण है। गीत में समाहित सौंदर्य अगली ही पंक्ति में अप्रत्याशित भाव लेकर सामने आ जाता है जो नवगीतों में विरल है। श्याम सुंदर तिवारी के गीतों की एक विशेषता यह भी है कि निराशा से भरे दो पद के बाद वे अंतिम पद में आशा से भरी ऐसी पंक्तियाँ लिख देते हैं जो हिम्मत और उत्साह से भर देती हैं। उन्हें पढ़कर लगता है कि जीवन और जीवन का संघर्ष ऐसा भी नहीं है, जिससे उबरा न जा सके। इन गीतों में बेड़ियों की कर्कश ध्वनि है तो चूड़ियों की खन-खन भी सुनाई देती है। अपने समय को अपने गीतों में दर्ज करते उनके गीत सहारा बनकर हौसला भी देते हैं।

000

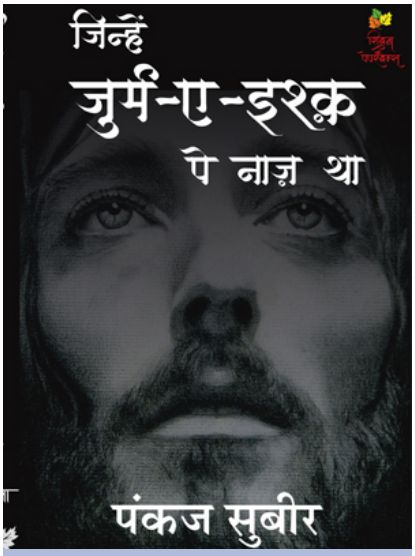

केन्द्र में पुस्तक

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

(उपन्यास)

समीक्षक :

डॉ. प्रज्ञा रोहिणी

डॉ. सीमा शर्मा

कैलाश मण्डलेकर

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. प्रज्ञा रोहिणी, ई.112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स, सैक्टर-18 रोहिणी, दिल्ली
ईमेल : pragya3k@gmail.com
मोबाइल : 9811585399

डॉ. सीमा शर्मा, एल-235, शास्त्रीनगर, मेरठ (उ.प्र.)250004
मोबाइल : 9457034271
ईमेल : sseema561@gmail.com

कैलाश मण्डलेकर, 15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड, माता चौक खंडवा म. प्र. 450001
मोबाइल: 9425085085, 9425086855
ईमेल: kailash.mandlekar@gmail.com

धर्म के रेगिस्तान में इश्क का नख्लिस्तान
(डॉ. प्रज्ञा रोहिणी)

इश्क जबसे वजूद में आया उसने सत्ताओं की दमनात्मक कार्यवाहियों का सामना किया। जैसे-जैसे यह दमन बढ़ा इश्क़ और अधिक बाग़ी हुआ। बग़ावत को इश्क़ का बायप्रोडेक्ट कह सकते हैं। इस बग़ावत ने व्यवस्थाओं की स्थापित दुनिया को तहस-नहस किया। कथाकार पंकज सुबीर का 'ये वो सहर तो नहीं, और 'अकाल में उत्सव' के बाद शिवना प्रकाशन से प्रकाशित तीसरा उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' एक ऐसे समय में आया है जहाँ धार्मिक संकीर्णताएँ इंसानविरोधी क्रूरताओं के लिए आज़ाद हैं। जहाँ सत्ता की सरपरस्ती में साम्प्रदायिक विद्वेष को राष्ट्र प्रेम का चोगा पहनाया जा रहा है। जहाँ मनुष्य की धार्मिक पहचान उसके मनुष्य होने की कसौटी बना दी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज हम सैम्युअल हटिंगन के सभ्यताओं के संघर्ष में रह रहे हैं। ऐसे में यह लाज़िमी है कि हम अपने समय के सर्वाधिक विवादास्पद विषयों पर खुलकर चर्चा करें। उन धार्मिक-सामाजिक पूर्वाग्रहों की जड़ों को पहचानें जिनसे हमारी समझ, सोच और क्रियाएँ तय हो रही हैं। यह उपन्यास मनुष्य समाज के लिए धर्म की आवश्यकता को भी विचार के केंद्र में लेकर आता है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' वास्तव में इन्हीं बहसों के बीच पाठकों को लेकर जाता है। नई सदी के पहले दशक के समय को लेकर लिखा गया यह उपन्यास दरअसल 1990 के आस-पास के दौर से अपनी शक्ल अख़्तियार करता है। कहने को तो यह केवल एक साल के पहले सोमवार की दोपहर से शुरू हुई अगली सुबह तक की कहानी है जहाँ रात इसकी पृष्ठभूमि है पर इस रात में घटित घटनाएँ बरसों से आकार ले रही थीं। 1990 का यह पूरा दशक एक ओर उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण जैसे ऐतिहासिक परिवर्तनों का समय है तो दूसरी ओर राममंदिर बाबरी मस्जिद विवाद की घटना से। यदि हम 'अकाल में उत्सव' की बात करें तो 1990 से चला उदारीकरण और किसानी आत्महत्याओं का दुष्चक्र, किसानों की पीड़ा उसमें आकार लेती है तो इस नए उपन्यास का केंद्र भारत में रहने वाली दो अस्मिताओं का द्वंद्व है। इनमें सहअस्तित्व खोजना जैसे कथाकार का सरोकार है।

जहाँ तक बात कहानी के ताने-बाने की है; तो कहानी रामेश्वर और उसके सहयोगी और फिर पारिवारिक सदस्य शाहनवाज़ के इर्द-गिर्द घूमती है। एक क़स्बे में रामेश्वर एक कोचिंग सेंटर चलाता है। वह किसी प्रकार की धार्मिक-जातिगत संकीर्णता को नहीं मानता और इसीलिए उसने अपना उपनाम भी त्याग दिया है। शाहनवाज़ उसके बचपन के दोस्त का बेटा है जो अनिच्छा से एक हिंदू मालिक के कोचिंग सेंटर में दो-तीन बरस रहकर बदल जाता है। अब उसके दो पिता हैं-शमीम और रामेश्वर। रामेश्वर की बेटियाँ उसे राखी बाँधती हैं। यह कहानी उस रात की कहानी है जब मुस्लिम बस्ती ख़ैरपुर में रहने वाले शाहनवाज़ की पत्नी हिना की पहली संतान का जन्म होने वाला है और उसी दिन उन्मादी भीड़ ख़ैरपुर पर हमला कर देती है। रामेश्वर और शाहनवाज़ दोनों का प्रयास है कि हिना सुरक्षित रहे। संतान का जन्म हो पर परिस्थितियाँ पूरी तौर पर प्रतिकूल हैं। घटना के दो केंद्र हैं जहाँ से पूरी कथा संचालित हो रही है एक वो क़स्बा जहाँ से रामेश्वर कभी ज़िला कलेक्टर से तो कभी पुलिस अधीक्षक से मदद माँगता है। यही नहीं दंगे को काबू करने आ

रही फोर्स के एडशिनल एस.पी भारत यादव से भी। रामेश्वर रसूख वाला आदमी है जिसका कलेक्टर से भी नाता है और भारत यादव तो उसका पुराना छात्र ही रहा है। घटना का दूसरा केंद्र ख़ैरपुर है जहाँ शाहनवाज़ अपने परिवार की सुरक्षा में मुस्तैद है। दोनों के बीच का पुल फ़ोन पर दी ली जा रही सूचनाएँ और तसल्ली है। अचानक घिर आए दंगे के कारण रामेश्वर का वहाँ जा पाना मुश्किल है। फोर्स के आने के बाद वह ख़ैरपुर जाता है और बड़ी कठिनाई से सबको बचा लाता है। तमाम मुसीबतों के बाद हिना और शाहनवाज़ के घर बेटा पैदा होता है।

मेरा फिर से पंकज जी के पाठकों से अनुरोध रहेगा कि उनकी जिन कहानियों में वह अब तक रहस्य का संसार और जिज्ञासा के उलझे रेशे देखते आए हैं, वे इस उपन्यास के ताने-बाने को सुनकर इसे एक्शन थ्रिलर समझने की कतई भूल न करें। ऐसी अपेक्षा उपन्यास के विचार-प्रवाह को क्षीण ही नहीं बल्कि ध्वस्त करेगी। यह उस जॉनर का उपन्यास नहीं है। थ्रिलर में विचार-विश्लेषण की गुंजाइश नहीं होती। इस उपन्यास में थ्रिलिंग घटनाएँ ज़रूर हैं पर ये उपन्यास वैचारिक उपन्यास है और पंकज जी की कथा यात्रा का अगला सोपान है।

यह उपन्यास एक रात की कहानी होते हुए भी सभ्यता समीक्षा का काम करता है। इसकी प्रयोगधर्मिता अतीत से वर्तमान में आवाजाही के क्रम में राजनीतिक-धार्मिक-सांस्कृतिक मुद्दों से मुठभेड़ करती है। इस दृष्टि से कथाकार ने इतिहास की पड़ताल भी की है शोध के साथ। मेरा मानना है फिक्शन में ऐतिहासिक घटनाओं का आना पुनरावृत्ति के तौर पर नहीं होता। घटनाएँ अकेले नहीं आतीं वे अपने साथ उस समय की सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक उलझनें भी लेकर आती हैं। ऐसी उलझनें जो उस समय नहीं सुलझ पाईं। अक्सर यही होता है कि हम अपने समय के अंधेरों में अतीत के पन्नों को उलटते हैं यह समझने के लिए कि वर्तमान के अंधेरे के बीज कहाँ हैं। याद कीजिए मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'अंधेरे में' को। जहाँ कथानायक गांधी से संवाद करता करता है। इस उपन्यास में इतिहास के पन्नों से निकलकर वर्तमान के अंधेरे में तीन पात्र कथानायक रामेश्वर से संवाद करते हैं। ये पात्र हैं - मोहम्मद अली जिन्नाह, नाथूराम गोडसे और मोहनदास करमचंद गांधी। ये तीनों पात्र भारत के तीन विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मोहम्मद अली जिन्नाह प्रतीक हैं अस्मिता के नाम पर मुस्लिम अस्मिता को तरजीह देने विचार के, नाथूराम गोडसे हिंदुत्त्ववादी अस्मिता के विचार के और गांधी प्रतीक हैं भारत के समावेशी विचार के। जिन्नाह जिन्हें पाकिस्तान का जनक कहा जाता है और गोडसे जिसने गांधी की हत्या की। दोनों बहुसंख्यक के वर्चस्व को स्थापित करना चाहते थे, इसलिए जिन्नाह मानते थे कि जहाँ मुस्लिम बहुसंख्या में हैं वहाँ पाकिस्तान बने और गोडसे की विचारधारा यह मानती थी कि जहाँ हिंदू बहुसंख्या में हैं वहाँ हिंदू राष्ट्र बने। तो एक मायने में ये दोनों विचारधाराएँ भले ही एक दूसरे से टकराहट की मुद्रा में दिखाई देती हैं पर वास्तव में हैं एक ही। ऐसे में मन में सवाल उठता है कि क्या इन दोनों विचारों से आप भारत को समझ सकते हैं या कोई दूसरी भारतवादी विचारधारा भी है जिससे हम वास्तविक भारत को जान-समझ सकते हैं क्योंकि इन दोनों विचारधाराओं में एक इस्लामवादी है तो दूसरी हिंदुत्ववादी। सवाल है हम किसे वास्तविक भारतवादी कहें? जब भारतवादी को हम व्याख्यायित करेंगे तो गांधी और नेहरू का ज़िक्र आएगा। नेहरू ने सवाल किया था-कौन है भारतमाता? और जवाब था-जनता यानी हम- आप, सब लोग। और जब वो जनता कहते हैं तो उसमें सभी प्रकार की जनता आती है चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, सिक्ख हो या ईसाई, जैन हो या बौद्ध। ईश्वरवादी भी और निरीश्वरवादी भी। मेरी समझ से यह वो विचार है जो भारत में विभिन्न अस्मिताओं के साथ पनपा-विकसित हुआ। जिसे बाद में अम्बेडकर ने संविधान के रूप में मूर्त किया। यह संविधान कहता है कि देश धर्म, जाति, लिंग, सम्प्रदाय, भाषा, रंग, नस्ल के बंधनों से मुक्त होगा। यही भारतवाद की स्थापना का मूलाधार है। मेरा मानना है कि आधुनिक भारत के विचार के लिए भारतवादी होना ज़रूरी है, जिसकी प्रस्तावना संविधान में दिखाई देती है। यही प्रस्तावना आधुनिक भारत के विचार का आधार है। कहना न होगा कि आज जब देश में साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, मंदिर और मस्जिद की लड़ाई इंसानी ज़िंदगियों की क़ीमत पर लड़ी जाती है, जब लिंचिग होती है, जब देशभक्त और देशद्रोही का सवाल खड़ा किया जाता है जब गुजरात के ऊना में सरेआम दलितों को पीटा जाता है, जब गाय की क़ीमत मनुष्य से कहीं अधिक हो जाती है तब यह लाज़िमी था कि भारतवाद के विचार को फिर से जाना समझा जाए। सम्भवत: यही वह पृष्ठभूमि है यही तनाव है यही बेचैनी जो पंकज सुबीर को मजबूर करती है 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' लिखने के लिए।

यह उपन्यास हमारे समय के ऐतिहासिक सवालों को बहस के बीच खड़ा करता है। ये सवाल हैं धार्मिक ध्रुवीकरण के, साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के, जातिगत शुद्धतावाद के, लैंगिक और नस्लीय पूर्वाग्रहों के। इसके लिए पंकज सुबीर इतिहास के बीच गहरे धँसे हैं। याद रखिए मित्रो कि इतिहास कोई सजा-सँवरा उपवन नहीं है यहाँ मानवीय सदाशयताओं की नदियाँ हैं तो पूर्वाग्रहों के रेगिस्तान भी। इंसानी उदारताओं की झीलें हैं तो इंसानी रक्त के दलदल भी। ऐसे परिदृश्य में न केवल इतिहास की परीक्षा होती है बल्कि रचनाकार की परीक्षा भी होती है कि वह कैसे अपने धार्मिक-सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक बोझ से मुक्त होकर इतिहास में से व्यापक मानवता के सूत्रों को वर्तमान के लिए प्रासंगिक करे।

वर्तमान का परिदृष्य यह है कि भारतवादी भारतीय अस्मिता के समक्ष मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा वाली अस्मिता को खड़ा किया जा रहा है। कोशिश यह की जा रही है कि देश में ये दो अस्मिताएँ बनें। 90 के दशक में एक नारा बहुत ज़ोर से उछला था कि जो हिंदू हित की बात करेगा वही देश पर राज करेगा। भारतवादी अस्मिता के मद्देनज़र देखें तो अब हिंदू हित और भारतीय अस्मिता का हित दो भिन्न अवधारणाओं के रूप में दिखने लगेंगे। याद कीजिए 1940 के आस-पास जर्मनी में जब नाज़ीवाद हावी हुआ तब उसके परिणाम पूरे इतिहास जर्मन होलोकॉस्ट के रूप में दिखाई देते हैं। व्यापक स्तर पर

यहूदियों का डीह्यूमनाइजेशन या अमानुषिकीरकण किया गया। यदि मनुष्य किसी मनुष्य को अपने सामने मारता है, सोच समझकर मारता है उसके बाद उसके अंतरमन में कोई प्रतिक्रिया नहीं हो रही वह यह मान कर चलता है कि यह उसका नैतिक, मानवीय और राष्ट्रीय दायित्व है तो मानकर चलिए आपने पूरे वर्ग का अमानुषीकरण कर दिया है। उस समय साठ लाख यहूदी मारे गए। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इनके साथ वे जर्मन भी मारे गए थे जो नाजीहित के विरोध में खड़े थे। अभी पिछले दिनों मैंने पढ़ा कि हिटलर के समय में शिपयार्ड का कर्मचारी ऑगस्त लैंडमेसर के बारे में। यह एक ऐसा जर्मन था जिसने हिटलर को सैल्यूट नहीं किया। एक फ़ोटो है जिसमें सब सैल्यूट कर रहे हैं पर वो हाथ बाँधे खड़ा। उसने एक यहूदी लड़की से प्रेम विवाह किया। उसकी ज़िंदगी बर्बाद कर दी गई। उसे सज़ा हुई और खदेड़ा गया। अंतत: वो जेल में मर गया। पर अंत तक उसने सैल्यूट नहीं किया। कहने का मतलब है कि जब एक जाति अमानुषिक होती है तो वह दूसरी जाति के प्रति ही अमानुषिक नहीं होती वह हर उस विचार के प्रति अमानुषिक होती है जो उसका विरोधी है।

समकालीन संदर्भों में इस उपन्यास- 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' को पढ़ते हैं तो इसका शीर्षक फ़ैज़ की नज़्म से लिया गया है। फ़ैज़ सिर्फ एक शायर नहीं प्रतिरोध की आवाज़ है। फ़ैज़ इस्लामिक पाकिस्तान में हिंदू नहीं हैं। वह इस्लामिक पाकिस्तान में मुसलमान है, वैसे ही मंटो इस्लामिक पाकिस्तान में मुसलमान हैं, तस्लीमा नसरीन इस्लामिक बंगलादेश में मुसलमान हैं। जब हम 2019 के संदर्भ में उन आवाज़ों को सुनते हैं तो पाश, पंसारे, कलबुर्गी, गौरी लंकेश, पेरुमाल मुरगन की आवाज़ें हैं वो आवाज़ें कोई 'हिंदू राष्ट्र' में मुसलमान की आवाज़ें नहीं है ये हिंदू राष्ट्र में भारतीयों की आवाज़ें हैं। ये सभी भारतवादी आवाज़ें हैं जो साम्प्रदायिकता से परे हैं। यहाँ भारतवादी होना संविधानवादी होना है। उपन्यास में नाथूराम गोडसे भी आता है, जो गांधी का हत्यारा है, पर गोडसे के मारने से गांधी नहीं मरते वे एक जीवन शैली, एक सोच, एक विचार के तौर पर जीवित रहते हैं। कथानायक रामेश्वर गोडसे के तर्कों को ख़ारिज करता है। पर चिंता की बात यह है कि आज गोडसे को फिर से जीवित किया जा रहा है, एक नए तथाकथित राष्ट्रवादी चोगे में। यह कहीं न कहीं उपन्यासकार और पाठकों को चिंतित करता है। मन में सवाल उठता है कि क्या हम तानाशाही के दौर में तो नहीं जा रहे? उपन्यास कुछ बड़े समकालीन विवादास्पद राजनीतिक-सामाजिक मुद्दों को उठाता है, ये मुद्दे हैं राम मंदिर-बाबरी मस्जिद, गौ-रक्षा, धार्मिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के। ये सभी मुद्दे अपनी प्रकृति में धार्मिक-सामाजिक दिखाई देते हैं, पर हैं वास्तव में राजनीतिक ही। वे इन मुद्दों की राजनीति और अर्थशास्त्र को विस्तार से समझाते हैं। पंकज सुबीर न केवल इन मुद्दों को उठाते हैं बल्कि क़ुरान, हिंदू धर्मग्रंथों आदि के उदाहरणों से इनके सम्भावित समाधानों को भी प्रस्तुत करते हैं। आप इन समाधानों से सहमत-असहमत हो सकते हैं। पर एक बात से असहमत नहीं हो सकते कि आज इन मुद्दों पर सोचने-विचारने की ज़रूरत है।

पूरी बहस को उजागर करने के लिए ही कथाकार ने फैंटेसी के शिल्प का सार्थक प्रयोग किया है। साम्प्रदायिक दंगे के दौरान मानसिक तनाव में उनींदे होने पर रामेश्वर फ़ोन पर नाथूराम गोडसे, मोहम्मद अली जिन्नाह और मोहनदास करमचंद गांधी से बात करता है। बात क्या पूरी बहस है। अपना पक्ष रखने की कोशिश और उनका पक्ष सुना जाना भी। नाथूराम और जिन्नाह से पूरी असहमति और रामेश्वर गांधी से सहमत दीखता है। यही कारण है कि बाकी दोनों के फ़ोन एक कड़वाहट से समाप्त होते हैं वहाँ गांधी सादगी, सच्चाई और साहस से अपनी बात पूरी करते हैं। उपन्यास में दंगों के मनोविज्ञान को समझाने की भी कोशिश की गई है। किस तरह कभी किसी अपराध, कभी बीमा के लाभ या कभी ज़मीन के कारण व्यक्तिगत बैर को दंगे की शक्ल दी जाती है। इस अमानवीयता के बरक्स कथानायक धर्महीन समाज की वकालत करता है। अक्सर यह कह दिया जाता है कि धर्म मनुष्य को नैतिक, मानवीय और शांतिप्रिय बनाता है पर कथानायक रामेश्वर कहता है कि, ''केवल सात से आठ वर्षों के छोटे से समय में ही एक करोड़ लोगों का वध इस धर्म ने कर दिया...पूरे पाँच हज़ार साल का इतिहास खोलने बैठेंगे, तो जाने कितना बड़ा हो जाएगा यह आँकड़ा, इतना ख़ून बहेगा कि उसे धोने के लिए सारी नदियों का पानी कम पड़ जाएगा।'' एक प्रकार से पंकज धर्म की मानवीयता के दावे के बरक्स इतिहास के आँकड़े रख देते हैं जिनसे धर्म की आवश्यकता पर ही सवाल उठ जाता है।

पंकज सुबीर को लगातार पढ़ने वालों और एक ख़ास कथारस को पैमाना बनाने वालों के लिए यह उपन्यास चुनौती है क्योंकि यह पंकज सुबीर के अब तक के नैरेशन स्टाइल से आगे का पड़ाव है यह प्रयोग की एक नई ज़मीन पर पाठक से एक नए तरीके की गंभीरता और वैचारिकता की माँग करता है। उसका पूरा बल बहस उठाने में, मुद्दों की तर्कसंगतता खोजने में, ऐतिहासिक भूलों की व्याख्या और विश्लेषण करने में लगा है। इसलिए लगभग तीन सौ पृष्ठों को पढ़ने वाले पाठक को उपन्यासकार से दूसरी उम्मीद रखनी होगी और इसकी वाजिब वजहें उपन्यास के वितान में ही मौजूद हैं।

यह उपन्यास उस बिंदु पर समाप्त होता है जहाँ दंगे के भयावह तनाव से भरी रात गुज़र जाती है और एक बच्चे का जन्म होता है। अंत के बेहद भावुक दृश्य में बच्चे का नाम मोहम्मद भारत खान रखा जाता है। एक तरह से यह उपन्यास में एक भविष्य के भारतवादी विचार का नामकरण है क्योंकि वह बच्चा बड़ा होने पर यह नहीं कहेगा कि गर्व कहो कि हम हिंदू हैं या गर्व कहो कि हम मुस्लिम हैं। वह गर्व से यह कहेगा कि वह भारतीय है। यह धार्मिक संकीर्णता के वर्तमान दौर में एक और गुनाहगार का बढ़ना भी है जो बड़ा होने पर इंसानियत से इश्क़ के जुर्म पर नाज़ करेगा, जो ज़माने की संकीर्ण सोच से बग़ावत का जज़्बा रखेगा। जो बाग़ी सपने देखेगा, जो धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, लिंग से परे एक भारत की निर्मिति देखेगा। जहाँ बहुसंख्यकवाद के दबाव में जुबानें न सिली जाएँगी। आने वाली नस्लों को यह भरोसा दिया जाएगा कि -बोल कि लब आज़ाद हैं।

000

आश्वस्त रहिए गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई
(डॉ. सीमा शर्मा)

पंकज सुबीर का रचना क्षेत्र बहुत व्यापक है, वह हर बार एक नया विषय उठाते हैं और अपने अनुभव एवं बौद्धिक रचनात्मकता के सहारे उसे उचित स्थान तक लेकर जाते हैं। इन रचनाओं में विश्वसनीय तथ्यों का समावेश इन्हें दस्तावेज़ बना देता है। पंकज सुबीर का सद्य प्रकाशित उपन्यास ''जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था'' उनकी अन्य रचनाओं से सर्वथा भिन्न प्रकृति का है। इसमें जिन तथ्यों और सूचनाओं का उपयोग किया गया है, उन्होंने इसे एक अलग ही स्तर पर पहुँचा दिया है। इसे पढ़ने के लिए पाठक को बहुत धैर्य की आवश्यकता है। इसमें अनेक तथ्यात्मक सूचनाएँ हैं जिन्हें पढ़ने, समझने और गुनने में समय लगता है। पाठक यह सोचने को भी विवश हो जाता है कि इतने तथ्यों का संकलन और कथा के अनुरूप, समय पर उनका सही उपयोग आसान नहीं।

कहने को तो इस उपन्यास में सीमित पात्रों के साथ एक रात के कुछ घंटों की कहानी है, किंतु यह अर्धसत्य है। क्योंकि उपन्यास में इस छोटी-सी कहानी के माध्यम से जटिल गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया गया है। इसीलिए कुछ विशिष्ट संदर्भों की खोज के लिए लेखक ने पाँच हज़ार वर्ष पीछे के इतिहास में जाकर साक्ष्य जुटाने का कार्य किया है।

समीक्ष्य उपन्यास ''जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था'' अपने शीर्षक से ऐसा आभास कराता है जैसे कि एक प्रेम कहानी हो, जबकि विषय इससे नितांत भिन्न है। उपन्यास का केंद्र बिंदु ''धर्म'' है। ''धर्म'' को जिस स्वरूप में हम आज देख रहे हैं, उसकी निर्मिति के मूल में छिपे उन कारकों को लेखक ने खोज निकाला है, जिनके कारण मनुष्य या तो आक्रामक बनता है या भयाक्रांत। अर्थात् ''धर्म'' के दोनों ही ''छोर'' अति की ओर हैं। लेखक ने संपूर्ण उपन्यास में इन दो अतिवादी ''छोरों'' से इतर एक मध्यम मार्ग स्थापित करने का प्रयास किया है, जहाँ मनुष्य मात्र वेशभूषा से धार्मिक न हो बल्कि आंतरिक रूप से सकारात्मक जीवन मूल्यों को आत्मसात करे।

लेखक ने अपनी स्थापनाओं की निर्मिति के लिए ''प्रश्न परंपरा'' को जीवित किया है, जहाँ गुरु (रामेश्वर) अपने शिष्य (शाहनवाज़) को निरंतर प्रश्न करने के लिए प्रेरित करता है और तर्कपूर्ण उत्तर भी देता है। भारत में तो प्रश्न पूछने की प्राचीन परंपरा रही है यही कारण है कि ''प्रश्नोपनिषद्'' नाम से एक उपनिषद् भी प्राचीन साहित्य में विद्यमान है। संपूर्ण उपन्यास लगभग इसी शैली में आगे बढ़ता है।

उपन्यास का आरंभ ''धर्म'' के उस बिंदु से होता है जहाँ- ''मानव की सारी प्रगति, सारा का सारा विकास एक ही बिंदु पर आकर धरा का धरा रह जाता है। उस एक बिंदु के आगे मानव का सारा ज्ञान, सारी बुद्धि, सारी कल्पनाशीलता मानों स्थगित होकर रह जाती है।'' धर्म के नाम पर आई इन विकृतियों को पंकज सुबीर ने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति एवं विकास क्रम के माध्यम से स्पष्ट किया है। उपन्यास को पढ़ते समय आभास होता है कि इस विकास क्रम को समझाने के लिए लेखक ने कितना श्रम किया होगा ? धर्म के इस विकास क्रम का विस्तृत विवरण यहाँ संभव नहीं, इसके लिए तो उपन्यास पढ़ना ही होगा। भारत एक ऐसा देश है जो ''सर्वधर्म समभाव'' की भावना से युक्त है, इसीलिए भारत में लगभग सभी धर्म पाए जाते हैं। भले ही विभिन्न धर्मों के लोगों ने भारत पर आक्रमण कर आधिपत्य जमाने का प्रयास किया लेकिन भारत पूरी सहिष्णुता के साथ सभी धर्मों को अपनाता चला गया। लेकिन विचारधाराओं की विविधता के फलस्वरूप समाज में अनेक जटिलताएँ भी उत्पन्न हो गईं।

लेखक ने उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर के माध्यम से इस तरफ़ संकेत दिया है -''मानव इतिहास में मानव के प्रति की गई सबसे बड़ी ग़लती, या सबसे बड़ा अपराध तलाश किया जाए, तो यही मिलेगा कि विचारधाराओं ने मानव जीवन की सारी स्वतंत्रता छीन ली है। एक इंसान जिस में खुशी पाता है, जिसे करना चाहता है, उस काम को करने से रोकने के लिए विचारधाराएँ, धर्म, परंपराएँ, जाने क्या-क्या हैं जो उसे रोकता है। विचारधाराएँ इंसान के मन में एक प्रकार का पूर्वाग्रह उत्पन्न करती हैं।'' विचारधाराओं की टकराहट ने मानव को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया है और यह विभाजन मानसिक ही नहीं भौगोलिक भी है। लोगों को एक स्थान से विस्थापित होकर दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। क्योंकि विस्थापन किसी विशिष्ट विचारधारा के कारण हुआ, तो यह दर्द उनको और अधिक कट्टर बना देता है। यह कट्टरता अलग-अलग रूपों में सामने आती है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक और अयोध्या और यरूशलम पर दृष्टिपात कर इनके साम्य एवं वैषम्य को दर्शाने का प्रयास है, तो दूसरी ओर ''नमरूद और इब्राहिम'' एवं ''हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद'' की कथा की समानता, गांधी और दारा शिकोह की समानता, ''बुधपरस्ती'' शब्द की परिणति ''बुतपरस्ती'' में जैसे अनेक उदाहरण देकर धर्म की विभिन्न ''खोहों'' में जाने का प्रयास लेखक ने किया है। जिस प्रकार लेखक ने अपने मत की पुष्टि के लिए पाँच हज़ार वर्ष पुराने इतिहास का उपयोग किया है, उसी प्रकार आधुनिक तकनीकी शब्द ''क्रॉसलिंकिंग'' एवं ''इंटरसेप्टिंग'' की मदद से ''रामेश्वर-गोडसे संवाद'', ''रामेश्वर-जिन्ना संवाद'' एवं ''रामेश्वर-गांधी संवाद'' का उपयोग भी किया है। प्रस्तुत संवादों के प्रति पाठक की सहमति, असहमति उसके अपने विवेक पर निर्भर करती है। ये संवाद भारत के विभाजन के पीछे की कहानियों को भी उजागर करते हैं, जिनसे सामान्य लोग अवगत नहीं। साथ ही यह भी संकेत है कि उस समय यदि कुछ ग़लतियाँ न हुई होतीं, तो भारत विभाजन को रोका जा सकता था। हालाँकि लेखक का कहना यही है कि जो बीत गया उसे तो बदला नहीं जा सकता लेकिन बीते अनुभवों से सीख कर वर्तमान एवं भविष्य को बचाया और सँवारा जा सकता है।

उपन्यास की मूल कथा एक सांप्रदायिक घटना की है जिसमें उपन्यास का मुख्य पात्र रामेश्वर अपने शिष्य शाहनवाज़ के परिवार को सकुशल बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न करता है। जगह-जगह होने वाले सांप्रदायिक दंगों के पीछे अलग-अलग कारण होते हैं किंतु किसी न किसी प्रकार

का छुपा हुआ स्वार्थ इन्हें समता के धरातल पर खड़ा कर देता है। रामेश्वर के शब्दों में – ''दंगा कभी भी होता नहीं है, दंगा हमेशा करवाया जाता है। लोगों को इन दंगों के बहाने अपनी रोटियाँ सेंकनी होती हैं... दंगा कुछ लोगों के लिए अपने कुछ मतलब पूरा करने का साधन होता है...।'' ''इन दंगों के पीछे धर्म नहीं होता, किसी न किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ होता है।'' ये स्वार्थी लोग सामान्य लोगों को भीड़ में बदलने का काम करते हैं और भीड़ का अपना कोई विवेक नहीं होता उसे तो कोई और संचालित करता है। यदि अकेले-अकेले उन लोगों को लड़ने के लिए भेजा जाए तो कोई नहीं जाएगा। ''भीड़ के लिए सुविधाजनक स्थिति यह होती है कि वह भीड़ होती है। भीड़ का कोई चेहरा नहीं होता।'' लेखक ने यहाँ भीड़ के मनोविज्ञान एवं लोगों को भीड़ में परिवर्तित करने वाले स्वार्थी तत्वों के मनोविज्ञान का बहुत सूक्ष्म चित्रण किया है, साथ ही प्रशासन की प्रतिक्रिया एवं उसके पीछे की रणनीति का चित्रण भी सजीव है। यही कारण है कि पाठक किसी फिल्म की तरह इस सब की अनुभूति करता है।

उपन्यास में एक बिंदु ऐसा आता है कि एक सुगठित कथा में कुछ प्रकरण कम समय में अधिक विस्तार पा जाते हैं। भारत यादव का घटनास्थल पर दो घंटे में पहुँचने का कथा विस्तार ऐसा है, जिसमें कम से कम चार से पाँच घंटे लगने चाहिए।

पंकज सुबीर ने विश्व इतिहास से न जाने कितने उदाहरण देकर यही समझाने का प्रयास किया है कि ''असली सुख बचाने में है, मारने में नहीं।'' इस मत को स्थापित करने के लिए उन्होंने अनेक विद्वानों के मतों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। यथा गौतम बुद्ध का यह कथन –

''मत करो विश्वास इसलिए कि वह तुम को बताया है या कि वह परंपरा से पास आया है, या कि उसको स्वयं तुमने सोच कर अपना लिया है। मत करो विश्वास उस पर, जो कहा तुम्हारे गुरु ने, क्योंकि श्रद्धा है तुम्हारे हृदय में गुरु के लिए। तुम परीक्षण करो, स्वयं ही उचित विश्लेषण करो, और जब पाओ कि कोई एक विचार सबके लाभ का है, बहुजन की भलाई का, कल्याण का सब प्राणियों के, तुम करो विश्वास उसका और जुड़ कर रहो उससे। वही केवल एक होगा पथ प्रदर्शक।''

''जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था'' उपन्यास आपको मानसिक रूप से झकझोर कर विचारों की नदी में फेंक देता है, जहाँ आप डूबते-उतराते रहते हैं, क्योंकि आप इसके लिए ''ट्रेंड'' तो हैं नहीं इसीलिए आपको जूझना ही होगा। डूबने का संकट इसलिए नहीं है कि लेखक किसी कुशल प्रशिक्षक की भाँति आपके साथ है, तमाम आरोह-अवरोह दिखाकर एक ऐसी समतल जगह पर ले आएगा जो आपको सुहानी लगेगी। जहाँ आप रहना चाहेंगे और अंत में आपको आश्वस्त भी करता है कि जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई। भारत यादव, विकास परमार, वरुण कुमार, शाहनवाज़, रामेश्वर जैसे अनेक लोग आपके आसपास हैं, जो आपके साथ हैं, विरोध में नहीं। हमारे आसपास कितने लोग ऐसे हैं जिनके धर्म, जाति, संप्रदाय आदि आदि भिन्नताएँ हमारे लिए कोई अर्थ नहीं रखती, वे सब हमारे अपने हैं।

इस उपन्यास में ''धर्म'' आरंभ से अंत तक एक केंद्रीय बिंदु है। उपन्यास को पढ़ते समय यह प्रश्न बार-बार मन में आता है कि क्या वास्तव में यही सब ''धर्म'' है ? क्योंकि यह सब तो संप्रदाय हैं, जिनको ''धर्म'' का नाम दे दिया जाता है। उपन्यास के लगभग अंत में लेखक की इस पंक्ति – ''धर्म का अर्थ मैं यहाँ हिंदू मुस्लिम नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों के अंदर जो धर्म है, वही धर्म है।'' ने इस प्रश्न का उत्तर भी प्रदान किया। ''धर्म'' एक बहुत सकारात्मक शब्द है, जिसे इन दिनों बड़े नकारात्मक ढंग से उपयोग में लाया जाता है।

''जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था'' उपन्यास को भाषा, शैली, कहानी, मनोरंजन से अलग मस्तिष्क की भूख के लिए पढ़ा जाना चाहिए। आपकी इससे सहमति हो सकती है, और यह भी हो कि आप इससे असहमत हों, लेकिन आप इसके कथ्य को और इस उपन्यास द्वारा उठाए गए प्रश्नों को नकार नहीं सकते।

000

इस दौर की एक ज़रूरी किताब
(कैलाश मण्डलेकर)

कथाकार, उपन्यासकार पंकज सुबीर की औपन्यासिक कृति ''जिन्हें जुर्म ए इश्क पे नाज था'' इन दिनों चर्चा में है। चर्चा में होने का कारण सिर्फ यह है कि वह पठनीय है, रोचक है और पढ़ने वाले की स्मृति में देर तक ठहरती है। मैंने जब इसे पढ़ना शुरू किया तो समाप्त कर के ही उठा। दरअसल इस भयावह सामाजिक वैषम्य के दौर में ऐसी कृतियाँ आईने की तरह होती हैं जिनमें हमारा वर्तमान तो प्रतिबिम्बित होता ही है, अतीत की तरफ भी झाँका जा सकता है। उपन्यास की कथावस्तु बेहद सरल और प्रासंगिक है। इसकी बुनावट में हमारे समय और समाज की वह सचाई विद्यमान है जिससे हम आए दिन जूझते हैं, लिहाज़ा इसे घर-घर की कहानी भले ही न कहें लेकिन यह शहर दर शहर की कहानी तो निश्चित ही कही जा सकती है।

राजेंद्र यादव ने एक सफल उपन्यास को परिभाषित करते हुए एक जगह कहा है कि सफल उपन्यास का सबसे बड़ा गुण यह होता है कि वह वर्तमान को ऐसा सटीक बना दे कि वह ऐतिहासिक महत्त्व की चीज़ हो जाए और इतिहास को ऐसा नया, सजीव और सवाक् बना दे कि वह वर्तमान जैसा लगे। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' लगभग ऐसा ही है। सार रूप में कहा जाए तो यह एक क़स्बाई शहर के साम्प्रदायिक विद्वेष की कथा है। लेकिन यह सिर्फ साम्प्रदायिक विद्वेष भर की कथा नही है, वह उससे आगे बढ़कर उन कारकों की भी पड़ताल करती है जो सामाजिक वैमनस्य को जन्म देते हैं। यदि हम गहराई से देखें तो समाज और समुदायों के बीच अलगाव का मुख्य कारण (सदा से ही) अपनी-अपनी धार्मिक मान्यताएँ रही हैं। लेकिन असल बात यह है कि धर्म अपने मूल स्वरूप में कभी भी अलगाव अथवा विध्वंस की वकालत नही करता, बल्कि वह हर स्थिति में मानवता की मुक्ति या मोक्ष का ही वाहक रहा है। पंकज सुबीर इस उपन्यास में सिर्फ धर्म के मूल सरोकारों को ही नही सामने लाते बल्कि वर्तमान समाज और राजनीति के अंतर्द्वंद्वों को भी समझने का प्रयास करते हैं।

धर्म की मूल अवधारणाओं में आरम्भ से ही मनुष्य के कल्याण की बातें कही गई है। और यह सभी धर्मों का स्वभाव रहा है। लेकिन विडम्बना है कि धर्म का यह जन कल्याणकारी स्वरूप विकृत होते जा रहा है। पंकज सुबीर इस कृति में इन विकृतियों को गहराई से पकड़ते चलते हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि क्या धर्म को सिर्फ पूजा, व्रत और दीगर कर्मकांडों तक ही सीमित किया जाए या उसे मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों के बाहर निकालकर उन असंख्य लोगों की जीवन पद्धति से जोड़ा जाए जिनके शुभ और मुक्ति के लिए धर्म की स्थापना की गई है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस देश में कतिपय निहित स्वार्थों के चलते धर्म की अतिरंजित और विभेदकारी व्याख्याएँ हुई हैं और धीरे-धीरे धर्म और ईश्वर हमारी मनोवैज्ञानिक ज़रूरतें बनते चले गए। सुप्रसिद्ध लेखक भगवान् सिंह 'भारतीय सभ्यता की निर्मिति' नामक अपनी कृति में हमारी धार्मिक मान्यताओं की तलस्पर्शी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ''एक स्वतंत्र चेता समाज इस तरह के धर्म को नहीं अपना सकता क्योंकि इसे स्वीकार करने का अर्थ ही यह है कि अपनी तर्क बुद्धि का परित्याग कर एक किताब की इबारतों और उस किताब की व्याख्या करने वालों की इच्छा और निर्णय के समक्ष समर्पण करना।''

बहरहाल मानव सभ्यता की विकास गाथा से आरम्भ होते हुए पंकज सुबीर का यह उपन्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है हमारे धार्मिक विश्वासों की परतें खुलती जाती हैं। कथानक में दो प्रमुख पात्र हैं, रामेश्वर और शाहनवाज़ इन दोनों के संवादों के ज़रिये धर्म के अनेक गूढ़ रहस्यों को सामने लाया गया है। एक स्थान पर रामेश्वर शाहनवाज़ को समझाते हुए कहते हैं कि कट्टरता सिर्फ इस्लाम में ही नहीं है धर्म शब्द ही कट्टरता पैदा करता है। यदि आप धार्मिक होंगे तो आप कट्टर भी होंगे। रामेश्वर का घर एक क़स्बाई शहर के मुख्य बाज़ार में हैं जहाँ वे कोचिंग सेंटर चलाते हैं। उपन्यास की मूल कथा इसी कस्बे के पास ख़ैरपुर बस्ती में फैले धार्मिक उन्माद के इर्द गिर्द पनपती है। क़स्बाई शहरों और गाँवों की यह आत्यन्तिक विडंबना है कि वहाँ के अधिसंख्य रहवासी प्राय: अशिक्षा और बेरोज़गारी से ग्रस्त होते हैं। अशिक्षा और निकम्मापन भीड़ को जन्म देता है। भीड़ हमारे दौर की राजनीति की प्राण वायु है। किसी भी दल के राजनीतिक कार्यकर्ताओं कि शिक्षा और पेशे से जुड़े डेटा संग्रहित किए जाएँ तो इस बात की हैरत होगी कि न तो वे किसी स्थाई पेशे से वाबस्ता हैं और न ही पर्याप्त शिक्षित हैं। इस किस्म के लोग राजनीतिक दलों के लिए बहुत काम के होते हैं और इनका इस्तेमाल जुलूस, रैलियों और शक्ति प्रदर्शन के लिए आसानी से किया जा सकता है। ख़ैरपुर में जो धार्मिक उन्माद होता है उसमें ऐसी ही भीड़ है। किसी दिन एक बहुत मामूली सी घटना को लेकर एक सम्प्रदाय के युवक की हत्या कर दी जाती है फिर दोनों पक्षों के लोग आपस में भिड़ जाते हैं जिसकी परिणिति में शहर जलने लगता है। शाहनवाज़ जिस बस्ती में रहता है वह मुस्लिम बस्ती है जो फिलहाल दंगाइयों द्वारा घेर ली गई है। शाहनावाज़ की पत्नी हिना आसन्न प्रसवा है उसे अस्पताल ले जाना है लेकिन कर्फ्यू और उन्मादी भीड़ के वजह से ऐसा करना संभव नही है। रामेश्वर अपने छात्र शाहनवाज़ के लिए बेहद चिंतित है, वे उसे तथा उसके परिवार को हर हाल में बचाना चाहते हैं। वे ज़िले के प्रशासक और अपने अन्य छात्रों की मदद लेते हैं तथा अपने एक पूर्व विद्यार्थी जो पुलिस में बड़ा अधिकारी है उसकी मदद से शाहनवाज़ और उसके परिवार को बाहर निकालने में कामयाब होते हैं। अंतत: हिना अस्पताल में पुत्र को जन्म देती है जिसका नाम रामेश्वर द्वारा मोहम्मद भारत खान रखा जाता है। जो सांकेतिक रूप से भारतीयता और देशप्रेम का प्रतीक है।

उपन्यास के कथानक के साथ रामेश्वर और शाहनवाज़ के बीच समान्तर रूप से चलने वाला संवाद का सिलसिला कथावस्तु को तर्क सम्मत ढंग से गति प्रदान करता है। इन संवादों में धर्म एक केन्द्रीय तत्व की तरह विद्यमान है। इस्लाम और यहूदियों के बीच दुश्मनी की वजह, ईद उल अजहा की अंतर्कथा, भारत की वह सामासिक संस्कृति जिसमें हिन्दुओं के भजनों में अल्लाह और मुसलमानों के भजनों में कृष्ण की उपस्थिति, गांधी गोडसे और जिन्ना के मार्फत स्वतंत्रता के दौर के ऐतहासिक ब्योरे, कृति को प्रामणिक और विचार समृद्ध बनाते हैं।

वस्तुत: आज जिस तरह, सामाजिक वैमनस्य बढ़ते जा रहा है उसमें प्रशासन और पुलिस के बजाय रामेश्वर जैसे लोगों की महती ज़रूरत है। इस कृति के मार्फत, पंकज सुबीर की मान्यता है कि क़स्बाई शहरों में यदि सामाजिक विषमताएँ और साम्प्रदायिक विद्वेष है तो वहीं रामेश्वर जैसे चरित्र भी हैं जो अहेतुक रूप से सद्भाव, भाईचारा और साम्प्रदायिक समरसता के लिए फ़िक्र मंद रहते हैं। पंकज ने रामेश्वर जैसा चरित्र गढ़कर एक उदाहरण पेश किया है। भले ही इस दौर की राजनीति अपनी दुष्प्रवृत्तियों के चलते समाज के वातावरण को विषाक्त करने पर तुली हो पर उसके दूसरे छोर पर रामेशवर जैसा भले मनुष्य भी हैं जो मूल्यों और मानवता को बचाए रखने के लिए कृत संकल्पित है। रामेश्वर दरअसल धरती पर ईश्वर और धर्म के सच्चे प्रतिनिधि की शक्ल में दिखाई देते हैं। उस धर्म के नहीं जो ग़लत व्याख्याओं का शिकार है वरन् उस धर्म के जिसकी निर्मिति मानवता के कल्याण के लिए हुई है। वस्तुत: ईश्वर कभी अवतार नहीं लेते वे अपने प्रतिनधि के तौर पर रामेश्वर जैसों को भेज दिया करते हैं। अंतत: यह राहत तलब है कि उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नही हुई है जिन्हें जुर्म ए इश्क पर नाज़ हुआ करता था। कहना कुल मिलाकर यह है कि यह इस दौर की एक ज़रूरी किताब है इसका स्वागत होना चाहिए।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे।

-सादर संपादक मंडल

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

विचार और समय
सुधा ओम ढींगरा
निबंध

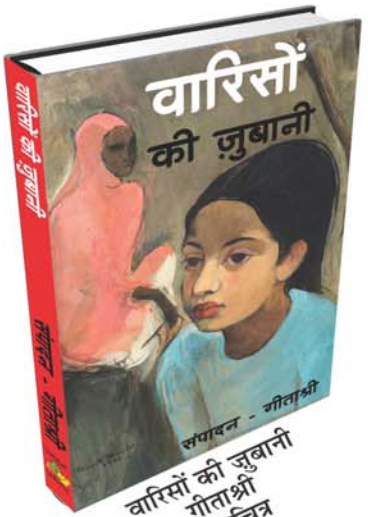

वारिसों की ज़ुबानी
गीताश्री
रेखाचित्र

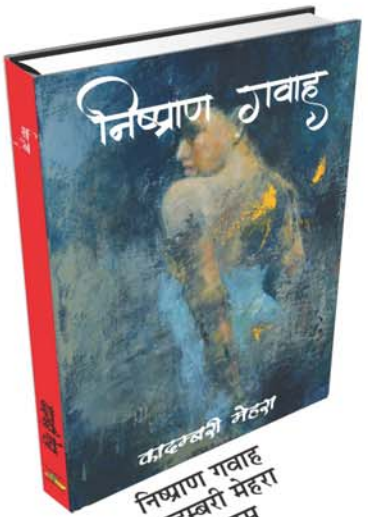

निष्प्राण गवाह
कादम्बरी मेहरा
उपन्यास

निन्यानवे का फेर
ज्योति जैन
लघुकथा

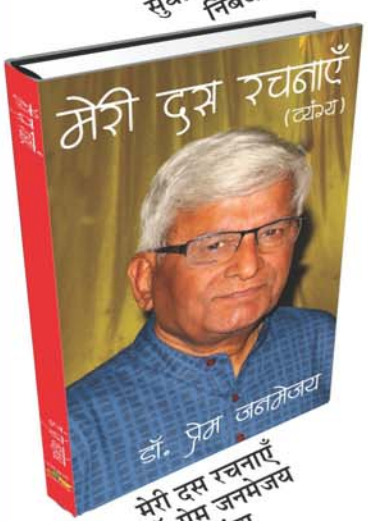

मेरी दस रचनाएँ
डॉ. प्रेम जनमेजय
व्यंग्य

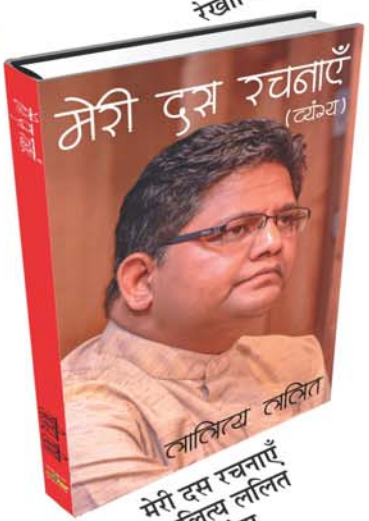

मेरी दस रचनाएँ
लालित्य ललित
व्यंग्य

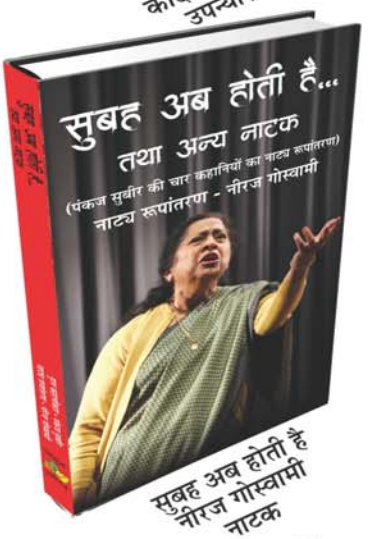

सुबह अब होती है
नीरज गोस्वामी
नाटक

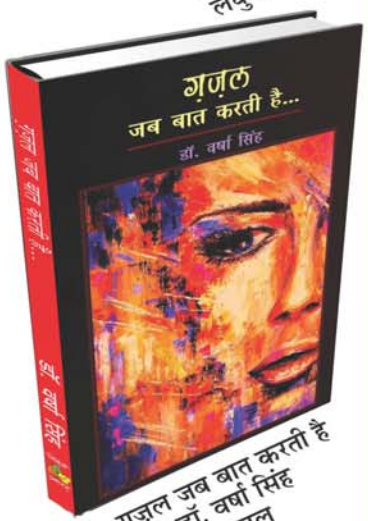

ग़ज़ल जब बात करती है
डॉ. वर्षा सिंह
ग़ज़ल

ख़ुद से गुज़रते हुए
संगीता कुजारा टाक
कविता

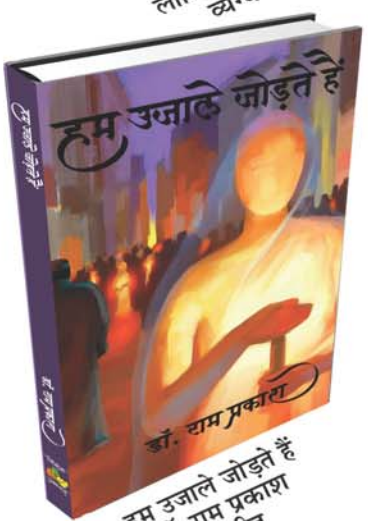

हम उजाले जोड़ते हैं
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

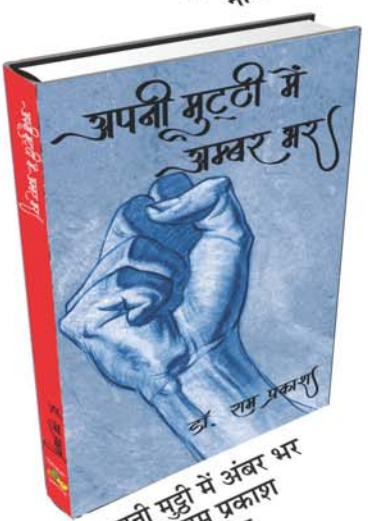

अपनी मुट्ठी में अंबर भर
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

उन्हें गीत दो
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● April-June 2020 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को मार्गदर्शन प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा केंद्र संचालक श्री सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा थाना प्रभारी सुश्री अंजना सिंह।

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा थाना प्रभारी सुश्री अंजना सिंह।

मध्य प्रदेश माध्यमिक शिक्षा मण्डल में अतिरिक्त सचिव के पद पर कार्यरत मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी सुश्री शीला दाहिमा ने सीहोर में चलाए जा रहे नि शुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।